UNIVERSAL LIBRARY
OU_180478
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 M97C

Accession No. H2063

Author

Title चक्की

This book should be returned on or before the date last marked below.

चक्की

मन्मथनाथ गुप्त

आशा प्रकाशन—हजारीबाग

प्रकाशक—
माया गुप्त
आशा प्रकाशन, हजारीबाग

मुद्रक—
बजरंगबली गुप्त 'विशारद'
श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी

१

जमींदार दशरथ बाबू अपने ख्याल से बहुत सुखी आदमी थे। यदि उनके सुख में कोई कसर थी तो यह कि उनको कोई पुत्र नहीं था, पर उनकी एक मात्र कन्या रेनुका या रेणु ऐसी निकली कि उन्हें यह दुःख बहुत कुछ भूल गया। रेनुका किसी मामलेमें किसी पुत्र से कम नहीं थी। पढ़ाई-लिखाई में वह किसी लड़के से पीछे नहीं थी, खेल कूद में भी वह लड़कों से अच्छी थी। वह घोड़े पर सवारी कर लेती थी और मोटर भी चला लेती थी।

दशरथ बाबू को फिर भी कभी-कभी बड़ा अफसोस होता था। आखिर लड़की ही तो है, कब तक घर पर रहेगी, एक न एक दिन पराये घर जायगी ही। बकरे की माँ कब तक खैर मनावे ? लड़की को भला कब तक घर पर रक्खा जाता ?

रेनुका अब आई० ए० पास कर चुकी थी, बी० ए० में पढ़ती थी। उसकी शादी बहुत अधिक टाली जा सकती तो उसके बी० ए० पास करने तक टल सकती थी। दशरथ बाबू इसी विचार में घुलते रहते थे। उन्हें ऐसा लगता था कि रेनुका के चले जाने के बाद घर बिलकुल सूना हो जायगा। उस भीषण सूनेपन की कल्पना करते हुए उनका दिल थर्रा जाता था। वे आतंकग्रस्त हो जाते थे।

दशरथ बाबू की स्त्री रूपवती अपने पति के इस भय को समझती थी, इसलिये वह भरसक कन्या की शादी के प्रसंग को छेड़ती नहीं थी, भरसक क्या कभी छेड़ती ही नहीं थी। फिर वह खुद बराबर बीमार रहती थी, संसार के काम-काजों से उसका सम्बन्ध नहीं के बराबर रह गया था। फिर भी कहते हैं हर बात की एक हद होती है, एक दिन उसने पति से यह बात छेड़ ही दी, बोली—रेणु तो अब सयानी हो गई है।

दशरथ बाबू समझ तो गये कि रूपवती क्या कह रही है, पर इस विचार से वे बेतरह घबड़ाते थे, असली विषय को टालते हुए अस्पष्ट रूप से बोले—हाँ ..।

दशरथ बाबू ने धीरे से रूपवती की चादर को ठीक कर दिया, और बोले—नई दवा से कुछ फायदा हुआ ? डाक्टर ने तो कहा कि यह नया आविष्कार है, इससे अवश्य फायदा होगा।

रूपवती हँसी, पर वह हँसी खाँसी के रूप में प्रकट हुई। दशरथ बाबू धीरे से रूपवती का सिर सहलाने लगे। उनके चेहरे पर परेशानी झलक गई। जब से वे मन ही मन यह समझ चुके थे कि आखिर रेणु की शादी होनी ही है, तब से रूपवती के पास अधिक उठने-बैठने लगे थे। वे समझने लगे थे कि रेणु के चले जाने के बाद यही रूपवती उनके सुख-दुख में अवलम्बन होनेवाली थी, फिर तो जीवन की इसी अति प्राचीन साथिन से गले लगकर रोना था। भले ही वह गत सात साल से बिस्तरे पर पड़ी हुई हो, भले ही वह अब पहले के मुकाबले में एक प्रेतिनी हो गई हो, भले ही वे वर्षों से केवल दिन में दो ही चार बार उसके पास आते हों, पर थी तो वह पत्नी, साथिन, जीवन-सहचरी। रेनुका तो दो दिन की साथिन थी। यही तो उनकी असली सहचरी थी।

रूपवती देर तक चुप रही, फिर बोली—आखिर कुछ सोचा ?

—सोचता क्यों नहीं ?—फिर कुछ रुककर बोले—तुम तो इधर पड़ी हो, सब फिक्रों से दूर, पर मुझे तो सब कुछ सोचना पड़ता है।—

उनके चेहरे पर बल आ गये, बोले—इधर रियाया भी बड़ी बिगड़ैल हो रही है। रोज एक न एक फसाद मचा ही रहता है, न मालूम क्या हो रहा है, क्या होने वाला है।

रूपवती पति के साथ सहानुभूति प्रगट करती हुई बोली—क्यों क्या कोई नई बात है ?

—नई बात कुछ नहीं, वही हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा। अब यह गांवों में पहुँच चुका है। जानती ही हो, अधिकांश रियाया मुसलमान है, वह कहती है, हिन्दू जमींदार है, उसे लगान मत दो।

रूपवती आश्चर्य के साथ बोली—लगान नहीं देंगे तो जमींदार कैसे जियेगा ? आखिर जमींदार के भी तो बाल-बच्चे हैं।

—हाँ, पर वे कहते हैं, यह गलत है कि जमींदार के बाल-बच्चे खुश-हाल हों और मजे उड़ावें और उनके बच्चे भूखों मरें।

रूपवती खाँसने लगी। एक अज्ञात आशंका से वह भयभीत हो गई। उनका यह बहुत ही अजीब तर्क था। बोली—सरवर, करीम, यासीन ये लोग तो बहुत अच्छे थे, तुम पर जान देते थे, और ये ही लोग तो इन लोगों के सरदार थे, क्या ये लोग भी फिर गये ?

—हाँ, नहीं, मुँह से तो वैसे ही बने हैं, पर भीतर-भीतर षड्यंत्र रच रहे हैं। ऊपर से तो हाँ जी-हाँ जी करते हैं, पर सुनता हूँ कि ये भी पीठ पीछे जहर उगलते रहते हैं।

रूपवती ने आई हुई प्रबल खाँसी को रोकते हुए कहा—तो फिर क्या होगा ? अच्छा, थोड़ी बहुत हिन्दू रियाया भी तो है, वह क्या कहती है ?

—क्या कहेगी ? जमींदार से वह भी नाखुश रहती है। एक झगड़ा हो तो निपटा जाय। कहीं लीग है तो कहीं किसान सभा है, जमींदारों की तो हर तरीके से मरण है।

अब रूपवती की खाँसी नहीं रुकी। वह देर तक खाँसती रही, यहाँ तक कि उसका चेहरा तथा आँखें लाल हो गईं। दशरथ बाबू वर्षों की

आदत से यंत्रचालितवत् रूपवती की पीठ सहलाने लगे। जब पत्नी की खाँसी शान्त हो गई और चेहरे पर की ललाई और परेशानी कुछ घटी तो दशरथ बाबू बोले—परन्तु मैं कुछ विशेष चिन्ता नहीं करता, जो सब जमींदारों का होगा, वही मेरा होगा। आखिर बाप-दादों ने कुछ नंगा तो छोड़ा नहीं है, देख लिया जायगा। जैसा होगा भुगतूँगा—फिर मूँछ पर हाथ धरते हुए बोले—हम जमींदार भी चुप नहीं बैठे हैं। हम लोग भी अपना संगठन कर रहे हैं।

पति के लहजे में आशा का पुट पाकर रूपवती कुछ आश्वस्त हुई, बोली—हम लोग कौन लोग ?

—क्यों, हम सब जमींदार।

—जमींदारों में तो कुछ मुसलमान भी हैं। क्या, वे लोग भी आपके साथ शामिल होंगे। वे तो सभी लीग में हैं।

—हैं तो सही, पर हैं तो वे जमींदार ही। वे भी हमारी ही तरह खस्ताहाल और परेशान हैं। मुसलमान रियाया हमें तो यह कहकर लगान नहीं देना चाहती कि हम काफिर हैं, काफिर को पैसा क्यों दिया जाय, पर उन्हें मुसलमान किसान यह कहकर पैसा नहीं देना चाहते कि यह तो हमारे भाई हैं, इन्हें क्या पैसा देना।

इतनी मुसीबत में भी रूपवती हँसी, पर इस बार भी उसकी हँसी खाँसी के रूप में तबदील हो गई। दशरथ बाबू फिर पीठ सहलाने लगे और जब खाँसी बन्द हुई तो बोले—हमने मीर बन्दे अली को अपनी जमींदार-सभा के संगठन का सभापति बनाया है।

—बन्दे अली, वही पीरपुर का जमींदार न, यहाँ से तीन कोस है।

—हाँ वही। वे अपने काम में बहुत उत्साह लेते हैं और आशा है कि वे प्रान्त के लीगी मंत्रिमंडल पर असर डाल सकेंगे।

रूपवती शायद कही गई बातों के सम्पूर्ण अर्थ को नहीं समझी, पर फिर भी वह इतना तो समझ ही गई कि आफत कोई ऐसी बड़ी नहीं है

जितना कि समझा गया था। अब वह फिर पहले के विषय में आ गई, कई दिन से सोचकर वह इस बात को तय कर चुकी थी। बोली—अब तो रेनुका की शादी करनी ही है, सयानी हो गई। ··

जमींदार सभा की बात से दशरथ बाबू के चेहरे पर जो जोश-सा आ गया था, वह इस प्रसंग के छिड़ते ही लुप्त हो गया। पत्नी के शीर्ण हाथ को स्नेह के साथ पकड़कर बोले—करनी तो है ही, पर यह भी सोचा है ··

—सब सोचा है, पर हम लोग अपने स्वार्थ के लिये उसे चिर काल तक कुमारी तो रख सकते नहीं।

—हाँ, चिरकाल तक कुमारी कैसे रख सकते हैं ?—उनके चेहरे पर मुर्दनी छा गई। नैतिक रूप से इस बात को मानते हुए भी इस बात को स्वीकार करते हुए उन्हें दुःख हो रहा था। रूपवती पड़ी रहती है, वर्षों से पड़ी है, तिस पर रेनुका चली जायगी तो कितना सूना हो जायगा यह सोचकर वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे।

—फिर कुछ देख-दाख रहे हो ?

—हाँ, देखूँगा।

पति-पत्नी चुप रहे, फिर रूपवती बोली—देखो, मैं तुमको बहुत दिनों से कष्ट दे रही हूँ। सात साल हो गये, मैं इस कमरे से नहीं निकली। तुम देवता हो, तभी सब कुछ सहते रहे, नहीं तो• दूसरा कोई जमींदार होता तो न मालूम कब ही दूसरी शादी कर चुका होता।—रूपवती की आँखों से आँसू जारी हो गये।

दशरथ भी रोने लगे, कुछ कहने की जरूरत नहीं हुई। दोनों एक मिनट के लिये गले मिल गये। प्रथम मिलन की घड़ी जैसे फिर एक बार ताजी हो गई जब दो किशोर किशोरी पहली बार मिले थे। वह स्वर्गीय घड़ी···

रूपवती ने रोते हुए कहा—परन्तु मैं जल्दी ही तुम्हें छुट्टी देनेवाली हूँ,

मैं भीतर से महसूस करती हूँ कि अब मेरा दिन करीब आ चुका है। पर उसके पहले चाहती हूँ कि रेणु की शादी कर दो।

दशरथ ने आँसू पोंछते हुए कहा—ठीक है तुम चली जाओ, रेणु भी चली जाय, फिर मैं भी किसी तरफ एक पागल की तरह निकल जाऊँ। हमारे प्राचीन वंश का लोप हो जाय, बस!

रूपवती सोचने लगी। अपनी वर्तमान चिररोगी परिस्थिति से छुटकारे की आशा कितनी भी प्रिय हो किन्तु पति के पागल की तरह घूमने की सम्भावना से वह कर्तव्य-संकट में पड़ गई। एक क्षण के लिये घड़ी का काँटा पीछे की ओर घूम गया। वह प्रेम पगे नेत्रों से पति को देखने लगी। इतने में ही बाहर किसी के आने की आहट मिली। दशरथ सम्हल कर बैठ गये, रूपवती ने आँसू पोंछ लिया। दशरथ बोले–रेणु, रेणु—आ रही है, मानो यह कोई अनहोनी बात हो।

—हाँ, रूपवती के कुम्हलाये हुए चेहरे पर खुशी झलक गई।

दोनों एक दूसरे से और कुछ भी कह नहीं पाये थे कि रेणु उर्फ रेनुका धम्म-धम्म करती हुई आ गई और आते ही माता के बिस्तरे पर उसके समीप बैठ गई। उसे क्या मालूम था कि ये दोनों उसी के लिये परेशान हो रहे हैं, बोली—माता जी, कैसी हो?

रूपवती ने स्नेहपगी दृष्टि से कन्या को देखा, बोली—अच्छी तो हूँ बेटी, तू कालेज से आ गई?

—हाँ, आज आने में कुछ देर हो गई। स्पेशल क्लास अटैंड करना था।

रूपवती बोली—बेटी, अब कब तक पढ़ोगी? पढ़ पढ़कर दुबली हुई जा रही हो। तुम्हें कोई बैरिस्टर थोड़े ही होना है। आखिर शादी ब्याह भी करना है कि नहीं?

रेणु ने माता के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, पिता से बोली—एक बात तो बताया नहीं। लौटते समय रास्ते के किनारे किसानों की सभा

हो रही थी, उन्होंने जो हमारी मोटर को आते देखा तो उस पर ढेला मारा। मैंने फौरन स्पीड बढ़ाई और वे लोग नारे मारते रह गये।

रेणु ने ऐसे मुँह बनाया जैसे कोई नये ढंग का कौतुक हो, पर दशरथ बाबू के तेवर चढ़ गये। बोले—क्या ? उनको इतनी हिम्मत कि तुम्हारी मोटर पर ढेला मारें। बताओ तो यह किस जगह की घटना है ?

रेणु बोली—मैं शहर से कई मील आ चुकी थी, पीरपुर भी पार कर चुकी थी कि यह घटना हुई। पीरपुर के बाहर मैदान में सभा हो रही थी। कुछ आदमी रास्ते में घूम रहे थे, उन्होंने मोटर को देखा तो बस आवाज दी, बड़े गाँव के जमींदार की मोटर है। इतना कहना था कि कई ढेले एक-साथ मोटर पर आये। मैं परिस्थिति समझ गई, मैंने फौरन मोटर कुदा दी। एक काँच पर कुछ चोट आई है।

दशरथ बाबू के तेवर चढ़े ही रह गये। बोले—और तुम अकेली थी न। हरामजादों ने जान-बूझकर मारा। अच्छा, कल से ड्राइवर मंगलसिंह साथ में जायगा।

सच बात यह थी कि रेणु उस समय अकेली नहीं थी। महीनों से वह पास के गाँव के परिमल को अपने साथ मोटर में कालेज पहुँचाती थी और वापस ले आती थी। परिमल गरीब का लड़का था, उसी के कालेज में एम० ए० में पढ़ता था। पहले साइकिल से आठ मील आया जाया करता था, रेणु ने ही उसे कह सुनकर अपनी मोटर पर आने जाने के लिये राजी किया था। वह जाते समय रास्ते में उसके गाँव से उसे बैठा लेती थी और आते समय उतार देती थी। वह धार्मिक नियम से इस कर्तव्य का पालन करती थी। ऐसा करते हुए उसे महीनों हो गये थे पर उसने कभी पिता या माता से इसका जिक्र नहीं किया था। अब पिता के वाक्यों को सुनकर वह सोचने लगी कि वह पिता से यह बतावे या नहीं कि वह मोटर पर अकेली नहीं थी। बोली–परंतु पिता जी मैं अकेली नहीं थी। मेरे साथ खासपुरवा का परिमल था।

—परिमल कौन ?—दशरथ बाबू ने सोचते हुए पूछा।

—खासगुरवा के पुरोहित रजनी बाबू का लड़का। बेचारे गरीब हैं। साइकिल पर आया जाया करते थे। कालेज की यूनियन के परिमल मंत्री हैं, मैं सहकारी मंत्राणी हूँ। एक दिन साइकिल में पंक्चर हो गया, पैदल जा रहे थे तो मैंने कहा, मोटर में साथ चले चलो। तब से साथ जाते आते हैं।

—अच्छा समझ गया—कह कर दशरथ बाबू ने रूपवती के साथ अर्थपूर्ण तरीके से दृष्टि-विनिमय किया, फिर बोले—अच्छा तो है, उस बेचारे का भला होता है, तुम्हारा कुछ बिगड़ता नहीं। पर फिर भी कल से मंगलसिंह को ले लिया करो। दो से तीन हो जायँगे तो अच्छा ही है, आजकल दिन बहुत बुरे जा रहे हैं। जितने नीच लोग हैं, वे सब सिर उठा रहे हैं। और हाँ, एक बात कल से तुम पीरपुर के रास्ते न जाना, बल्कि कृष्णपुर से घूमकर जाया करो। क्या होगा ? थोड़ा पेट्रोल ही तो ज्यादा लगेगा।

कहकर वे उठ गये। उन्होंने दिखाया नहीं, पर क्रोध से उनका बुरा हाल हो रहा था। क्या ? पीरपुर के किसानों की इतनी मजाल कि उन्होंने उनकी लड़की पर ढेला मारा। साले हरामजादे। अभी वे उन दिनों को भूल गये जब जमींदार की डेवढ़ी पर आठ-आठ दस-दस आदमी जाड़े की रात में रात भर मुर्गा बने खड़े रहते थे। वे सीधे अपने बैठने के कमरे में पहुँचे और उन्होंने अपने प्रधान कारिन्दा शमीजान खाँ को बुलाया।

दशरथ बाबू इस प्रकार एकाएक उठकर क्यों चले गये इस पर रेनुका ने ध्यान नहीं दिया। रेनुका तो इस बात पर विचार कर रही थी कि कल से मंगलसिंह के जाने से क्या परिस्थिति रहेगी। यों तो कालेज के घंटों में परिमल से मिलने का मौका ही नहीं लगता था। वह छात्रों के मजाक से डरती थी। उसने लोगों से बता रक्खा था कि परिमल

उसका फुफेरा या मौसेरा भाई लगता है। वह उसी के अनुसार उसके साथ कालेज में बातचीत करती थी। मोटर में ही जरा घुल मिल कर बात करने का मौका लगता था। अब मंगलसिंह चला करेगा तो पता नहीं कि उसके सामने बातचीत का कोई मौका लगेगा या नहीं। वह कुछ चिन्तित हो गई। नाहक ही उसने ठेलेवाली बात का जिक्र कर दिया।

इस प्रकार रेणु ने पिता के एकाएक चले जाने पर ध्यान नहीं दिया, पर रूपवती समझ गई कि पति किस मानसिक परिस्थिति में चले गये। वह समझ गई कि उनके हृदय को कितनी चोट लगी है। उसने अपनी असहायता के लिये अपने को धिक्कारा। हाय, यदि वह इस समय चल फिर सकती! उसके हृदय से एक गहरी आह निकल गई और वह खाँसने लगी।

रेनुका उसकी पीठ सहलाने लगी। पासही कहीं रोगिणी की खास नौकरनी थी, खाँसी की आवाज सुनकर दौड़ आई। पर रेणु बैठी है और पीठ सहला रही है, यह देख वह रूपवती की चादर की सिकुड़नें ठीक करने लगी।

जब रूपवती खाँस कर शान्त हो गई, तो उसने इशारे से नौकरनी को बाहर चले जाने के लिये कहा। वर्षों की शिक्षा पाई हुई नौकरनी बिना कुछ कहे सुने बाहर चली गई।

रूपवती ने कन्या से कहा—बेटी, समझी तुम्हारे पिता जी कहाँ गये?

—नहीं तो—उसने इस विषय पर सोचा भी नहीं था।—नहीं तो, किसी खास काम से गये क्या?

रूपवती बोली—तुम उन्हें जानती हो, वे तुम पर तथा अपने परिवार पर जान देते हैं। अभी तुम्हारे आने के पहले कह रहे थे कि रियाया बड़ी गुस्ताख हो रही है। यों ही परेशान थे कि क्या करें कि तुमने आकर ठेलेवाली बात कह दी। अब वे न मालूम क्या अनर्थ कर बैठें। मैं तो सात साल से पड़ी हुई हूँ, जमाना बदल गया है। पर वे तो इस बात को समझते ही नहीं—रूपवती के चेहरे पर परेशानी के बल आ

गये। बोली—बेटी, अब मेरा आखिरी वक्त करीब है, तुम्हारी भी शादी होने वाली है, पता नहीं उनकी क्या गति होगी। रियाया जैसी सरकश होती जा रही है, आज उसने मोटर पर ढेले मारे, कल शायद आग लगावे, ऐसी हालत में क्या होगा, समझ में नहीं आता।

माता-पुत्री में इसी प्रकार बातें होने लगीं। नौकरनी एक छोटी मेज लाकर रेनुका के लिये चाय और नाश्ता दे गई। वह वहीं बैठकर जलपान करने लगी। रोज वह माँ के कमरे में ही इस समय जलपान करती थी। माता ने कई बार मना किया था कि बेटी मुझे न मालूम क्या बीमारी है, यहाँ नाश्ता मत करो, पर रेनुका ने इस पर ध्यान नहीं दिया था। अब तो रूपवती ने इस सम्बन्ध में कुछ कहना सुनना भी छोड़ दिया था।

जलपान करते करते रेनुका माता की बातों पर विचार करती जाती थी, पर गम्भीर चेहरा बनाने पर भी वह जितना भी सोचती, कहीं उसे कोई समस्या नहीं दिखाई देती थी। अभी तो जीवन और यौवन उसके सामने जय-टीका लिये हुए प्रतीक्षा कर रहे थे, अभी उसका स्वप्नजगत हरा-भरा था, किसी किसान के मारे हुए एक ढेले से उसका स्वप्न भंग नहीं हो सकता था। स्नेहमय बाबू जी स्नेहमयी माता जी थीं, अलबत्ता उनका बीमार रहना उसे बहुत अखरता था पर ऐसा इतने दिनों से था कि वह इसको बहुत कुछ प्राकृतिक और स्वाभाविक समझने लगी थी। फिर परिमल! उसकी बात याद आते ही उसका सारा शरीर पुलकित हो गया। अभी वह यह नहीं जानती थी कि वह परिमल को प्यार करती है कि नहीं, क्या इसी को प्रेम कहते हैं? पर उसे उसका सङ्ग बहुत पसंद था। इतना पसन्द था कि कालेज की छुट्टी का दिन उसे अखर जाता था, और छात्र छुट्टी पसन्द करते थे, पर रेनुका को छुट्टियाँ खल जाती थीं। दिन काटे नहीं कटता था। सोती, उपन्यास पढ़ती, पर सोने में स्वप्न भी देखती तो परिमल को ही और उपन्यास पढ़ने लगती तो नायक की जगह परिमल की ही बात सोचती, इस प्रकार उपन्यास पढ़ना भूल जाती।

रूपवती ने देखा कि बेटी का चेहरा तो गम्भीर बना हुआ है, पर उस गम्भीर सतह के नीचे वह हँस रही है। गाम्भीर्य के पत्थर से दबाये जाने के कारण आनन्द के सोते खुलकर बह नहीं पा रहे थे, इसी कारण वे रोम रोम से उबलकर निकल रहे थे। रूपवती इस पर दुखी भी हुई और सुखी भी। दुखी इस कारण हुई कि हाय वह पिता-माता की समस्या को समझ नहीं पा रही है, सुखी इस कारण हुई कि यह नन्हीं सी कली जीवन को झुलसा देनेवाली लू से बची हुई है, यह अच्छा ही है।

वह एकाएक पूछ बैठी—बेटी, यह परिमल कौन हैं ?

रेनुका एकाएक चौंक पड़ी। उसके हाथ से प्याला गिरते गिरते बच गया; मानो वह रंगे हाथों से पकड़ी गई हो। सम्हल कर माँ से आँख बिना मिलाये हुए ही बोली—बताया तो कि खासपुरवा के पुरोहित रजनी बाबू का लड़का···।

—हाँ, बताया, गरीब हैं।

—हाँ गरीब हैं, पर बड़े स्वाभिमानी हैं। मैंने बड़ी मुश्किलों से उन्हें मोटर पर आने जाने के लिये राजी किया है।

—कितने भाई हैं।

—चार भाई हैं, और शायद दो एक बहिनें भी हैं, जिनकी अभी शादी होनी है। पुरोहिती में अब आमदनी बहुत थोड़ी होती है इसलिये घर का सारा भरोसा परिमल बाबू पर ही है।

रूपवती सारी परिस्थिति समझ गई, उसके मन में एक विचार भी आया, पर वह कन्या से बताने लायक नहीं था। इसलिये प्रसंग बदलती हुई बोली—पर तुमने परिमल को कभी घर पर नहीं बुलाया।

—नहीं।

—अच्छा, उसे अगले एतवार को यहाँ खाने के लिये कहना। मैं तो किसी लायक नहीं रह गयी, पर महराजिन से कहकर सारी व्यवस्था करा देना जिससे उसे किसी प्रकार की तकलीफ न हो।

इस प्रसंग पर इससे आगे कोई बातचीत नहीं हुई। न मालूम क्यों इस दावत के प्रस्ताव से रेनुका को कुछ बहुत अच्छा नहीं लगा। अब तक उसने अपने हृदय के एकान्त कोने में जिस वस्तु का उपभोग किया था, अब एकाएक उसे सार्वजनिक रूप से सामने लाते हुए उसे हिच-किचाहट और लज्जा का अनुभव होने लगा। उसे एक तरफ तो इस बात की खुशी रही कि अब छुट्टी के दिनों में भी वह परिमल का संग प्राप्त कर सकेगी, पर दूसरी तरफ इस नये कदम को उठाते हुए उसका मन तरह-तरह के सन्देहों से चूर्ण हो गया। एक तो उसे इस बात का संदेह हुआ कि परिमल यहाँ पर आना जाना पसंद करेगा या नहीं। वह जानती थी कि परिमल धनियों से एक तरह से घृणा ही करता है। कालेज की यूनियन में उसने बराबर समाजवाद का ही पक्ष लिया है। अभी अभी उस दिन की बात है कि इस विषय पर वादविवाद हो रहा था कि अधिक खाद्य उत्पन्न करने के लिये जमींदारी प्रथा को दूर करना जरूरी है या नहीं, तो इस पर परिमल ने जमींदारी के विरोध का पक्ष लिया था और जोरदार शब्दों में यह कहा था कि जमींदारी प्रथा के उच्छेद किये बगैर किसी भी हालत में न तो जमीन की उन्नति हो सकती है, न अच्छे खाद्य का उपयोग हो सकता है और न अच्छे यंत्र का ही प्रयोग हो सकता है; क्योंकि जब तक किसान को यह डर रहेगा कि किसी भी समय उसकी जमीन छीनी जा सकती है; तब तक वह उसमें व्यापक दिलचस्पी नहीं ले सकता, इत्यादि। मजे की बात यह है कि रेनुका स्वयं एक बड़े जमींदार की पुत्री तथा एकमात्र उत्तराधिकारिणी होने पर भी परिमल के साथ सहमत थी, कम से कम वह उसके तर्कों के विरुद्ध कोई तर्क नहीं दे पायी थी।

दूसरी तरफ रेनुका को यह सन्देह था कि उसके पिता जी परिमल को कहाँ तक पसन्द करेंगे। परिमल हर समय निर्भीकता के साथ अपने मतों को व्यक्त करने का आदी था और दशरथ बाबू अन्य जमींदारों की

तरह खुशामद-पसन्द थे। वे जमींदार-श्रेणी के विरुद्ध किसी प्रकार की बौछार बर्दाश्त करने के लिये तैयार नहीं थे। ऐसी हालत में रेनुका उधेड़बुन में पड़ गयी कि माता के कथानुसार परिमल को घर पर बुलाना शुरू करना चाहिये या नहीं। बड़ी देर तक मन ही मन विचार करने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँची कि परिमल को बुलाना चाहिये। उसके अन्दर जो यौवन था, वह एक हद तक ही नतीजों पर विचार करने के लिये तैयार था। प्रत्येक पग पर नतीजों पर विचार कर कदम उठाना बुढ़ापे का काम है, न कि जवानी का। रेनुका ने मन ही मन न मालूम कैसे लगा लिया कि चलो जो कुछ होगा सो अच्छा ही होगा।

माता और पुत्री में देर तक बातें होती रहीं, फिर रेनुका माता को दवा पिलाकर वहाँ से चली गयी।

२

दशरथ बाबू अपने बैठक में पहुँचे तो वे गुस्से से लाल हो रहे थे। वे यदि दुनिया में किसी से प्यार करते थे तो अपनी पुत्री रेनुका से। वे उसके लिये बात की बात में अपनी जमींदारी तो क्या जान भी दे सकते थे। उन्होंने यह जो सुना कि रेनुका की मोटर पर किसानों ने ढेले फेंके हैं तो वे कुछ करने के लिए उतावले हो गये। उन्होंने इसमें अपना भारी अपमान भी समझा। यदि ये किसान उन पर ढेले फेंकते तो वे इसे इतना बड़ा अपमान नहीं समझते और न शायद उन्हें इतना क्रोध ही आता पर जब उन्होंने सुना कि उनकी प्यारी लड़की पर ढेला फेंका गया तो वे आगबबूला हो गये।

जब उनका प्रधान कारिन्दा शमीजान उनके सामने आया तो उन्होंने बिना किसी भूमिका के ही उससे जवाब तलब करते हुए पूछा—क्यों जी तुम लोग सब सोते रहते हो क्या?

शमीजान यों ही इस असमय बुलावे से घबड़ाया हुआ था अब जो यह प्रश्न सुना तो उसका होश जाता रहा। फिर भी वह पुराना खुर्राट था, सम्हल कर बोला—नहीं तो हजूर, क्या बात हो गई ?—फिर कुछ रुककर बोला—क्या कोई खास बात हो गई ?

दशरथ बाबू ने मानो शमीजान की बातों को सुना ही नहीं। बोले—यह पीरपुर के पास आज क्या सभा हो रही थी उसमें कौन लोग थे ? सुना कि सभा के लोग राहगीरों पर ढेलेबाजी और उनसे छेड़खानी भी कर रहे थे। क्या बात है ?

—वे यह बताना नहीं चाहते थे कि उनकी पुत्री पर ढेले बरसाये गये।

शमीजान को भी इस सभा की बात मालूम थी। उसने सुना था कि आज वहाँ पर दस बीस गाँव के मुसलमानों की सभा होनेवाली थी, बोला—हजूर एक मुसलिम लीग की सभा होनेवाली थी, उसमें क्या हुआ पता नहीं, पर हमारे आदमी गये हुए हैं, उनके आने पर सब पता मालूम हो जायगा।—फिर कमरे में टँगी हुई घड़ी की तरफ देखते हुए बोला—अब तक तो सभा खतम भी हो गयी होगी और लोग सभा से लौट आये होंगे।

दशरथ बाबू ने जो लीग का नाम सुना तो कुछ उधेड़बुन में पड़ गये। बात यह है कि प्रान्त में वर्षों से लीगी मंत्रिमंडल था फिर यह जिला जिसका नाम हम नहीं बतायेंगे अत्यन्त अधिक संख्यक मुसलमानों का था। फिर वे यह भी जानते थे कि शमीजान ऊपर से किसी संस्था का सदस्य न होने पर भी मुस्लिम लीग के साथ सहानुभूति रखता था। दशरथ बाबू के चेहरे पर बल आ गये। पर फिर भी जब उन्होंने रेनुका पर ढेले फेंके जाने की बात सोची, तो फिर उनको क्रोध हो आया, बोले—लीग की सभा हो रही थी, हो, पर लीग यह थोड़े ही कहती है कि राह-गीरों पर ढेले चलाओ—कहने को तो दशरथ बाबू ने ऐसा कह दिया, पर कुछ महीनों से लीग की जैसी रवैया थी, उससे उन्हें इस बात में सन्देह था। कुछ सोचकर वे बोले—अच्छा शमीजान तुमको यह मालूम

है कि हमारे इलाके के मुसलमान भी इस सभा में गये थे या नहीं।

—हजूर गये थे।

—उनको बुलाओ।

शमीजान समझ गया कि दशरथ बाबू एक मूर्खतापूर्ण बात कह रहे हैं, क्योंकि हजारों की तायदाद में लोग गये हुए थे, उनमें से कितनों को बुलाया जा सकता था। पर यह बात दशरथ बाबू को कहना मानो उनके क्रोध में घृताहुति डालना था। फिर भी कुछ कहना तो था ही, इसलिये वह बोला—हजूर किसे किसे बुलावें ? कहिये तो एकाध को बुलावें। फिर हमारा भेजा हुआ अपना आदमी गया हुआ था, कहिये तो पहिले उसी को बुलावें।

—कौन भेजा गया था ?

—हजूर मैंने अपने साले एतमाद को भेजा था।

—अच्छा, उसे बुलाओ।

शमीजान का हुकुम पाकर फौरन एक लठैत दौड़ा और चूँकि उसका घर करीब ही था, इसलिये एतमाद बहुत जल्दी ही सलाम कर दशरथ बाबू के सामने खड़ा हो गया।

दशरथ बाबू ने पूछा—आज तुम पीरपुर की सभा में गये थे ?

प्रश्न पूछा तो एतमाद से गया था, पर इसका उत्तर शमीजान ने दिया, बोला—हजूर मैंने सभा की खबर पाकर और यह जानकर कि हजूर के इलाके के सभी मुसलमान इसमें शरीक होंगे एतमाद को भेज दिया था ताकि वह सारी बातों का पता लगा लावे।

बात बिल्कुल झूठी थी। स्वयं शमीजान को इस सभा में जाने का निमंत्रण मिला था, यहाँ तक कि उससे यह अनुरोध किया गया था कि वह भी सभा में कुछ बोले पर कई कारणों से वह बीमारी का बहाना बना कर वहाँ नहीं गया था, जब लोग उसे बुलाने आये तो उसने एतमाद को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। एतमाद अभी कुछ दिनों से अपने

बहनोई के यहाँ नौकरी की तलाश के लिये आया हुआ था। शमीजान ने यह अच्छा मौका देखा कि इसी बहाने अपने साले को जमींदार बाबू के सामने परिचित किया जाय।

दशरथ बाबू ने पूछा—क्यों एतमाद तुमने उस सभा में क्या देखा?

एतमाद कुछ उधेड़बुन में पड़ गया कि मुसलमानों की एक सभा की कार्रवाई कहाँ तक एक हिन्दू को बताना चाहिये, वह बगलें झाँकने लगा। शमीजान अपने साले की इस उधेड़बुन की बात को ताड़ गया, वह झट से बीच में पड़ते हुए बोला—जो बातें हुई हों, उन्हें सच सच बताओ। कई पुश्त से हम लोग इनका नमक खा रहे हैं।

बहनोई के इस कथन से प्रोत्साहित होकर एतमाद ने कहा—पीरपुर के जमींदार मीर बन्दे अली इस सभा के सदर थे। .

—ऐं? दशरथ बाबू को यह तो मालूम था कि मीर बन्दे अली मुस्लिम लीग में हैं, पर उनके सभापतित्व में कोई सभा हो और उसमें जमींदार की मोटर पर ढेला फेंका जाय यह आश्चर्य की बात थी। इसका कारण यह था कि मीर साहब स्वयं एक जमींदार थे, वे जमींदार सभा के सभापति भी थे। इस कारण और चाहे उस सभा में जो कुछ भी हुआ हो, उसमें जमींदारों के विरुद्ध कोई प्रदर्शन होना आश्चर्य की बात थी। बोले—तो यह लीग की सभा थी, न कि किसान सभा की?

—नहीं, यह लीग ही की सभा थी, पर जैसा कि पछाँह से आये हुए एक बोलने वाले ने कहा लीग ही मुसलमानों की वाहिद जमायत है, मुसलमानों को न तो किसान सभा की जरूरत है और न जमींदार सभा की जरूरत है।

—तो इस पर मीर साहब ने कुछ कहा?

—नहीं, वे तो सदर थे, वे तो चुपचाप सुनते थे।

—तो इस सभा में खास क्या बात हुई?

—पछाँह से आये हुए उस मौलाना ने कहा कि अब यह तय हो

चुका है कि सारा हिन्दुस्तान न सही तो बंगाल, पंजाब और उन्होंने कुछ सूबों के नाम गिनाये, ये केवल मुसलमानों के ही प्रान्त हो जायँगे। उन्होंने काँग्रेस और हिन्दू महासभा को बुरा बताया और कहा कि इन्हीं की वजह से हिन्दुस्तान की आजादी, साथ ही पाकिस्तान पिछड़ रहा है। इन्होंने किसान सभा और दूसरी ऐसी जमायतों को भी बुरा बताया क्योंकि ये मुसलमानों में आपस में तफरका डालते हैं। उन्होंने कहा कि मुसलमान जमींदारों को पाकिस्तान मे कोई डर नहीं होना चाहिये, क्योंकि पाकिस्तान में मुसलमान जमींदार रहेंगे। हाँ, उन्होंने यह कहा कि हिन्दू जमींदारों को खतम करना है।

अब दशरथ बाबू समझ गये कि क्यों मीर बन्दे अली ने जमींदार होते हुए भी ऐसी सभा में सभापतित्व किया। दशरथ बाबू जब यह समझ गये कि जमींदारों का संयुक्त मोर्चा इस प्रकार टूट गया, तो उन्हें बड़ा अफसोस हुआ। उन पर एक तरह का आतंक छा गया। उन्हें मीर बन्दे अली पर बहुत क्रोध आया, पर वे इतने व्यावहारिक तो थे ही कि वे समझ गये कि यह क्रोध व्यर्थ है। फिर भी उन्होंने अन्त तक लड़ने का निश्चय किया। वे जानते थे कि इस जबानी पिस्तौलबाजी से उनका कुछ बिगड़ने का नहीं है। जमींदारी की नींव बड़ी पक्की है।

एतमाद की बातों को सुन कर उन्होंने सारी परिस्थिति को समझ लिया। वे समझ गये कि जमींदारों का संगठन काम न देगा। फिर भी कुछ करना जरूरी था।

उन्होंने एतमाद को जाने के लिये कहा। फिर उन्होंने एक एक करके कुछ मुसलमान किसानों को बुलाया, उन पर तम्बीह की, उनको धमकाया, उन्हें याद दिलाया कि अभी वह जमाना दूर नहीं चला गया जब वे जाड़े की रातों को मुर्गा बन कर जमींदार की डेवढ़ी के सामने काट देते थे।

इसी प्रकार धमकाते डाँटते रात अधिक हो गयी, पर दशरथ बाबू

अथक रूप से अपना काम करते जा रहे थे। उनकी परिस्थिति अजीब थी। करीब करीब उनकी सारी रियाया मुसलमान थी, वह तो पाकिस्तान के स्वप्न में अपनी परिस्थिति को भूल चुकी थी और समझती थी कि एक हिन्दू के जमींदार होने के कारण ही उनकी सारी आफतें हैं। वह आँख खोल कर इतना भी नहीं देखती थी कि पास ही में मुसलमान जमींदार के इलाके में मुसलमान किसानों की हालत उनसे किसी भी प्रकार अच्छी नहीं थी।

दशरथ बाबू के जो हिन्दू किसान थे, वे भी समझते थे कि दशरथ बाबू के ही कारण उनकी सारी तकलीफें हैं। वे यह नहीं चाहते थे कि दशरथ बाबू की जगह पर कोई मुसलमान जमींदार हो जाय वे तो जमींदारी प्रथा का ही उच्छेद चाहते थे।

उधर जमींदार सभा से भी अब कोई उम्मीद नहीं रह गयी थी, क्योंकि जमींदारों में भी सम्प्रदायिकता का उदय हो चुका था और उनका संयुक्त मोर्चा टूट चुका था।

रात के दस बज चुके थे। देहात में इतनी रात बहुत होती है। फिर भी नींद से जगा जगाकर किसान लाये जा रहे थे और उनको धमकाया जा रहा था। जो कुछ भी हो दशरथ बाबू में इतनी व्यावहारिक बुद्धि थी कि वे किसी को पिटवा नहीं रहे थे, न मुर्गा ही बनवा रहे थे, वे तो केवल इन बातों की धमकी देते जाते थे।

रेनुका खा-पीकर कब की सो गई थी। रोज वह नौ बजे सो जाती थी। जब उसकी नींद खुली तो उसे ऐसा मालूम हुआ कि कचहरी के बैठके में अभी तक कुछ शोरगुल हो रहा है। बहुत से लोगों की एक साथ आवाज-सी मालूम हो रही थी, जैसे कोई बाजार लगा हुआ हो या यह कोई आँधी थी, दूर से जिसकी आहट उसके कानों में पहुँची।

उसने अपनी नौकरनी ,को बुलाकर पूछा कि क्या मामला है, यह शोर क्यों है ? तो उसने बताया कि मालिक सही शाम से बाहर गये हुये

हैं और तब से भीतर नहीं आये। किसी जरूरी काम से सब किसानों को बुलवा कर बात कर रहे हैं। नौकरनी ने यह नहीं कहा कि बाबू गरम हो रहे हैं, पर रेनुका समझ गयी।

उसके माथे पर बल आ गये। माता जी ने ठीक ही कहा था कि कन्या के अपमान से उन्हें बहुत दुःख तथा क्रोध आया है और वे तब से मालूम होता है उसी में परेशान हो रहे हैं।

उसने अपनी ड्रेसिंग मेज पर रखी हुई बत्ती को तेज किया, उठ बैठी, एक बार अपने चेहरे को सामने के बड़े आइने में देखा, फिर बत्ती घटाकर बाहर की तरफ से आती हुई आवाजों को ध्यान से सुना, पर कुछ साफ साफ सुनाई नहीं पड़ा। तब उसने फिर बत्ती तेज की, उठ खड़ी हुई, कपड़े पहने, फिर एक बार अच्छी तरह अपने को आइने में देखा कि कहीं कोई त्रुटि तो नहीं है। उसकी आँखों में नींद भरी हुई थी। आँखें मतवाली तथा अलसायी हुई मालूम हो रही थीं, बहुत अच्छी लग रही थी। वह आइने की तरफ देखकर मुस्करायी, फिर जिस तरफ से शोर आ रहा था, उस तरफ जाने लगी।

दशरथ बाबू एक मुसलमान किसान को डाँट रहे थे, पर असल में वे उस समय खड़े सब किसानों को डाँट रहे थे, कह रहे थे—तुमको शर्म नहीं आती कि जा जाकर लोगों की बहकी बहकी बातें सुनते हो। आखिर मुसलमान जमींदार भी तो हैं, पर तुम हम ही पर खार क्यों खाये हो। कोई कह तो दे कि अपने किसानों पर हम अधिक ज्यादती करते हैं, तो हम कहें। रहा यह कि तुम जो चाहे सो कर सकते हो; पर यह याद रखना कि हम जमींदार ही रहेंगे और तुम किसान, इसमें कोई फर्क नहीं आयेगा। तुम अगर नमकहराम हो और दोगले हो, तभी हमसे बिगाड़ करोगे। फिर तुम हमसे बिगाड़ करके जाओगे कहाँ ? तुम्हें तो यहीं रहना है, और हमें भी...

रेनुका कमरे के बाहर से ही परदे के पीछे से ये बातें सुनती रही।

कोई ऐसी बात नहीं थी। उसने बचपन से इस प्रकार की बातें तथा इस प्रकार के दृश्य बहुत देखे थे। उसने लोगों को पिटते हुए तथा मुर्गे बनते हुए भी देखा था। किसी पर यह जुर्म होता था कि उसने लगान नहीं दिया था, तो किसी पर यह जुर्म होता था कि उसने जमींदार का कुछ बाग काट लिया था या इस किस्म की कोई बात की थी। पर आज के दृश्य में कुछ फर्क था। वह फर्क यह था कि जो किसान सामने खड़े थे, उनके चेहरे पर आतंक के साथ ही साथ एक जिद की भावना थी। भयंकर जिद। दूसरी तरफ बाबू जी के चेहरे में भी फर्क था। आज जैसे उनका आत्म-विश्वास टूट चुका था और वे अपनी पराजय को निश्चित समझ कर भी लड़ते हुए मालूम पड़ रहे थे।

रेनुका को स्वयं भी डर मालूम हुआ। न मालूम काहे का डर। एक अज्ञात तथा परिभाषाहीन डर, जैसा बहुत गहरी तथा चौड़ी नदी के किनारे या बहुत ऊँचे पहाड़ पर खड़े होकर नीचे की तरफ देखने से मालूम होता है।

रेनुका थोड़ी देर तक परदा पकड़ कर किंकर्तव्यविमूढ़-सी खड़ी रही। एक बार तो उसने यह सोचा कि वह लौट चले, पर फिर माता जी की परेशान आँखों की बात याद आई और उसने बाबू जी के रंग उड़े हुए चेहरे की ओर देखा, और उसने कर्तव्य का निर्णय कर लिया। वह आगे बढ़ी और उसने धीरे से बाबू जी के कंधे पर हाथ रख दिया!

एक क्षण में ही दशरथ बाबू का तना हुआ चेहरा कोमल हो गया, हक्का बक्का होकर बोले—बेटी, यहाँ क्यों?

रेनुका बोली—बाबू जी बहुत रात हो गई। चलिए ..

दशरथ बाबू ने घड़ी की ओर देखा तो सचमुच साढ़े दस बज चुके थे। फिर उन्होंने कुछ भी नहीं देखा, कन्या के हाथ पकड़ कर भीतर चले गये।

ज्योंही दशरथ बाबू भीतर गये त्योंही सब किसान शोर करते हुए

निकल गये। डेवढ़ी से बाहर निकल कर एक नौजवान किसान ने अपने साथियों से कहा—लड़की बड़ी नमकीन है।

—हाँ, यह वही मोटर वाली है।

पहले जिस किसान ने बात की थी, उसने कहा—हम लोगों को कुछ समझती ही नहीं। देखा किस तरह हम लोगों की तरफ ताकी भी नहीं।

—हाँ, पर इनका दिन अब खतम ही होने वाला है। अब इनका सूरज डूब गया।

—तो क्या होगा?—एक तीसरे नौजवान ने कहा।

—काहे का क्या होगा?

—यह लड़की किसे मिलेगी?

इस प्रश्न को सुन कर सब लोग हँस पड़े। सब ने अपना अपना दावा पेश किया। कोई बोला कि मुझे यह लड़की मिलनी चाहिये, क्योंकि मेरी निगाह सालों से इस पर है। किसी ने कहा कि मेरा दावा इसलिये बड़ा है कि मैं गाँव की लीग का सदर हूँ।

इस गोल में जो लोग थे, वे मुख्यतः नौजवान थे। सामने से एक बूढ़ा किसान जा रहा था, यह भी उन लोगों में था जो दशरथ बाबू के यहाँ बुलाये गये थे; नौजवानों के इस गोल को मसखरी सूझी तो ये उस बूढ़े के पास पहुँच गये और उसे घेर कर उससे पूछने लगे।

एक नौजवान ने पूछा—बूढ़े बाबा जो पाकिस्तान हो गया, तो तुम क्या लोगे?

बूढ़ा कुछ घबड़ाया, पर जब उसने यह देखा कि ये नौजवान मसखरी पर उतारू हैं और कोई उत्तर दिये बगैर इनसे पार न लगेगा, तो वह उत्तर देने के लिये तैयार हो गया। पर वह अभी कुछ कह भी नहीं पाया था कि एक नौजवान ने बूढ़े की तरफ से कहा—बाबा बूढ़े हुए हैं तो क्या कोई शौक थोड़े ही घटा है, बाबा भी जमींदार की बेटी को मन

ही मन चाहते होंगे कि यह हमें मिल जाती तो अच्छा रहता !

बूढ़े ने प्रतिवाद करते हुए कहा—लाहौल बिलाकूवत, तोबा, तोबा। अब कब्र में पाँव रखा है, हमें लड़की और लड़के से क्या मतलब है। हमारे लिये तो बुढ़िया ही भारी है, उसे ही खिलाने को यहाँ नहीं है।

एक दूसरे नौजवान ने कहा—ठीक तो है बाबा को जमींदार की बीबी दे दी जायगी। जब उसकी लड़की इतनी खूबसूरत है, तो वह भी एक ही खूबसूरत होगी, बाबा की उससे खूब निभेगी।

बूढ़ा फिर तोबा तोबा करके पीछे हट गया, पर वह तो चारों तरफ से घिरा हुआ था, जाता तो कहाँ जाता ?

पहले नौजवान ने कहा—पर सुना है कि वह तो बीमार रहती है, सात साल से कमरे से नहीं निकली।

दूसरे नौजवान ने कहा—तो बाबा ही कौन से भारी पहलवान हैं, इनकी बुढ़िया से तो अच्छी ही होगी, खूब माल खाकर पली है।

तीसरे नौजवान ने कहा—तो बाबा पसन्द है न ? पाकिस्तान हुआ तो तुम्हें जमींदार की बीबी दिला दी जायगी। खूब गुलछर्रे उड़ाना।

बूढ़ा कुछ कहने ही जा रहा था कि पीछे से एक चौथा नौजवान कह उठा—बाबा को तो लड़की ही चाहिये, उसकी माँ नहीं। क्यों बाबा ठीक है न ?

इस बूढ़े किसान का नाम सखर था। इसे दशरथ बाबू अपने विश्वस्त किसानों में समझते थे। था भी आदमी बेलौस। कुछ थोड़ी जमीन और कुछ ढोर थे। अपने काम से काम रखता था। उसने जो देखा कि मसखरों में फँस गया है, तो अपना छुटकारा करना चाहा पर वहाँ तो लोग इस बात पर तुले थे कि कुछ कबुलवा लो तो छोड़ो।

कई नौजवानों ने उससे इस प्रकार से पूछा तो भी उसने कोई उत्तर नहीं दिया। प्रत्येक प्रश्न पर तोबा ही तोबा कहा। यहाँ तक कि एक मसखरे ने झुँझलाकर कहा—बाबा किसी नौकरनी से दिल लगाये होंगे

क्यों बाबा है न यही बात ? अब डर काहे का, खुल कर कहो, जो माँगोगे वही मिलेगा। रिजर्व करा लो, नहीं तो बाद को खाली हाथ रह जाओगे। कहता हूँ पछताओगे।

बूढ़े ने कहा—क्यों परेशान करते हो ? मुझे कुछ न चाहिए। तुम्हीं लोग क्या कम हो। तुम लोगों से कुछ बचे तब तो कोई पावे।

पहले नौजवान ने दूसरे नौजवान से आँख का इशारा करते हुए कहा—अच्छा इसलिये बाबा कुछ नहीं माँग रहे हैं कि उन्हें डर है कि हम लोगों से कुछ नहीं बचेगा।

दूसरे नौजवान ने कहा—हाँ, मैंने पहले ही बताया कि बाबा बड़ा घुटा हुआ है चाहता है कि वार करे तो खाली न जाय।

बूढ़े को यों ही देर हो गई थी, वह झल्ला गया। बोला—अभी कहीं कुछ हुआ नहीं, न पाकिस्तान न हिन्दुस्तान, अभी तो अंगरेजों का राज है और लगे हिस्सा-बँटवारा करने। मुझे छोड़ दो, बेकार की बातें तुम लोग करो। तुम लोगों की उम्र में सब कुछ ठीक है, मुझे जाने दो।

पर किसी ने बूढ़े का रास्ता न छोड़ा। एक नौजवान ने कहा—खैर जाने दो बाबा हम पागल ही सही, पर मान लो कि पाकिस्तान हो जाय, तो तुम जमींदार के घर से क्या लोगे ?

बूढ़े ने देखा कि सब लड़के जोश में हैं और समझते हैं कि सारा जगत जल्दी ही मुसलमान हो जायगा, जो नहीं होगा वह तलवार के घाट उतार दिया जायगा। एक क्षण के लिये उसकी बूढ़ी नसों में इन नौजवानों का खून बहने लगा। उसने कहा—सच बताऊँ मैं क्या लूँगा ? कहीं मजाक तो नहीं करोगे ?

सब ने एक साथ हाँ कहा। तब बूढ़े ने कहा—बाबा मुझे कुछ न चाहिये। अगर जैसा तुम कहते हो वैसा हो गया तो जमींदार के घर एक गाय है, वह मुझे दे देना। वह दस सेर दूध देती है। मेरा मन उसी में लगा हुआ है।

सब नौजवानों ने एक साथ कहा—अच्छी बात है, वह गाय तुम्हें जरूर मिलेगी।

अब मजाक पूरा हो चुका था, उन्होंने बूढ़े को छोड़ दिया। बूढ़ा अलग चला गया और वे लोग पहले की तरह आपस में जमींदार की चीजों को बाँटते हुए, कहकहा लगाते हुए, शोर मचाते हुए चले गये।

यह कोई पहला मौका नहीं था जब इस प्रकार डाँट-फटकार के लिये किसान जमींदार के घर पर बुलाये गये हों। कई बार इस प्रकार रात भी हो गई थी, पर इस प्रकार बुलाये हुए लोग शोर मचाते हुए तथा कहकहा लगाते हुए नहीं जाते थे, वे लोग चोर की तरह चुपचाप जाते थे। यह एक नई बात थी।

दशरथ बाबू अपनी बेटी के साथ अपने कमरे में पहुँच चुके थे, वे खाना खा रहे थे। उनके कानों में बड़ी देर तक इन लोगों का शोर पहुँचता रहा। उनका जी खाने में नहीं लग रहा था। वे उकता कर एक बार बोल भी उठे—देख रही हो ये लोग कैसे शोर मचाते हुए जा रहे हैं!

रेनुका बोली—हाँ—और जिस तरफ से शोर आ रहा था उस तरफ अँधेरे में आकाश की ओर ताकती रही। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह किसी भयंकर विपत्ति की पूर्व सूचना है और उसका हृदय काँप उठा।

३

रात को दशरथ बाबू को अच्छी तरह नींद नहीं आई। उन्हें कई बार बुरे बुरे स्वप्न दिखाई पड़े। एक बार उन्होंने स्वप्न में यह देखा कि उनकी मोटर जल रही है और उनके हाथ-पैर बँधे हुए हैं। जिन लोगों ने उनके हाथ-पैर बाँध रखे थे, वे सबके सब जान-पहिचान के आदमी थे, फिर भी ठीक ठीक पहचान में नहीं आ रहे थे। एकाएक उन्हें याद आया कि उनके पैर बधे हुए हैं, पर रेनुका कहाँ है? उन्होंने चारो तरफ

निगाह दौड़ायी तो रेनुका का कहीं पता न लगा। इस विचार से वे इतने व्यथित हुए कि वे पागल-से हो गये और उन्होंने हाथ-पैर की रस्सी तुड़ा ली। जहाँ मोटर जल रही थी, वहाँ पहुँचे तो देखा कि सामने ही रेनुका की साड़ी पड़ी है। वे समझे कि रेनुका जला दी गई। यह सोचना ही था कि वे जहाँ मोटर जल रही थी, उसमें कूद पड़े। इतने ही में उनकी नींद खुल गयी।

बड़ी देर तक उनके मन पर इस स्वप्न का प्रभाव रहा। वे बड़ी देर तक बैठे रहे, और सिगार पीते रहे, फिर कहीं उनकी तबियत शान्त हुई। उन्होंने अपने को यह समझाया कि यह सब कल्पना का प्रभाव है, इस स्वप्न में कोई असलियत नहीं है। फिर भी उनका मन शान्त नहीं हुआ।

वे सबेरे ही उठे, और सोचने लगे कि परिस्थिति का मुकाबला कैसे किया जाय। वे उन व्यक्तियों में थे जो पैर के नीचे घास जमने देने वाले नहीं थे। ऐसे समय में उन्हें इस बात की जरूरत महसूस हुई कि कोई ऐसा होता जिसके साथ दिल खोल कर परामर्श कर सकते। पर यहाँ कौन, था जिससे परामर्श करते ?

उनका प्रधान कारिन्दा शमीजान कभी उनका बहुत ही विश्वासपात्र आदमी था। हर बुरे-भले काम में साथ देता था। मालिक के हितों पर वह मालिक से अधिक ध्यान रखता था, पर कल जिस समय वे किसानों को बुलाकर डाँट रहे थे, उस समय उन्होंने यह अजीब बात देखी कि अब शमीजान उनका पूरा साथ नहीं दे रहा था। पहले तो यह ढंग था कि हिन्दू हो या मुसलमान, कोई किसान सामने आ जाता था, मालिक उसे एक डाँट बताते थे तो शमीजान उसे दस डाँट बताता था। यदि मालिक उसे साला कहते थे, तो शमीजान उसे सुअर का बच्चा कहता था। यदि मालिक उसे गालियाँ देते थे तो शमीजान उसे मुर्गा बनवाता था। इसी ढंग से जमींदारी का काम चलता था, पर कल तो बिल्कुल दूसरा

ही नक्शा सामने आया। शमीजान तो ऐसा खड़ा था मानो उसे काठ मार गया हो। उसके चेहरे से ज्ञात होता था कि वह किसी अज्ञात शक्ति के सामने सहम रहा था। यह स्पष्ट था कि वह अब एक सलाहकार के रूप में बिल्कुल व्यर्थ था।

दशरथ बाबू ने जो और सोचा तो यह पाया कि रेनुका पर वे एतबार कर सकते हैं, पर एक तो रेनुका अभी बच्ची थी, वह जानती ही क्या थी? दूसरे वह उसे परेशानी में डालना नहीं चाहते। अभी उसकी उम्र ही क्या है, तितली-सी घूमती है, संसार की समस्याओं से अनभिज्ञ। उसे क्या बताया जाय कि किस प्रकार आफत में जान फँसी हुई है। उसकी शान्ति में खलल डालना अनुचित था।

हाँ, एक सलाहकार हो सकता था। वह थी रूपवती। दशरथ बाबू सबेरे ही सबेरे रूपवती के कमरे में पहुँचे। रूपवती को तो यों ही रात भर नींद नहीं आती थी, कल तो बिल्कुल ही नींद नहीं आयी थी। बीमार होने पर इन्द्रियाँ कुछ निस्तेज हो जाती हैं, पर कुछ इन्द्रियाँ या यों कहना चाहिए किसी किसी विषय की चेतना तीव्र हो जाती है। शायद चेतना भी उतनी तीव्र नहीं होती, जितनी कि कल्पना। विशेषकर रोगग्रस्त कल्पनाएँ तीव्र हो जाती हैं।

रूपवती पति के पैरों की आहट को खूब पहचानती थी। उसने जो आहट सुनी, फौरन चादर मुँह से हटा दिया और शंकापूर्ण स्वर से बोली—इतने सबेरे क्यों आये? क्या बात है?

दशरथ बाबू पलग के सामने की एकमात्र कुर्सी पर बैठ गये फिर बोले—रियाया बहुत सरकश हो गयी है। पचासों तो भड़काने वाले हैं।—कहकर वे चुप हो गये। जंगले से बाहर नवीन सूर्य की किरणों की ओर देखने लगे।

रूपवती बोली—हाँ, मैं भी कल रात को सुन रही थी कि शोर हो रहा है। एक बार तो इतना शोर हुआ कि कुछ झपकी-सी लग रही थी,

खुल गई। मैंने नौकरनी से पूछा कि कितने बजे हैं? तो बतलाई कि ग्यारह बज रहे हैं। शोर का कारण पूछा तो वह बता न सकी, बोली कि कचहरी की तरफ कुछ हल्ला हो रहा है। धीरे धीरे शोर घट गया।

रूपवती चुप हो गई। पर कुछ देर तक पति के परेशान चेहरे की ओर देखकर बोली—एक बात कहना चाहती हूँ, अगर सुनो तो कहूं?

—क्या?—व्याकुलता के साथ दशरथ बाबू ने पूछा—तुम्हारी कौन सी ऐसी बात है जो मैं नहीं सुनता हूं?

रूपवती बोली—इसलिये तो कह रही हूँ। तुम अब किसानों को मुर्गा वगैरह न बनवाया करो। उनकी आह पड़ती है, अच्छा नहीं होता।

दशरथ बाबू ने व्यथित होकर कहा—तुम समझती होगी कि कल मैं यहाँ से गया तो किसानों को बुलवा कर मुर्गा बनाने या पिटवाने लगा, पर तुम्हें क्या मालूम, यहां वर्षों से ये बातें बन्द हो गईं। पहले के किसान धर्मभीरु होते थे, वे समझते थे कि अगर उन्होंने लगान नहीं दिया या अन्य कोई कसूर किया, तो वे कसूरवार है, पर अब वे दिन कहाँ? अब तो किसान उल्टा हम जमींदारों को डाकू समझते हैं। कल मैंने उनको जरा जरा तम्बीह कर दी, इसी पर वे शोर मचाते हुए वापस जा रहे थे। हमें विश्वास है कि वे हमें गालियाँ देते जा रहे थे।

रूपवती खाँसने लगी। सम्हल कर बोली—न मालूम भगवान क्या करने वाले है। इस झगड़े का कहाँ अन्त होगा, कौन जाने? मुझे तो बड़ा डर लगता है। मेरा तो जी ऐसा चाहता है कि हटाओ यह जमींदारी, चलो, अब काशी जी में रहें। रही रेनुका सो उसकी शादी कर दो, वह जैसा चाहे रहे, सारी जमींदारी और सब जायदाद उसे दे दो।

दशरथ बाबू ने लम्बी साँस खींचते हुए कहा—रूपा, तुम तो सोचती हो कि समाधान बहुत आसान है, पर इतना आसान नहीं है। मुझे अपने या तुम्हारे बारे में कोई विशेष फिक्र नहीं है, फिक्र है तो इसी भोली भाली लड़की के लिये है। वह तो दुनिया को जरा भी नहीं पह-

चानती। किसी को रोते-बिलखते देख लेती है तो समझती है कि यही दुनिया में सबसे बड़ा दुखिया है। यह नहीं समझती कि उसका रोना-बिलखना एक पर्दा हो सकता है जिसके पीछे वह अपनी असलियत को छिपाकर जीवन की वास्तविकताओं से बचना चाहता है। कल मैं रात तक कचहरी में बैठा था तो वह स्वयं पहुँची, मुझे खिला-पिलाकर बिस्तरे पर लेटा कर तब सोने गई। सोचता हूँ कि उसके लिये कुछ छोड़ जाऊँ, इसी के लिये सारा सरदर्द है, नहीं तो मेरा क्या है। यहाँ कितने दिन हैं।

दशरथ बाबू चुप हो गये। रूपवती भी चुप रही। थोड़ी देर बाद दशरथ बाबू बोले—तुम तो इसी पर नाराज हो रही हो कि मैंने किसानों की तम्बीह की। पर सोचो अगर बाबू जी का जमाना होता और इस प्रकार कोई उनकी पोती पर ढेले फेंकता तो वे क्या करते? उस हालत में इस वक्त दो चार लाशें पड़ी हुई होतीं।

रूपवती ने देखा कि पति का पारा फिर चढ़ा चाहता है, इसलिये बीच में बोल पड़ी—हाँ, पर वह जमाना और था। अब और बात है। अब बर्दाश्त करने में ही भलाई है।

—बर्दाश्त करने में भलाई है? वाह खूब सिखा रही हो। मेरी स्त्री और लड़की पर लोग हमला करें और मैं बर्दाश्त करूँ? क्या जमींदारी इतनी बड़ी गुनाह है कि किसी को अपनी स्त्री तथा लड़की की इज्जत बचाने का हक नहीं है? मैं इस बात को कभी नहीं मान सकता, कभी नहीं। अगर वे लोग मेरा अपमान करें तो ठीक भी है क्योंकि मैं जमींदार हूँ। मैंने उनको कसूर पर सजा दी है, मैंने उनसे लगान वसूल किया, मैंने जरूरत पड़ने पर सख्ती की, पर वह बेचारी रेणु क्या जाने? उस पर क्यों हमला करते हैं! कायर, बदमाश, हरामजादे!

रूपवती प्रशंसात्मक दृष्टि से अपने पति को देखती रही। यह व्यक्ति जैसा बीस साल पहले था, वैसा अब भी है। वही बचपन, वही जोश, वही तेज! कुछ कमी नहीं हुई। पर इस समय उसे उत्साह देने का मौका

नहीं था। उससे अनर्थ ही होने का डर था। बोली—क्या छोटी सी बात पर इतने नाराज हो रहे हो ? शायद जिन लोगों ने ढेला मारा, वे बच्चे रहे हों। ..

दशरथ बाबू तन कर बोले—नहीं रूपा मुझे भरमाओ मत। ये लोग हर तरीके की दुष्टता पर आमादा हैं। इनके निकट बहू-बेटी का कुछ मूल्य नहीं है।

दशरथ बाबू और भी बहुत कुछ कहते, पर रूपवती ने रोकते हुए कहा—अच्छी बात है तो इस पर नाराज होने से काम थोड़े ही चलेगा। जो कार्रवाई करनी हो सो करो, पर जमाने को देखकर चलो। अच्छा, इस पर शमीजान वगैरह क्या कर रहे हैं ?

—शमीजान की अच्छी याद दिलाई। कल जब मैं किसानों को डाँट रहा था, तो वह वहाँ पर ऐसे खड़ा था मानो उससे कोई सरोकार ही नहीं है। घंटों में उसने एक भी शब्द नहीं कहा। देखो रूपा, इसके पहले कभी मुझे यह खयाल नहीं हुआ कि वह मुसलमान है, मैं उस पर पूरा भरोसा रखता था, पर कल मालूम हुआ कि वह भी पाकिस्तान के चक्कर में है। सब मुसलमान इस समय यह महसूस कर रहे हैं कि वे एक हैं और उनके असली दुश्मन हिन्दू हैं।

—रूपवती बोली—तो तुम हिन्दू लोग एक क्यों नहीं हो जाते ?

—यह क्या सम्भव है ! हिन्दुओं में एका नहीं है। आज हम किसी हिन्दू किसान से मदद नहीं पा सकते क्योंकि हम जमींदार हैं। सब तरह की संस्थाओं ने उनको समझा रखा है कि जमींदार किसानों के दुश्मन हैं, बस वे इसी बात पर सब कुछ भूले हुए हैं। रहे हिन्दू जमींदार, सो इस जिले के सभी हिन्दू जमींदार मेरी ही तरह परेशान हैं। हम लोगों का जो कुछ बल है, सो नौकर-चाकर तथा लोग-लश्कर का बल है, पर इनमें से कोई भी आज हमारे साथ नहीं है। हिन्दू इसलिये साथ नहीं हैं कि हम जमींदार हैं, मुसलमान इसलिये विरोधी हैं कि हम हिन्दू

हैं। इस प्रकार हम तो हर तरीके से गये। उधर लीगी सरकार है। सरकार से भी रक्षा की आशा कम है। अब हम करें तो क्या करें? दशरथ बाबू ने सिर थाम लिया, मानो वे ऐसी समस्या में पड़ गये हैं जिसका कोई समाधान नहीं है।

पति-पत्नी दोनों कुछ देर तक चुप रहे, फिर दशरथ बाबू कहने लगे—तुम्हें तो सब मालूम है कि शमीजान को किस तरह से मैंने जेल से बचाया, किस तरह उसे पढ़ाया, फिर उसके बाप की जगह पर रखा, पर आज मुझे ऐसा मालूम होता है कि वह मौका लगते ही मेरा गला घोंट देगा। न मालूम और क्या करे। आज सबसे बड़ी दुखद बात यह है कि मैं किसी का एतबार नहीं कर सकता। किसी का नहीं ..

रूपवती से और सहा नहीं गया। वह जोरों के साथ खाँसने लगी, खाँसते-खाँसते उसकी आँखें करीब-करीब बिलट गयीं, तब खाँसी रुकी। जल्दी से नौकरनियाँ इधर-उधर से दौड़ीं। दशरथ बाबू ने पास ही रखी हुई एक शीशी से एक चासनी की तरह दवा निकाल कर रूपवती को चटा दिया। किसी तरह खाँसी रुकी। सम्भल कर रूपवती ने कहा – मुझे बड़ा अफसोस होता है कि मैं ऐसी चिररोगिणी क्यों हुई, नहीं तो कम से कम तुम्हारी चिन्ताओं को कुछ बँटा तो सकती, यहाँ तो स्वयं ही सबके स्नेह तथा दया पर एक भारस्वरूप बनी हुई हूँ।

दशरथ बाबू ने रूपवती को तसल्ली देना शुरू किया। आगे फिर कोई गम्भीर बात नहीं हो सकी।

फिर भी दशरथ बाबू कर्मठ व्यक्ति थे। रूपवती के यहाँ से फारिग होकर ही मोटर तैयार करवा कर जमींदार सभा के सदर मीर बन्दे अली के पास पहुँचे। उन्हें समझाया कि किसानों की हालत कैसी हो रही है, पर उनके कानों पर जूं तक नहीं रेंगी। बात यह है कि उन्हें तो यह आश्वासन मिल चुका था कि मुसलमान जमींदारों पर कोई हमला नहीं है, हिन्दुओं को खतम करना ही आन्दोलन का उद्देश्य है।

पछाँह से आये हुए उस लीगी नेता ने बन्दे अली से कहा था—हम जमींदारी का खातमा थोड़े ही करना चाहते हैं, हम तो इस खित्ते को हिन्दुओं से पाक करना चाहते हैं। अगर आप हिन्दुओं के साथ जमींदार सभा बनाकर हमारे खिलाफ जायँगे, तो हम आपके खिलाफ भी आवाज उठाने के लिये मजबूर होंगे, नहीं तो हमें आपसे कोई बैर नहीं है।

इस प्रकार आश्वासन पाकर मीर बन्दे अली ने हिन्दुओं के साथ सम्बन्ध तोड़ देने का निश्चय कर लिया था। उसने लीग के फंड में एक मोटी रकम भी दे दी थी और यह वचन दिया था कि जब पाकिस्तान के लिये लड़ाई छिड़ेगी तो वह हर तरीके से अपनी सेवा अर्पित करेगा।

वह भला दशरथ बाबू की बातें क्यों सुनता। उसने गोलमोल बातें करनी शुरू कीं, बोला—हम जमींदार तो तभी कुछ कर सकते हैं जब सरकार हमारा साथ दे, पर यहाँ तो सरकार हर कदम पर हमारा विरोध करती है। वह तो जमींदारी की जड़ काटने पर उतारू है। ऐसी हालत में हमारे लिये एक ही पालिसी है कि हम चुप रहें और तेल तथा तेल की धार देखें।

दशरथ बाबू पुराने तजर्बेकार आदमी थे, वे समझ गये कि अब मीर बन्दे अली जमींदार सभा से अलग हो जाना चाहते हैं। इसके बाद उन्होंने थोड़ी बहुत बातचीत की, फिर उठ कर चल दिये।

वहाँ से दशरथ बाबू पड़ोस के दो-तीन हिन्दू जमींदारों के पास गये, पर वहाँ भी यही देखा कि वे खुद डूब रहे हैं, वे दूसरों को क्या बचाते। वे सभी रुपये खर्च करने पर तैयार थे, पर ऐसे समय में रुपये क्या होते हैं, आदमी ही सब कुछ होते हैं और आदमियों का कुछ भरोसा नहीं था। एक जमींदार क्षितीश बाबू ने कहा—भाई मैं तो बोरिया-बिस्तर बाँधकर कलकत्ता जा रहा हूँ, जैसा होगा, देखा जायगा। पहले जान तो बचे फिर जमींदारी देखी जायगी।

दशरथ बाबू ने कहा—पर यह तो कोई हल नहीं हुआ, यह तो प्रश्न को टालना भर हुआ। तुम जानते हो कि आजकल सरे जमीन मौजूद रहने पर भी वसूली नहीं होती, अगर कहीं कलकत्ते जाकर बैठ गये, तो फिर तो कुछ भी नहीं मिलेगा।

—न मिले न मिले। जान बचेगी तो लाखों मिलेंगे, बस मैं तो यही समझता हूँ।

दशरथ बाबू ने कहा—खैर तुम्हारे लिये ऐसा कहना शोभा देता है क्योंकि तुम्हारे पूर्व पुरुष लाखों कमाकर धर गये हैं, पर यहाँ तो साल दो साल आमदनी न हो तो काम न चले। बात यह है कि खर्चा भी तो भारी है।

जो कुछ भी हो, दशरथ बाबू यहाँ से भी निराश लौटे। अब उनके पास एक ही चारा था। वह था हिन्दू गरीबों के पास जाना, और उन्हें लीग की बातों से सचेत कर संगठित करना, पर दशरथ बाबू आज तक कभी उनके पास नहीं गये थे। इसलिये आज भी वे नहीं गये। कुछ अकड़ और कुछ लज्जा के कारण वे घर लौट गये। जितने निराश होकर वे घर से चले थे, अब वे उससे कहीं अधिक निराश होकर लौटे थे। उनकी समझ ही में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाय। रास्ते में मोटर से आते हुए उन्होंने कई जगह पर मुसलमान किसानों को गोल बाँधकर आपस में बातें करते हुए पाया। स्पष्ट ही उनमें बड़ी खलबली थी। वे पास से जाती हुई मोटर की तरफ अग्नि भरी दृष्टि से देखते थे, मानो वे उसे उसके आरोहियों के साथ भस्म कर देंगे।

स्पष्ट ही एक भयंकर बवंडर आ रहा था। एक बवंडर, जिसे रोकना दशरथ बाबू की शक्ति के बाहर था।

४

यथा समय रेनुका मोटर लेकर परिमल को लेने के लिये खासपुरवा

पहुँची। आज उसके साथ ड्राइवर मंगलसिंह भी था। सच तो यह है कि आज मंगलसिंह ही गाड़ी चला रहा था और रेनुका पीछे की सीट पर बैठी हुई थी। सालों में रेनुका के लिये यह पहला ही अवसर था कि वह इस प्रकार ड्राइव न कर पीछे बैठी थी। हमेशा यही होता था कि चाहे मंगलसिंह साथ में हो, चाहे बाबू जी हों; वह ड्राइव करती थी और दूसरे लोग पीछे की सीट पर बैठते थे। आज जो रेनुका ने पीछे की सीट पर अपने लिये जगह बनायी थी, इसमें यह राज था कि इस प्रकार वह परिमल के साथ खूब बातचीत कर सकेगी। मंगलसिंह के होने पर भी कोई बाधा न होगी।

घंटों सोच कर रेनुका ने बैठने के सम्बन्ध में यह बन्दोबस्त किया था, पर जब वह खासपुरवा पहुँची तो वहाँ कुछ और ही परिस्थिति मिली।

परिमल निर्दिष्ट जगह पर एक पेड़ के नीचे खड़ा था, पर यह क्या? आज उसके हाथ में न तो कोई कापी थी और न कोई किताब ही।

रेनुका मोटर से उतर कर एक तरह से झपट कर परिमल के पास पहुँची, बोली—चलिए, आज हम शायद कुछ लेट हैं।

—नहीं तो, आज मैं नहीं जाऊँगा—परिमल ने उदासी के साथ कहा। उसका चेहरा बैठा हुआ था, जैसे रात भर सोया ही न हो।

रेनुका ने बेचैनी के साथ कहा—क्यों, क्यों? कुछ तबियत खराब है क्या?

—नहीं तबियत खराब नहीं है, घर में कुछ काम है, उस काम के लिये आज मैं कालेज नहीं जाऊँगा।

रेनुका हिचकिचाने लगी कि यह पूछे कि न पूछे कि कौन सा काम ऐसा पड़ गया। उसने सोचा कि शायद इस प्रकार का प्रश्न करना उचित न होगा। न मालूम कैसा काम है, शायद बताने लायक हो या न हो। फिर भी कुछ तो कौतूहल और कुछ यौवन-सुलभ जल्दबाजी ने उसे विवश किया और वह पूछ बैठी—ऐसा क्या काम पड़ गया है?—

प्रश्न पूछ कर वह खुद ही लज्जित हो गयी और मानो उसी लज्जा को मिटाने के लिये बोली—क्या मैं कुछ मदद कर सकती हूँ ?

परिमल का परेशान चेहरा कुछ देर के लिये खिल गया, बोला—नहीं, नहीं, वह ऐसी परेशानी है कि उसमें कोई भी मदद नहीं दे सकता।

रेनुका की जीभ पर एक प्रश्न आकर लौट गया। वह चुप रही, पर उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से परिमल को देखा। स्पष्ट था कि वह परिमल के दुख में हिस्सा बँटाने के लिये व्याकुल हो रही थी।

परिमल ने कहा—कल जब मैं कालेज से घर लौटा तो मालूम हुआ कि पिता जी दोपहर के समय कहीं से पूजा करके हाथ में सत्यनारायण शिला लेकर लौट रहे थे कि कुछ मुसलमान उचक्कों ने उनको घेर लिया और उनके हाथ से शिला छीन ली और जब उन्होंने इस पर आपत्ति की तो उनको गला पकड़ कर धक्का दिया और शायद मारा भी। खैर यह जो हुआ सो हुआ, अब सबसे बड़ी मुसीबत यह है कि पिताजी ने उस समय से खाना छोड़ दिया और कह रहे हैं कि जब तक वह मूर्ति नहीं मिलेगी, तब तक खाना नहीं खायेंगे। जब उन्होंने खाना छोड़ दिया तो माताजी ने भी खाना छोड़ दिया। अब हमारे घर में बड़ी आफत मची हुई है।

—फिर ?

—फिर क्या ? मैंने आकर पहले तो यह कोशिश की कि मूर्ति वापस मिल जाय। मैं गाँव के अच्छे मुसलमानों से मिलकर उस गाँव के लोगों के पास गया।

—कौन सा गाँव ?

—यहाँ से दो-तीन मील पर नबीपुर एक गाँव है।

—हाँ तो क्या हुआ ?

—मैं वहाँ गया तो वहाँ के लोगों ने कहा कि ऐसी कोई घटना तो वहाँ हुई ही नहीं, पर मैंने खुद कुछ लोगों को हँसते हुए देखा और

समझ गया कि लोग बदमाशी पर आमादा हैं। हमारे गाँव के मुसलमानों ने वहाँ के लोगों को समझाया कि एक पत्थर ही तो है, लाओ उसके बदले ये दस-बीस रुपये दे देंगे, पत्थर दे दो, तुम्हारे किस काम का ? अब तक तो वहाँ के लोग यह कह रहे थे कि वे जानते ही नहीं कि इस प्रकार मूर्ति ली गयी है, पर जब दस-बीस रुपये की बात सुनी तो उनमें से एक बहुत नाराज हो गया और बोला—मियाँ तुम कहते क्या हो ? हम उसी मुहम्मद गजनवी की औलाद हैं, हम बुतशिकन हैं, बुतफरोश नहीं, एक लाख रुपया दोगे तो भी उस मूरत को वापस नहीं कर सकते।

अब इस पर क्या कहा जाता, हम लोग वापस चले आये। हम जिस समय गाँव से निकल कर आ रहे थे तो अँधेरे से एक मुसलमान निकला और उसने इशारे से मुझे अलग बुलाया। उस समय अच्छी तरह अंधेरा हो चुका था। मैंने सोचा कि इसके पास जाना उचित होगा या नहीं, न मालूम इसके क्या इरादे हैं। उस मुसलमान ने वहीं से खड़े होकर कहा—डरो मत, तुमसे कुछ अलग बातें करनी हैं, उससे तुम्हारा भला ही होगा।

मैंने सोचा कि जो होगा सो देखा जायगा, चलो देखें यह क्या बात कहता है। मैंने अपने मुसलमान साथियों की ओर देखा तो उन्होंने भी कहा, जाओ न, हम तो खड़े ही हैं।

इसलिये मैं आगे बढ़कर उस आदमी के पास गया। वह आदमी मुझे कुछ दूर और ले गया, फिर एक पेड़ के नीचे पहुँच कर बोला—मैं तुम्हें वह मूरत ला दूँ तो क्या दोगे ?

मैंने कहा—भाई यों तो बाजार में वह मूर्ति खरीदी जाय तो दो रुपये के अन्दर ही मिलेगी, पर वह मूर्ति पुश्तों से चली आयी है, पिता जी उसी पर जान देते हैं, इसलिये दो की जगह बीस ले लेना, और क्या ?

होते-करते पचास रुपये में सौदा तय हो गया। उसने यह बताया कि आज सबेरे वह मूर्ति लाकर एक खास जगह पर देगा। तदनुसार मैं आज

उठकर उस जगह पर पहुँचा तो मालूम हुआ कि जिस आदमी ने उस मूर्ति को बेचना तय किया था, वह रात ही को मार डाला गया।

रेनुका आश्चर्य तथा भय के साथ बोली—इतनी सी बात के लिये मार डाला गया? उसको कैसे पता लग गया? बड़े आश्चर्य की बात है।

—मैंने तो अपनी तरफ से बहुत सावधानी की थी। मैंने तो माता जी के अलावा किसी से भी, यहाँ तक कि साथ में जो मुसलमान गये थे, उनसे भी इस सौदे की बात नहीं बतायी, पर जैसा कि उस मारे हुए व्यक्ति के भाई ने रोते हुए बतलाया—किसी ने उसका पीछा किया था और हम लोगों में जो बातचीत हुई थी, वह सुन ली थी, इसीलिये रात को उसकी हत्या कर डाली गयी।

रेनुका के चेहरे पर भय के चिन्ह स्पष्ट थे, बोली—तो यह तो एक अच्छा खासा संगठन मालूम होता है, इसमें खुफिये भी हैं, फिर सजा देने वाले भी हैं और फिर उस सजा को कार्य रूप में परिणत करने वाले भी हैं।

—हाँ, यह बहुत ही विकट संस्था है। ऊपर से तो केवल इतना ही देखने में आता है कि लीग की सभाएँ होती हैं, पर भीतर-भीतर न मालूम और क्या-क्या होता रहता है। तुम जानती हो कि मैं न तो मूर्ति-पूजा में विश्वास करता हूँ और न पुरोहिती में, पर इस प्रकार की बातों को पसन्द नहीं करता, यह तो निरा गुण्डापन है।

रेनुका बोली—तो अब क्या होगा?

परिमल ने कहा—जो कुछ हो सकता है, सभी कर रहा हूँ। जब यह खबर मालूम हुई कि वह मूर्ति नहीं मिलेगी और उसे जो दे सकता था वह मारा गया तो मैंने आगे कदम उठाया। हाँ, एक बात तो बताना भूल ही गया कि मूर्ति न मिलने पर भी मैंने उस व्यक्ति के भाई को वे पचास रुपये दे दिये।

—दे दिये?

—हाँ दे दिये। क्या एक जान के लिये पचास रुपये कोई अधिक कीमत है ?

—पर मान लीजिए कि कोई न मरा हो, न मारा गया हो और यों ही गढ़कर कहानी कह दी हो, तब ?

—ऐसा हो सकता है, सच तो यह है कि इस परिस्थिति में सभी कुछ हो सकता है, पर मुझे तो ऐसा ही मालूम पड़ा कि कहानी नहीं सच्ची घटना है।

रेनुका बोली—खैर, पचास रुपये कोई ऐसी बड़ी बात नहीं है, जैसे कि माता जी कहा करती हैं ठगने से ठगा जाना ही अच्छा है। ठगे जाने से रुपये तथा द्रव्य का नुकसान अवश्य होता है, पर मनुष्य की जो सबसे बड़ी चीज मनुष्यता है वह तो बनी रहती है।

परिमल ने अजीब तरीके से हँसते हुए कहा—नहीं रेनुका हमारे लिये पचास रुपये कोई छोटी रकम नहीं है; हमारे लिये तो यही नीति है कि मनुष्यता भी कायम रहे और भीख भी न माँगनी पड़े।

रेनुका कुछ सहमी कि शायद वह कुछ ऐसी बात कह गई जो उसे नहीं कहनी चाहिए थी। वह मानो इसी गलती की स्वीकृति के तरीके पर बोली—यह तो है ही—जल्दी में उसे और कोई वाक्य नहीं सूझा।

मंगलसिंह मोटर पर बैठे-बैठे अधीर हो रहा था। उसने जो देखा कि दस-पन्द्रह मिनट निकल गये और बात खतम होने नहीं आती तो उसने धीरे से हार्न दिया।

रेनुका ने हार्न सुना और चिल्ला कर बोली—ठहरो सरदार जी अभी आती हूं। ·····

मंगलसिंह क्या करता ? बैठे-बैठे झपकी की तैयारी करने लगा।

रेनुका बोली—हार्न की परवाह न कीजिए, अब बताइये कि आगे क्या होगा ?

—पहले सुन लो कि आगे क्या हुआ। इसके बाद मैं आज सबेरे

सायकिल पर थाने पहुँचा और वहाँ दारोगा जी से बताया कि इस प्रकार मेरे पिता पर हमला हुआ और उनकी मूर्ति छीन ली गई।

दारोगा जी मुसलमान थे, वहाँ के मुन्शी भी मुसलमान थे। उन्होंने मेरी रिपोर्ट को कोई महत्व नहीं दिया। मुन्शी जी तो बोले—जब वाकया कल हुआ तो उसकी रिपोर्ट कल न लिखाकर आज क्यों लिखाई जा रही है? दारोगा जी बोले—उस मूरत का क्या दाम होगा? उस दो रुपये की मूरत के लिये इतने लोग परेशान हो, थानेदार वहाँ जायँ फिर एक दिन रहें, तहक़ीकात करें, फिर मूरत मिले या न मिले, यह कोई अक़्ल की बात नहीं है।

मैंने जब यह सुना तो मैं बिगड़ गया, मैंने कहा—डकैती चाहे एक रुपये की हो चाहे पाँच लाख की, डकैती डकैती ही है। मूर्ति चाहे दो ही रुपये की हो, आपको इसके सम्बन्ध में तहकीकात करनी चाहिए।

दारोगा जी बोले—तब तो हम जी चुके, फिर तो डबल रोटी और आम की चोरी पर भी हमें दौड़ना पड़े।

मैंने कहा—इसके अलावा यह सिर्फ चोरी और डकैती की बात नहीं है। यह तो मजहबी मामलों में जबर्दस्ती है। इसके नतीजे बहुत खराब हो सकते हैं। किसी को यह हक नहीं है कि वह दूसरों के मजहब पर किसी तरीके की जबर्दस्ती करे।

दारोगा जी तो चुप रहे पर मुन्शी जी बोले—इसमें मजहब पर क्या हमला हुआ? अगर एक मूरत गई तो दूसरी कर लीजिए, है तो आखिर एक पत्थर का टुकड़ा ही।

मैं दबने वाला थोड़े ही था, मैंने मुन्शी जी से कहा—हाँ जो मुसलमानों के ताजिये निकलते हैं वे क्या हैं? कुछ कागज और लेई ही तो है, उन्हें कोई फाड़ डाले तो आप क्या कहेंगे?

मुन्शी जी बिगड़ गये, बोले—क्या कहेंगे? हमें कुछ कहना नहीं पड़ेगा। कोई मुसलमान अपनी ताजिया फड़वा कर हमारे यहाँ रपट लिख-

वाने नहीं आयेगा। मुसलमान बड़ी बहादुर कौम है। अगर ताजिया फटेगी तो वे वहीं पर ढेर हो जायँगे पर रोने नहीं आयेंगे।

मैंने इसके आगे तर्क करना उचित नहीं समझा। मैंने कहा—अब आप रपट लिख लीजिए और तहकीकात कीजिए।

दारोगा जी इस बीच में उठ कर चले गये थे। मुन्शी जी ने कहा—रपट ऐसे नहीं लिखी जाती। क्या सबूत है कि मूरत छीनी गई थी। आपके पिता जी कहते हैं, पर और कोई गवाह है।

मैंने कहा—नबीपुर मुसलमानों का गाँव है वहाँ कौन गवाह मिलेगा?

मुन्शी जी ने हाथ में कलम उठायी थी, उसे पटकते हुए बोले—फिर रपट नहीं लिखी जायगी।

मैं समझ गया कि मुन्शी बदमाश है, वह रपट नहीं लिखेगा। तब मैं दारोगा की प्रतीक्षा करने लगा पर मालूम हुआ कि वे तो घोड़े पर चढ़ कर कहीं चले गये और शाम तक नहीं लौटेंगे।

फिर मैं क्या करता? लौटने लगा, पर अभी कुछ अपमान बाकी था। मुन्शी जी ने मुझसे कहा—आप लोग हर बात में रपट लिखाने चल देते हैं, यह सोचते नहीं हैं कि जमाना बदल गया है। मैं यह नहीं कहता कि मूरत नहीं छीनी गई पर आपके पिता जी इतने बुजुर्ग हुए उन्हें यह समझना चाहिए था कि मूरत लेकर मुसलमानों के गाँव के बगल से मुसलमानों को चिढ़ाते हुए उन्हें नहीं चलना चाहिए था। अगर गुनाह करिये, तो उसे छिपा कर करिये।

मैंने आश्चर्य के साथ कहा—गुनाह? कैसा गुनाह? वे तो वर्षों से ऐसा ही करते हैं।

हाँ वर्षों से करते हैं, पर बर्दाश्त की एक हद होती है। साफ बात है इतने सालों तक बर्दाश्त हुआ, अब नहीं होता। आप जानते हैं कि इस वक्त मुसलमान दूसरे ही ढङ्ग पर हैं।

मुन्शी जी ने और भी बहुत कुछ कहा जिसका अगर सही माने

समझा जाय तो यही है कि अब हम सब लोगों को मुसलमान हो जाना चाहिये। मैं इसके बाद चला आया।

रेनुका के अन्दर जो भय की भावना उत्पन्न हुई थी, वह इस कहानी से और भी बढ़ गई। उसने कहा—तो आगे क्या होगा ?

— आगे क्या होगा यही तो समझ में नहीं आता। पिता जी को बहुत समझाया पर वे अपने अनशन पर डटे हुए हैं बहुत कहने सुनने पर पानी पीने पर राजी हुए हैं। माताजी भी पिताजी के साथ हैं। अब मैं घर में सबसे बड़ा लड़का होने के नाते परेशान हूँ, क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता ? गाँव तथा गाँव के बाहर के बहुत से मित्रों ने आकर पिता जी को समझाया कि आप बाकायदा कुछ प्रायश्चित्त आदि करके दूसरी सत्यनारायण-शिला स्थापित कीजिए, पर वे इस पर राजी नहीं होते। वे तो कहते हैं कि लूँगा तो मैं उसी को लूँगा। मैंने गुस्से में आकर यह भी कह दिया कि जिस मूर्ति में आत्मरक्षा करने की सामर्थ्य नहीं है, उसके लिये इतनी बेचैनी बेकार है। पर विश्वास के आगे तर्क थोड़े ही चलता है ? उनका विश्वास है कि यदि उनकी भक्ति अचल रहेगी तो वह शिला उनके पास अवश्य लौट आयेगी। अब इस पर क्या किया जाय ?

रेनुका ने चिंतित होकर कहा—एक बात की जा सकती है।

—वह क्या ?

—वह यह कि किसी तरह उन्हें दूसरी शिला लाकर दी जाय और बताया जाय कि यह वही शिला है।

हाँ, इस बात को हम लोगों ने भी सोचा था, पर सुनते हैं कि उस शिला में कोई विशेषता थी, अब वह विशेषता दूसरी शिला में कहाँ से हो सकेगी ? फिर हमें यह भी तो नहीं मालूम कि वह विशेषता क्या थी। वह विशेषता सिर्फ बाबू जी को ही मालूम है। मैंने तो बचपन से कभी उसे अच्छी तरह देखा भी नहीं, विशेषता जानना तो दूर की बात रही।

—तो फिर इसके माने यह हुए कि अनशन चलता रहेगा ?—रेनुका के माथे पर बल पड़ गये थे, मानो सारी दुनिया की चिन्ता उस पर आ गई हो।

—यही तो मुश्किल है। फिर माता जी की तबियत कुछ ठीक नहीं है। बुजुर्ग लोग तरह तरह की सलाह दे रहे हैं, कोई कहता है काशी जाओ तो कोई कहता है कि नवद्वीप जाओ और वहाँ से पंडित सभाज का निर्देश या फतवा लाओ। अब मैं तो बड़ी परेशानी में हूँ, मेरी विपत्ति इसलिये और भी बढ़ गई है कि मैं इन बातों में विश्वास नहीं करता, पर मजबूरी से सब कुछ मुझे ही करना है।

रेनुका बोली—तो इसके माने ये हुए कि पढ़ाई भी शायद छूट जाय।

—हाँ, पढ़ाई की कौन पूछता है ? यहाँ तो एक साथ पितृहीन तथा मातृहीन होने की नौबत आ गयी है। केवल यही नहीं, पिता जी किसी तरह हो गृहस्थी चलाते थे, अब सारी गृहस्थी का भार भी मेरे कन्धे पर पड़ने वाला है।

रेनुका ने ध्यान से परिमल की ओर देखा, तो गत बीस घंटों में ही उसकी उम्र पन्द्रह साल बढ़ गयी थी, आँख के नीचे कारिख मालूम देती थी, माथे पर सिकुड़नें थीं। रेनुका को बड़ी इच्छा हुई कि वह उसकी किसी तरह मदद कर सके, पर वहाँ तो सब दरवाजे बन्द मालूम देते थे। ऐसी समस्याएँ थीं, जिनका कोई हल ही नहीं दिखाई देता था। अब पुरोहित जी के अनशन में वह क्या करती ? और यही इस समय सबसे बड़ी समस्या थी। सभी समस्याएँ इस समय इसी समस्या से उत्पन्न हुई थीं।

रेनुका ने योंही पूछा—अच्छा क्या आपने पिता जी से पूछा कि यह अनशन किसके विरुद्ध है ? अगर यह अनशन नबीपुर के लोगों के विरुद्ध है, तो वह व्यर्थ है क्योंकि उनका दिल तो इससे पसीजेगा, ऐसा मालूम नहीं देता। फिर सम्भव है अब तक उन्होंने शिला के टुकड़े-टुकड़े कर डाले हों।

परिमल बोला—तुम क्या समझती हो कि हम लोगों ने यह सब बातें नहीं समझाई हैं, पर उनकी तो एक ही रट है कि यह अनशन किसी के विरुद्ध नहीं, बल्कि आत्म-शुद्धि के लिये है।

रेनुका आश्चर्य के साथ बोली—आत्म-शुद्धि ? आत्म-शुद्धि कैसी ? बदमाशी तो उन्होंने की और आत्म-शुद्धि वे करें ? आत्म-शुद्धि तो नबी-पुर के उन गुण्डों को करनी चाहिए कि उन्होंने दूसरों के धर्म में हस्तक्षेप किया।

परिमल दुख की हँसी हँसा, बोला—यही तो दिल्लगी है। इन अध्यात्मवादियों की कोई बात समझ में नहीं आती। पापी प्रायश्चित्त करें तो कुछ समझ में भी आवे, पर यहाँ तो सब बात ही उल्टी है। मैं बहुत परेशान हूँ रेणु, मैं तुम्हें समझा नहीं सकता कि कितना परेशान हूँ।

रेनुका खड़ी-खड़ी जूते से मिट्टी खोदती रही। वह कैसे समझाती कि वह स्वयं कितनी परेशान हो रही थी। इच्छा तो हुई कि वह भी आज कालेज न जावे, पर साथ में मंगलसिंह था। इसलिये उसने यह तय किया कि कालेज जायगी। परिमल से बोली—तो बताइए मैं क्या सहा-यता करूँ ?

परिमल फिर दुख की हँसी हँसा। आज वह कई बार इस प्रकार की हँसी हँस चुका। पहले कभी वह इस प्रकार नहीं हँसता था। बोला—तुम क्या सहायता करोगी ? जाओ, कालेज जाओ···

उसने जाओ शब्द ऐसे कहा मानो चिरविदाई ले रहा हो। कुछ ढंग ऐसा ही था। पुरोहित जी की जिद न मालूम कब तक चलेगी और इसी गड़बड़ में परिमल की पढ़ाई छूट जायगी। इसी को कहते हैं किनारे पर आकर नाव का डूब जाना। रेनुका ने अपने मन के निभृत अंश में लोक चक्षु से परे कितने स्वप्नों की रचना की थी पर वह एकाएक कुछ धर्मान्ध लोगों की खामख्याली के कारण छिन्न-भिन्न हो रहा था। अभी तो अभिसार की तैयारी हो रही थी कि भाग्य ने आकर प्रियतम को

निष्ठुर हाथों से छीन लिया। अभी तो पैरों पर मेंहदी रचाई गयी थी कि किसी ने आकर पैर ही काट लिये।

रेनुका परिमल की ओर करुण नेत्रों से देखती रही जैसे स्वदेश से जाने वाला यात्री जहाज पर बैठकर करुण नेत्रों से देश के उपकूल को देखता है।

रेनुका बोली--अच्छा, मैं जाती हूँ पर किसी तरह खबर देना कि आगे क्या हुआ—और करीब-करीब रुआँसी होकर बोली—किसी तरह मेरी मदद की जरूरत हो तो बताना।

इसके बाद वह मुँह फेर कर मोटर पर जाकर बैठ गई और मंगलसिंह ने स्टार्ट किया।

परिमल बड़ी देर तक मोटर की तरफ ताकता हुआ उद्भ्रान्त की तरह खड़ा रहा, जैसे कोई श्मशान में प्रियजन की दाह-क्रिया कर खड़ा रहता है, फिर वह चला गया।

५

पुरोहित जी के अनशन से चारों तरफ के गाँवों में बड़ा कोहराम मच गया।

दो तीन दिन के अन्दर ही उनका गाँव हिन्दुओं के लिये एक तीर्थस्थान-सा हो गया। तरह-तरह के लोग आते और पुरोहित जी के चरणों की धूल लेकर चले जाते। स्त्रियाँ भी आतीं और वे पुरोहित जी के चरणों की धूल के अलावा पुरोहित जी की स्त्री के चरणों की धूल भी लेतीं। सभी उन गुण्डों की निन्दा करते जिन्होंने पुरोहित जी से मूर्ति छीनी थी।

फिर भी समस्या जहाँ की तहाँ रही। कुछ हल नहीं निकला। कुछ इक्के-दुक्के नौजवानों ने बदले की बात कही, पर उनकी बात सुनी नहीं गई फिर वे भी इस सम्बन्ध में कोई विशेष व्यग्र नहीं ज्ञात हुए।

एक दिन आस पास के कुछ मुसलमान भी पुरोहित जी के घर पर पहुँचे। उन लोगों ने कहा—पंडित जी आप फजूल तकलीफ उठा रहे हैं उन बदमाशों ने आपकी मूरत कब की तोड़ डाली। पहले तो वे उसे रखे हुए थे, पर जब उनमें से एक ने उसे चुराकर आपके लड़के के हाथ बेचना चाहा, तब वे चौकन्ने हो गये। उन्होंने उस आदमी को तो मार ही डाला, फिर उस मूरत को चक्की में पीस डाला। अब आप इस हालत में क्या उम्मीद करते हैं ? आप जो फाका कर रहे हैं इसका अंजाम सब पर गिरेगा इसलिये जो कहिए सो किया जाय, सौ-पचास का खर्चा हो जाय तो हम जुर्माने की तरह इसे दे सकते हैं। आप फिर से नई मूरत ले लें।

पास बैठे हिन्दुओं ने भी यह सलाह दी कि जब मूर्ति चक्की में पीस डाली गई है तो फिर उसके लौटने की कोई गुंजाइश तो है नहीं, फिर इस अनशन करने से क्या फायदा होगा ?

बात तो बिल्कुल सही कही गई, पर पुरोहित जी ने किसी की एक नहीं सुनी। उन्होंने कहा—तो यहाँ कौन जीने की फिक्र है ? दुनिया काफी देख चुका, उम्र भी ६५ के लगभग हुई, मर जाऊँ तो क्या फिक्र है ? मैं तो अनशन इस कारण कर रहा हूँ कि दिखा दूँ कि और किसी के लिये वह मूर्ति पत्थर रही हो, पर मेरे लिये तो वह मूर्ति जीवनाधार थी। बाप ने कोई और रोजगार नहीं सिखाया, बस यही रोजगार था कि इसकी पूजा करता था, अब वह नहीं रही, तो मैं भी नहीं रहूँगा।

इस प्रकार तरह तरह के लोग आये और समझाकर हार मान कर चले गये। पंडित जी की हालत में तो कोई विशेष फर्क नहीं आया। हाँ वे कमजोर होते जा रहे थे; पर पंडिताइन की हालत बहुत बिगड़ गई। तीन दिन में ही वह बेहोश-सी रहने लगी। छठे दिन तो हृदय की धड़कन बन्द होने की नौबत आई, पर बच गई।

तब पंडित जी को लोगों ने समझाया—महाराज क्यों इस सती की

हत्या कर रहे हो। यह तो अब तीन दिन भी नहीं जियेगी।

पंडिताइन के हठ के कारण पंडित जी खुद ही परेशान थे। एक यही ग्लानि उनमें थी। जब उन्होंने अपनी आँख से देख लिया कि सच-मुच पंडिताइन अब बहुत आगे नहीं जा सकती तो लोगों के कहने-सुनने पर उन्होंने फल का रस लेना स्वीकार कर लिया। पर उन्होंने पंडिताइन से बोलना छोड़ दिया और वे उस दिन से घर के बाहर रहने लगे। बोले कि अब से मैं घर के लिये मर गया। जो कुछ भी हो, इस प्रकार यह समस्या एक हद तक हल हो गयी। जब पंडित जी फल का रस लेने लगे तो पंडिताइन को कोई बाधा नहीं रही और वह खाने-पीने लगी।

रहा गृहस्थी का खर्च, सो इस अनशन के कारण पंडित जी के भक्त और भी भक्त हो गये थे और अब पुरोहिती न करने पर भी उनके घर में किसी चीज की कमी नहीं रही। भक्तों ने सारी व्यवस्था कर दी।

धीरे धीरे परिमल फिर कालेज भी जाने लगा और एक दिन रेनुका उसे निमंत्रित कर अपने घर पर भी ले गई। रूपवती से उसका परिचय भी हुआ। रूपवती ने उसे बहुत पसन्द किया।

फिर तो वह अक्सर निमंत्रण पर और बिना निमंत्रण पर इस घर में आने-जाने लगा। दशरथ बाबू ने भी उसे देखा और बहुत पसन्द किया। पर पसन्द करना और बात थी और ब्याह हो जाना और बात। ब्याह होने में पुरोहित जी की सम्मति भी आवश्यक थी। फिर इस विषय पर न तो रेनुका की ही राय ली गई थी न परिमल की।

दशरथ बाबू ने लड़की की राय जानने का भार रूपवती पर दिया। रूपवती बोली—इसमें भी कोई सन्देह है। देखते नहीं हो? क्या कोई बात कहने से ही मालूम होती है?

—फिर भी पूछ लेना अच्छा है।

—सो पूछ लूँगी।

—हाँ जब तुम पूछ लो, तभी मैं इसके लिये अन्य प्रबन्ध करूँगा

और परिमल के घर जाऊँगा।

रूपवती बोली—तुम तो इस बीच में एक दफे परिमल के घर हो आये हो न?

—हाँ, जब पुरोहित जी अनशन कर रहे थे तब इधर के सभी हिन्दू उनके घर पर गये थे। मैं भी गया था। उसी वक्त चीज मेरे दिमाग में थी और मैंने सभी चीजों को ध्यान से देख लिया। परिवार बहुत ही नैष्ठिक है, परिमल के भाई तथा बहिन सभी अच्छे हैं। किसी को जैसे कहीं पर कलुष या पाप छू नहीं गया है। गरीब है पर बहुत गरीब नहीं। मैं समझता हूँ कि यदि लड़के का मत हो गया तो पुरोहित जी की तरफ से कोई अड़चन नहीं होगी।

रूपवती को भी इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं था। फिर भी जीवन की घटनाओं से निराशावाद की ओर कुछ झुकाव होने के कारण वह बोली—देखो।

—देखना क्या है? यहाँ देने में हिचकते नहीं हैं। कुछ भी माँगे दे सकते हैं। यहाँ सम्पत्ति करनी ही क्या है? रेणु की ही तो सारी सम्पत्ति है।

रूपवती ने कहा—कुलीन हैं, कहीं कुल-मर्यादा पर अड़ गये तो पता नहीं क्या हो?

रूपवती का यह इशारा इस बात की ओर था कि विसवों की दृष्टि से पुरोहित जी के कुल के मुकाबले में दशरथ बाबू का कुल बहुत नीचा पड़ता था, यद्यपि थे दोनों ब्राह्मण।

दशरथ बाबू ने दृढ़ता के साथ कहा—आजकल यह सब कौन पूछता है? और पूछे तो यहाँ कौन दामादों की कमी होगी? जहाँ रोटी के टुकड़े डाले जायँगे, वहीं कौये आ जायँगे। दशरथ बाबू का एक हाथ स्वयं मूँछों पर पहुँच गया।

रूपवती के चेहरे पर निराशा की झलक आ गयी। बोली—मुझे

यही तो तुममें एक ऐब मालूम होता है। करने जा रहे हो लड़की की शादी, पर अकड़ नहीं छोड़ते। एक लड़की की शादी में सौ निहोरे करने पड़ते हैं।

दशरथ बाबू बोले—तुम डरो मत। रुपयों में बड़े गुण हैं। मैं सब बना लूँगा।

रूपवती को यह भी बात अच्छी नहीं मालूम हुई पर वह कुछ बोली नहीं, क्योंकि बोलने से मामला और बिगड़ जाने का डर था।

६

न परिमल ने यह तय किया था कि उसकी शादी रेनुका से होगी, न रेनुका ने ही इस सम्बन्ध में कुछ सोचा था। दोनों अभी कालेज में पढ़ते थे और इस बात को सोचते नहीं थे कि जीवन का और भी कोई रूप हो सकता है। जब यही जीवन पसन्द था तो आगे की बात क्यों सोचते? आगे की बात तो तब सोचते जब कि जीवन के इस हिस्से में कोई कमी मालूम होती। उन्हें ऐसा मालूम होता था कि इस प्रकार अठखेलियाँ कर, किताबें पढ़ कर, यूनियन की सभा में व्याख्यान देकर, मोटर की सैर कर जीवन कट जायगा। वे जीवन के काले पहलू तो क्या व्यावहारिक पहलुओं से भी अनभिज्ञ थे।

इसलिये जब एकाएक रूपवती ने रेनुका से विवाह की बात छेड़ी तो वह सिटपिटा कर रह गई। अवश्य रूपवती ने जहाँ तक हो सके स्वाभाविक रूप से इस प्रश्न को पेश किया। वह बोली—देखो बेटी अब मेरे दिन करीब हैं, अब यही एक साध है कि तुम्हारी शादी देख जाती।

रेनुका माँ से लिपट गई, बोली—क्यों ऐसा कहती हो? तुमने कैसे जाना कि तुम्हारे दिन करीब हैं?

रूपवती ने बेटी से और भी लिपटते हुए कहा—तो क्या चाहती हो कि मैं इसी हालत में और पड़ी रहूँ? बेटी, इससे तो मर जाना ही अच्छा

है। जो मेरे लिये दीर्घ जीवन की कामना करता है, वह तो मेरा सबसे बढ़कर दुश्मन है।

बात सच थी। वर्षों रूपवती को इसी कमरे में हो गया था। रेनुका भी इस बात को समझती थी इसलिये वह कुछ नहीं बोली। माता तथा पुत्री बड़ी देर तक इसी हालत में एक दूसरे से लिपटी हुई पड़ी रहीं।

अन्त में रूपवती ने पुकारा—बेटी।

—हाँ माँ।

—आखिर शादी तो करनी ही है।

रेनुका अबकी बार कुछ नहीं बोली। माता ने पूछा—परिमल से तुम्हारी शादी हो जाय तो बड़ा अच्छा रहे, बड़ी अच्छी जोड़ी है।

रेनुका ने इस पर कुछ अस्फुट रूप से कहा, पर क्या कहा यह मालूम नहीं हुआ।

रूपवती ने कहा—बस तुम लोगों की शादी हो जाय तो मैं खुशी खुशी मर जाऊँ।

दोनों चुप रहे।

फिर रेनुका बोली—यदि वे न राजी हुए तो?

—राजी वे क्यों नहीं होंगे? उन्हें तुमसे अच्छी दुलहिन कहाँ मिली जाती है?

थोड़ी देर में माता-पुत्री में खुलकर बात-चीत होने लगी और यह तय हुआ कि इस सम्बन्ध में परिमल की भी राय जानी जाय।

तदनुसार जब अगले दिन परिमल आया तो रेनुका ने उससे कहा—पिता जी मेरी शादी की तैयारी कर रहे हैं। माताजी की बड़ी इच्छा है कि मेरी शादी जल्दी हो जाय।

परिमल एक किताब लेकर योंही उलट रहा था। वह जब इस घर में आता था तो सब चिन्ताओं से मुक्त हो जाता था। यों तो घर में ही उसे कोई विशेष फिक्र नहीं करनी पड़ती थी, पर जब से पुरोहित जी ने

पुरोहिती छोड़ दी थी तब से घर के बड़े लड़के के नाते फिक्र न करते हुए भी कुछ न कुछ करनी पड़ती थी। उसने एकाएक रेनुका की शादी की बात सुनी तो उसे ज्ञात हुआ कि यह दुनिया केवल स्वप्नों की दुनिया नहीं है। एक ही मुहूर्त्त में वह इस प्रस्ताव का अर्थ समझ गया। अस्पष्ट रूप से बोला—हाँ...

रेनुका बोली—माता जी कह रही थीं कि तुम्हारी हमारी जोड़ी अच्छी है। उनकी इच्छा है कि हम दोनों की शादी हो जाय।

परिमल के चेहरे पर लज्जा के भाव दृष्टिगोचर हुए। उसने कहा—अच्छा।...

इस अच्छा शब्द को किस अर्थ में लिया जाय यह रेनुका नहीं समझ सकी। उसने इस शब्द में कुछ उदासीनता की झलक पाई, पर यह उदासीनता नहीं लज्जा तथा इतने बड़े एक कदम उठाने के पहले की झिझक थी। परिमल ने इस चीज को इस तरीके से सोचा ही नहीं था, पर दो मिनट के अन्दर ही वह इस प्रकार की शादी के पूरे अर्थ को समझ गया। यदि शादी हो गई तो आज जैसे उसे झिझक तथा लज्जा के साथ यहाँ आना पड़ता है उस प्रकार नहीं आना पड़ेगा, बल्कि वह अपने हक से ही यहाँ पर आ सकेगा। और भी कितनी बातें उसके दिमाग में द्रुतगति से आईं। उसने जिधर देखा इस प्रस्ताव में अच्छाई देखी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह रेणु से प्रेम करता था।

जब दोनों इस हद तक खुल गये तब तो कोई बाधा ही नहीं रही। परिमल ने आगे बढ़ कर रेनुका को हृदय से लगा लिया और दोनों एक दूसरे से चिरकालीन प्रेम की कसमें खाने लगे।

रेनुका ने कहा—यदि किसी कारण से विवाह न हो सका तो?

—मैं विवाह ही नहीं करूँगा।

इसी प्रकार परिमल ने पूछा—और तुम?

—मैं भी विवाह नहीं करूँगी।

—सच है न ?

—हाँ, सच है।

—सच है न ?

—हाँ, सच है।

इस प्रकार दोनों ने तीन बार इसी की पुनरावृत्ति की और समाज की दृष्टि से न सही, दोनों से दोनों की शादी हो गई।

रेनुका ने यथासमय अपनी माता से इतनो कह दिया कि परिमल को शादी में कोई आपत्ति नहीं है।

अब रूपवती ने दशरथ बाबू का जीवन दूभर कर दिया। वह कमरे से बाहर न जा सकती थी, न जाती थी, पर वहीं से उसने दशरथ बाबू को पुरोहित जी के यहाँ जाने के लिये बाध्य किया।

७

दशरथ बाबू भी चाहते थे कि जल्दी से जल्दी कन्या का विवाह हो जाय, पर इधर इस इलाके की परिस्थिति इतनी खराब होती जा रही थी कि उसी का मुकाबला करने में उनकी सारी शक्ति लग रही थी। पहले ही बताया जा चुका है कि शमीजान पर उनको भरोसा नहीं रह गया था कोई हिन्दू कारिन्दा ऐसा नहीं था जो सब काम समझता हो, या सब काम जानता हो, इसलिये उनको स्वयं ही सारे काम में दौड़ना पड़ता था।

इधर बराबर मुस्लिम लीग की सभाएँ हो रही थीं; जिस दिन सभा होती उस दिन आस-पास के हिन्दू खैर मनाते रहते, क्योंकि जब भी सभा होती तो कोई न कोई खुराफात जरूर होता। कुछ नहीं तो सभा के बाद लोग हिन्दुओं का खेत काट कर चल देते या दो चार ढोर बाँध ले जाते। पुलिस में इनकी कोई सुनवाई नहीं होती थी। तरह तरह की अफवाहें फैलती रहती थीं।

न मालूम किधर से कुछ भयानक चेहरे वाले लोग आये हुए थे।

लोग कहते थे कि ये लड़ाई से खाली हुए सिपाही हैं, पर ये यहाँ कैसे आये थे, यह समझ में नहीं आता था। ये लोग स्थानीय लीगी लोगों के साथ इधर से उधर घूमते रहते थे, कहीं कोई हिन्दू की स्त्री दिखाई पड़ जाती तो उसे देखकर हँसते थे और खुल्लमखुल्ला आवाज कसते तथा इशारा करते थे। हिन्दुओं को यह हिम्मत नहीं होती थी कि इनसे कुछ कहें। पुलिस और सरकार तो इन्हीं की तरफ थी।

इन्हीं दिनों प्रान्त की राजधानी में हिन्दू-मुस्लिम-दंगे की खबर आई। अखबारों से मालूम हुआ कि तीन दिन तक लीगी प्रधान मंत्री ने पुलिस वालों को कुछ करने नहीं दिया और खूब हिन्दू मारे गये। इस इलाके के वह क्षितीश बाबू जो अधिक बुद्धिमानी दिखाकर राजधानी भाग गये थे, वे वहाँ सपरिवार मारे गये थे। इसके पहले इश्तहारों के जरिये मुसलमानों से यह कहा गया था कि इसी रमजान के महीने में हजरत मुहम्मद ने काफिरों के खिलाफ जेहाद शुरू किया। अब पाकिस्तान के लिये भी जंग इसी महीने में छेड़ी गई है। इसलिये यह लड़ाई अवश्य सफल रहेगी।

इस प्रकार तरह-तरह के परचे और उत्तेजनात्मक भाषण दिये जा रहे थे। राजधानी की इन खबरों का यहाँ पर यह असर पड़ा कि हिन्दू और भी डर गये और लीगी और भी ढीठ हो गये।

इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद का काम बना। इस समय तक राष्ट्रीय शक्तियाँ बहुत प्रबल हो चुकी थीं। साम्राज्यवाद का जो सबसे बड़ा गढ़ ब्रिटिश भारतीय सेना थी उसमें जनता द्वारा आजाद हिन्द फौज की आवभगत के कारण दरारें पड़ चुकी थीं, इसीलिये सरकार ने लीगी हथकंडों के जरिये से अपनी रक्षा करनी चाही। इसमें वे खूब सफल रहे। यह पतनशील साम्राज्य का अन्तिम पैतरा था।

इन सब झमेलों के बावजूद दुनिया के काम-काज कुछ न कुछ चलते ही रहे। दशरथ बाबू को तो बिल्कुल फुरसत नहीं थी फिर भी वे एक दिन पुरोहितजी के यहाँ पहुँचे। दो घंटे तक वे वहाँ पर रहे, परन्तु

लौटे खाली हाथों, किन्तु किसी को कानों कान इसकी खबर नहीं हुई।

साम्प्रदायिक परिस्थितियों के कारण दशरथ बाबू ने इधर कुछ दिनों से रेनुका का कालेज जाना बन्द कर दिया था। रेनुका को यह बात इसलिये नहीं अखरी थी कि एक तो इन दिनों कोई भी कालेज नहीं जाता था, कम से कम कोई लड़की तो जाती ही नहीं थी और परिमल तो घर पर ही आ जाता था। इसलिये उसे कोई विशेष फिक्र नहीं थी।

पर इधर दो-तीन दिन से परिमल नहीं आया था, न उसके यहाँ से कोई सन्देश ही आया था। बीच-बीच में ऐसा होता था कि परिमल नहीं आ पाता था, पर उसका पत्र या सन्देश अवश्य आ जाता था। इस कारण रेनुका को बड़ी चिन्ता थी। वह यही समझ रही थी कि इसका सम्बन्ध हो न हो साम्प्रदायिक परिस्थिति से है। इसी कारण से वह खुद भी जा नहीं सकती थी।

उसने और भी दो-एक दिन देखा। जब फिर भी परिमल नहीं आया, तो उसने रूपवती से इसका जिक्र किया। रूपवती मानों इसी प्रकार के किसी प्रश्न के लिये प्रतीक्षा कर रही थी। उसने ध्यान से पुत्री के चेहरे की ओर देखा तो रंग उड़ा हुआ था। मालूम ऐसा होता था कि कई रात तक वह सोई नहीं थी। चेहरे पर की ललाई दूर हो गई थी और विषाद से चेहरा भारी हो रहा था। कैसे क्या कहा जाय यह रूपवती की समझ में नहीं आया। वह खाँसने लगी और खाँसते-खाँसते उसकी ऐसी हालत हुई कि आँखें निकल-सी आयीं।

रेनुका माँ की पीठ सहलाने लगी। थोड़ी देर में रूपवती शान्त हुई तो बोली—बेटी, अपना-अपना भाग्य, परिमल से तुम्हारा विवाह नहीं होगा।

यह खबर एक वज्र की तरह रेनुका की चेतना पर गिरी। वह इस खबर के लिये बिलकुल तैयार नहीं थी। वह तो यह तय-सी करके बैठी

थी कि दो-चार हफ्तों में वह परिमल की दुलहिन बनेगी। इसी विचार में वह मस्त रहा करती थी। अब जो एकाएक फाँसी की आज्ञा की तरह यह खबर सुनी तो जो भावनाएँ हुईं, उन्हें व्यक्त करने के लिये किसी भाषा में कोई शब्द नहीं है। यह भय तो था ही, पर शायद इसमें सत्यानाश हो जाने पर जो भावना होती है, वह भी थी। रेनुका की आँखों के सामने जैसे यह विचित्र दुनिया एकाएक बुझ गयी। वह कुछ समझ ही न सकी कि कैसे क्या हुआ।

रूपवती कन्या की हालत पूरी-पूरी समझ गयी, सान्त्वना के तौर पर बोली—बेटी, जिस चीज को हम दुनिया में बहुत चाहती हैं, अक्सर वह नहीं होती। इसी का नाम दुनिया है। यह नियम है। यदि जिस चीज को हम चाहतीं, वह सभी क्षेत्रों में हो जाती तो फिर दुनिया में दुख ही काहे को होता।

रेनुका की आँखें डबडबा आईं, पर वह रोई नहीं, उसने पूछा—आखिर कैसे क्या हुआ ?

—कैसे क्या हुआ यह तो दैव जाने, पर तुम्हारे पिताजी ने जो कहा उससे तो यही मालूम होता है कि सारा कसूर पुरोहित जी का है। सुनती हूँ कि वे कम बिसवे के ब्राह्मण कुल से कन्या लेने पर राजी ही नहीं हुए। शायद मामला फिर भी सुधरता, पर तुम्हारे पिता जी भी तैश में आ गये और उन्होंने कहा कि ऐसे-ऐसे कुलीनों से तो मैं चौकीदारी और दरबानी का काम कराता हूँ।...

अब रेनुका की समझ में आ गया कि परिमल ने एकाएक क्यों आना छोड़ दिया। बोली—मामला यहाँ तक बढ़ गया ?

—हाँ, अब तो सुधरने की कोई आशा नहीं रही। कोई जादू हो जाय तो बात दूसरी है।

रेनुका फिर भी इन सारी चीजों को एक भाग्यवादिनी की तरह ग्रहण

न कर सकी। कुछ अप्रसन्नता के साथ बोली—यह कब की बात है? मुझे पहले क्यों नहीं बताया गया?

रूपवती ने बेटी का हाथ पकड़ते हुए कहा—न बताने का कसूर मेरा ही है, बात तीन चार दिन पहले की है। मैंने इसलिये नहीं बताया कि दुनिया में दुःख बहुत हैं, जब तक बची रहो, तभी तक फायदा है। आखिर आज तो तुम्हें मालूम ही हो गया।—कुछ रुककर साँस लेती हुई बोली—बेटी, इसमें दरअसल दोष हमारे समाज की बनावट का है। जैसे परिमल कहता था—उस तरह का समाज हो जाय, न कोई राजा रहे न प्रजा, न कोई जमींदार रहे न किसान, न कोई हिन्दू रहे न मुसलमान, न कोई कुलीन या बीस बिसवे का रहे और न कोई घटिया रहें, तब तो सचमुच कोई दुख न रहे, पर जैसा कि समाज है, उसमें ये सभी भेद हैं। मैंने पुरोहित जी को नहीं देखा, सुनती हूँ वे बड़े सज्जन हैं, धुन के पक्के त्यागी हैं, पर बीस बिसवे का गर्व उन्हें है और वे समझते हैं कि यदि किसी घटिये कुल से उन्होंने कन्या ली तो उनका अपमान होगा। वे जानते हैं कि यह शादी हो जाती तो तुम्हारे पिता की लाखों की जायदाद उनके कुल में हो जाती, पर उन्हें इसका लोभ नहीं है, इसलिये बीस बिसवे वाले गर्व को भले ही कुसंस्कार कह लो, पर यह तो है कि उसके लिये ये त्याग कर रहे हैं। लाखों की जायदाद पर लात मारना कोई मामूली त्याग नहीं है।

रेनुका ने इस चीज को इस रूप में देखा तो भी उसे कोई तसल्ली नहीं हुई। वह वयस से तरुण थी। आसानी से हार मानने वाली नहीं थी। यह स्पष्ट था कि पुरोहित जी की तरफ से एक ऐसा पहाड़ खड़ा कर दिया गया था जिसे कोई नांघ नहीं सकता था, पर उसे परिमल में विश्वास था। वह सोचने लगी कि क्या परिमल भी इस तरह की रूढ़ि में पड़कर प्रेम की अवज्ञा करेगा। उसका मन कह रहा था नहीं, वह ऐसा नहीं कर सकता।

यौवन की यही विशेषता है कि एक आशा की अट्टालिका टूटी कि फौरन उसकी जगह पर दूसरी अट्टालिका खड़ी हो जाती है। पुरानी अट्टालिका ढह भी नहीं पाती कि उसकी जगह पर नये सिरे से निर्माण हो जाता है।

परिमल पर उसे भरोसा था। पर नहीं, परिमल भी तो नहीं आया। वह फिर निराशा के गहरे खड्ड में जाकर गिर पड़ी।

रूपवती उसकी मानसिक परिस्थिति को समझ कर उसके हाथ पर धीरे-धीरे अपना हाथ फेर रही थी। रूपवती को मन ही मन इस विषय में बहुत सन्देह था कि कुछ तो इस मामले को पुरोहित जी ने अपने कट्टरपन के कारण बिगाड़ा था, पर इसको मुख्यतः दशरथ बाबू के दुर्मुख ने ही बिगाड़ा है। उसे इसका बड़ा अफसोस था, पर वह क्या करती? वह उठ-बैठ नहीं सकती थी, कहीं जाने-आने की तो बात दूर थी। कोई ऐसा नजदीकी रिश्तेदार भी नहीं मालूम पड़ता था जिसे वह भेजती, ताकि बिगड़ा हुआ सम्हले। दशरथ बाबू से यह आशा नहीं की जा सकती थी किं वे फिर पुरोहित जी के घर जायँगे। वे तो पूरी लड़ाई करके वापस आये थे। ऐसी हालत में रूपवती अपने को बहुत असहाय पा रही थी।

जब से रूपवती ने परिमल को घर पर आते-जाते देखा था, तब से उसने इस बात को एक तरह से सिद्ध समझ लिया था कि अब उसके जीते जी रेनुका की शादी हो जायगी, पर अब उसे ऐसा मालूम होने लगा कि यह मुश्किल ही है।

एक स्त्री के सहजात से रूपवती ने यह समझ लिया कि अब रेनुका के सामने दूसरे किसी व्यक्ति से शादी करने की बात करना असम्भव था। उसे इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी आशंका इस बात से हुई थी कि दशरथ बाबू ने यह कहा था कि यह शादी बिगड़ गयी तो क्या, वे दूसरी शादी की व्यवस्था करेंगे। रूपवती ने जब यह बात सुनी थी तो प्रतिवाद करते

हुए कहा था—जब यह शादी टल गयी, तो उसे बी० ए० पास ही कर लेने दो, फिर देखा जायगा।

पर दशरथ बाबू ने हठ के साथ कहा था—नहीं, मुझे उस बेहूदे पुरोहित को यह दिखला देना है कि मेरी लड़की की शादी होगी और उससे अच्छे कुल के लड़के से होगी।

इस प्रकार दशरथ बाबू के लिये यह एक हठ तथा प्रतिद्वन्दिता की बात हो गयी थी। रूपवती जानती थी कि अब उन्हें इससे हटाना मुश्किल था। वे न तो इस मामले में लड़की की ओर देखेंगे, न और किसी बात की ओर देखेंगे। उनके लिये तो अब लड़की की शादी करना एक होड़ में जीतना था। लड़की का भविष्य तथा सुख गौण हो गया था।

रूपवती ने कन्या से यह नहीं बताया कि दशरथ बाबू इस प्रकार उसकी अन्यत्र शादी की व्यवस्था करने जा रहे हैं। रूपवती ने सोचा कि रेनुका के लिये इस शादी के टूट जाने की खबर ही बहुत बड़ी है। पहले वह इसे झेल ले, फिर उसे वह बात भी मालूम हो जायगी। तदनुसार उसने उस विषय में कुछ नहीं कहा, पर मन ही मन वह इस बात से घुलती रही कि दशरथ बाबू मानेंगे नहीं और एक अनर्थ हो जायगा। उस अनर्थ का क्या रूप होगा, इसका वह अनुमान नहीं कर सकती थी, पर वह निश्चय जानती थी कि यह एक महान अनर्थ होगा। उसे पुरोहित जी पर, दशरथ बाबू पर और अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था कि ऐसा भी दिन देखना पड़ेगा। अपने ऊपर इसलिये गुस्सा आ रहा था कि वह समय से मर क्यों नहीं गयी। कौन सा सुख उसे मिल रहा था जो वह जीती ही चली जाती है। मृत्यु जहाँ चाही जाती है, वहाँ तो वह बड़ी देर में आती है।

वह खाँसने लगी, खाँसते खाँसते दम घुटने लगा। लड़की ने दाहिने हाथ से माँ की पीठ सहलाते हुए बाँये हाथ से सामने रखी एक शीशी

लेनी चाही कि माँ को दे, पर रूपवती ने आज्ञा-मूलक इशारे से उस शीशी को हटा देने के लिये कहा।

जब रूपवती की खाँसी कुछ शान्त हुई तो वह बोली—तुम लोग क्यों मुझे जलाने के लिये जबरदस्ती कर रही हो। हमें शान्ति से क्यों नहीं मरने देती ? हजारों रुपयों की दवा तो पी गयी, पर उनसे इतनी भी शक्ति तो नहीं आयी कि इस कमरे से बाहर निकलूँ। तुम्हारे बाबू जी न मालूम किसकी किसकी आह लेकर रुपये लाते हैं और नौकर तथा रसोइया सब दोनों हाथ से लूट रहे हैं। इतने नौकर हैं पर कोई घर के मालिक के खाते समय एक पंखा लेकर भी नहीं खड़ा होता होगा, घर-द्वार की हालत न मालूम कैसी हो रही है, पर मैं एक मिनट के लिये उठ भी नहीं पाती। फिर भी दवा दवा, अब मैं दवा नहीं पियूँगी—वह रोने लगी, फिर खाँसी बढ़ी। रेनुका असहाय की तरह पीठ सहलाने लगी। उसने अपनी माँ को कभी इतना क्रोध करती हुई नहीं देखा था। वह आश्चर्य से अवाक् रह गई। थोड़ी देर के लिये वह अपना दुःख भूल-सी गई।

इसके बाद रूपवती को नींद आई, या कुछ बेहोशी आई। वह अपने बिस्तरे पर आँख मूँद कर लेट गई। यह स्पष्ट था कि वह बहुत थक गई थी। थोड़ी देर में वह मृदु-मृदु घुर्राटे लेने लगी। तब उसे अच्छी तरह ओढ़ाकर और नौकरनी को इशारे से बुलवाकर माँ के पास बैठाती हुई रेनुका अपने कमरे में चली गई।

वह अपने कमरे में गई, तो वही कमरा जो उसे विश्राम के लिये एक आदर्श स्थान मालूम होता था और जिसमें पहुँचते ही उसका मन एक प्रशान्त शान्ति तथा स्निग्ध आराम से भर जाता था, उसे अजीब गन्दा और छोटा मालूम होने लगा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी ड्रेसिंग मेज की लकड़ी निहायत रद्दी है, उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि कमरे के सब असबाब सामंजस्यहीन हैं और उनमें कहीं कुछ सुरुचि का आभास नहीं

है। वह बिस्तरे पर जाकर बैठी तो ऐसा मालूम पड़ा कि वह ढङ्ग से बिछा हुआ नहीं है।

सामने ही उसकी एक तस्वीर फ्रेम में टँगी हुई थी, उसे ऐसा मालूम हुआ कि इस तस्वीर में वह जिस तरह मुस्करा रही है, वह भद्र नहीं है। उसे अपने मुस्कराने में कहीं कुछ कुरुचि का पुट दिखलाई दिया। आखिर इस प्रकार से कैमरा के सामने हँसने का क्या कारण था? यह हँसी या तो उनको शोभा देती है जिनका दिमाग विकसित नहीं हुआ है या जो अपने रूप का रोजगार करती हैं। उसे बड़ी घृणा हुई। वह उठी और उसने जाकर उस तस्वीर को उलट दिया। केवल कार्डबोर्ड दिखलाई पड़ने लगा।

फिर वह बिस्तरें पर जाकर बैटी। वहीं पर तकिये के नीचे परिमल की एक छोटी-सी तसवीर रक्खी हुई थी। जब से परिमल नहीं आया था, तब से यही तस्वीर उसके लिये जयमाला-सी हो रही थी। वह इसे बार-बार देखती और तरह-तरह के अनुमान लगाती कि वह क्यों नहीं आ रहा है। इसी तस्वीर को देखते-देखते वह उठ कर माँ के कमरे में चली गई थी।

उसने तस्वीर को धीरे से तकिये के नीचे फिर रख दिया। जाकर किवाड़े बन्द कर लिये, फिर विस्तरे पर लौटकर तकिये के नीचे से उस तस्वीर को निकाल कर देखने लगी। कितना सरल मोहक चेहरा है। आँखों में मानो जीवन भरा हुआ है। क्या यह व्यक्ति उसे धोखा दे सकता है? और यह इसलिये कि वह बीस बिसवे का है और वह उससे घटकर है। पुरोहितजी के लिये भले ही यह कारण कोई अर्थ रखता हो, पर परिमल के लिये इस तरह की बातों का कोई अर्थ नहीं हो सकता। हाँ, यह तो स्पष्ट है।

उसने उलट-पलट कर परिमल की तस्वीर को हर कोण से देखा और उसे यह विश्वास हो गया कि वह इस प्रकार के हास्यजनक कारणों

से अपनी प्रतिज्ञा से मुकर नहीं सकती। हाँ प्रतिज्ञा तो थी ही। उन दोनों ने सैकड़ों बार एक दूसरे से प्रतिज्ञा की थी कि वे एक दूसरे के हैं और होकर रहेंगे। वे किसी तरह इस निश्चय से डिग नहीं सकते। तारे भरे आकाश के नीचे, चन्द्रमा की खिलती हुई सर्वग्रासी रोशनी के नीचे, पुष्पों के कुञ्ज में, एक दूसरे से गले लगकर उन्होंने बार-बार एक दूसरे से धड़कते हुए हृदय से जो प्रतिज्ञा की थी, क्या वह एक बूढ़े की दकिया-नूसी और दूसरे बूढ़े की जबानदराजी के कारण नष्ट हो जायगी ? कदापि नहीं। वह फिर एक बार कोशिश करेगी।

वह इसी विचार से अपनी पलँग से उठकर लिखने की मेज पर जा बैठी। बड़ी देर तक कागज उलटती-पलटती रही, फिर एक कागज और पेन निकालकर उसने परिमल को एक पत्र लिखना शुरू किया। परिमल की उस छोटी-सी तस्वीर को उसने मेज पर अपने सामने रख लिया। इस प्रकार रख लिया कि लिखते समय बराबर वह आँख के सामने बनी रहे।

उसने लिखा—

प्रियतम,

कई दिनों से तुम नहीं आये तो मुझे बड़ी शंका हुई। कई बार पहले भी ऐसा हो चुका कि तुम बीच-बीच में कार्यवश नहीं आये, पर कोई न कोई खबर तो दे ही देते थे। अब की बार तीन दिन तक न तो तुम ही आये और न तुम्हारी कोई खबर ही आई, तो मैं व्यग्र होकर माता जी के पास पहुँची। वहाँ मालूम हुआ कि पिता जी पुरोहित जी के पास शादी का प्रस्ताव लेकर गये थे, पर न मालूम किस जन्म का पाप था, पुरोहित जी ने उनका प्रस्ताव मंजूर नहीं किया। सुनती हूँ कि हमारा कुल कुछ घटिया है, इसी कारण पुरोहित जी ने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। फिर तो शायद पिता जी पुरोहित जी से लड़ भी गये। पिता जी को दिन भर सरकश किसानों से पाला पड़ता है, इस कारण उनकी आदत एक खास किस्म की बनी हुई है, इसलिये मुझे डर है कि वे कुछ ज्यादा कह गये।

जो कुछ भी हो, मैं तो यह समझती हूँ कि यदि किसी कारण से तुम्हारे और हमारे पिता झगड़ गये, तो इससे हम लोगों के प्रेम में तथा उस प्रतिज्ञा में जिसे हमने एक दूसरे से की है, फर्क नहीं आना चाहिए। अवश्य ये लोग न लड़ते और शादी हो जाती, तो हम लोगों का मिलन आसानी से हो जाता। पर मिलन तो होना ही है, उसे कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती। मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि मिलन कैसे होगा, पर इतना मैं समझती हूँ कि मैं तुम्हें पाये बगैर जीने में असमर्थ हूँ। मैं यह भी साफ-साफ लिख देती हूँ कि यदि तुम आज्ञा दो तो मैं सब कुछ छोड़कर तुम्हारी हो सकती हूँ। मुझे कोई बन्धन रोक नहीं सकता।

हमारी समझ में नहीं आ रहा है कि कैसे क्या होगा। मुझे सब धुँधला मालूम पड़ रहा है, कुछ भी साफ दिखाई नहीं पड़ रहा है। तुम पुरुष हो, शायद अधिक दूर तक सोच सकते हो, तुम मुझे यह बताओ कि कैसे क्या करूँ? तुम्हारा प्रस्ताव कितना भी अजीब हो, मैं उसे मानूँगी।

इस पत्र को समाप्त करते हुए बड़ा क्लेश हो रहा है। तुम्हारा-मेरा सम्बन्ध ऐसा थोड़े ही है कि दस-बीस पंक्तियों में मैं अपने भाव व्यक्त कर सकूँ। तुमसे तो वर्षों बात करती रहूँ, तो भी मेरी बातें खतम न हों। तुम मेरे प्रियतम ही नहीं, मेरे गुरु तथा सर्वस्व हो, इसलिये आज्ञा दो कि कैसे ये बादल फटें और फिर हमारे सुख-सूर्य का उदय हो।

मेरे अगणित चुम्बन तथा प्रणाम।

तुम्हारी प्यारी, रेणु।

रेनुका ने इस पत्र को एक बार पुनः पढ़ा, फिर उसने कलम उठाई और पुनश्च करके लिखा—

पुनश्च—

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम इसके उत्तर में पत्र भेजने के बदले एक बार दर्शन दे जाओ। नहीं, मेरे घर आने की जरूरत नहीं, मैं ही जहाँ कहोगे वहाँ हाजिर हो जाऊँगी। तुम तो जानते ही हो कि

किन समयों पर घर से गायब हो जाऊँ तो किसी को सन्देह न होगा।

तुम्हारी—रेणु

इस पत्र को लिखने के बाद रेनुका का मन कुछ शान्त हुआ। वह अब यह सोचने लगी कि जितनी जल्दी हो सके इस पत्र को रवाना किया जाय, पर रात हो चुकी थी, इसलिये इस पत्र को भेजना असम्भव था, फिर बाबू जी से बचाकर भेजना था।

कल सबेरे के पहले यह पत्र किसी तरह जा नहीं सकता था।

उसने पत्र को मोड़कर लिफाफे में रख दिया, पर उसे चिपकाया नहीं। न मालूम सबेरे तक और क्या बात याद आ जाय। पत्र को सुरक्षित रखकर उसने फिर एक बार परिमल की तस्वीर की ओर देखा। तस्वीर हँस रही थी। अवश्य ही परिमल अनुकूल उत्तर देगा।

इसी आशा को लेकर वह जाकर लेट गई और थोड़ी ही देर में सो गई।

८

मुस्लिम लीग की युद्ध-समिति की तरह एक समिति की बैठक हो रही थी।

पछाँह के कई मुसलमान तथा राजधानी से आये हुए कुछ लोग भी इसमें शरीक थे। सच तो यह है कि ये ही लोग स्थानीय लोगों पर नेतृत्व कर रहे थे।

जो साहब पछाँह से आये हुए लोगों के नेता मालूम पड़ते थे, वे बोले—देखो हम लोगों की यह ख्वाहिश है कि इस इलाके में कोई हिन्दू न रहे और यह सच्चे माने में पाकिस्तान हो जाय···

स्थानीय लोगों में से मीर बन्देअली ने इस योजना पर सन्देह प्रदर्शित किया। बोला—इनकी तायदाद सैकड़ों की है। एक दो जमीं-

दार खासपुरवा के पुरोहित जी की तरह दस-बीस सभा-लीडरों को खतम करना और बात है।

पछाँह से आये हुए वे नेता बोले—जी हाँ, काम मुश्किल है, तभी तो उसे अंजाम देने के लिये इतने दिनों से तैयारी करनी पड़ रही है। हमारी स्कीम यह है कि हरेक हिन्दू जवान और बूढ़े को मार डाला जाय और जितनी औरतें और बच्चे हैं उनको दीनेइस्लाम में ले लिया जाय। अगर फिर भी कुछ हिन्दू बच गये तो वे खुद ही डर के मारे इलाका छोड़कर भाग जायँगे। इसी तरह हमें सब जिलों में करना है। जब इस तरह एक-एक जिला करके पाकिस्तान के सब जिले पाक हो जायँगे, तब कोई ऐसी ताकत नहीं है, जो हमें पाकिस्तान से रोके। जब पाकिस्तान हो जायगा तो हम धीरे-धीरे अपनी ताकत बढ़ायेंगे और हिन्दुस्तान के सूबों पर हमला कर देंगे। इस तरह आज जिसे हिन्दुस्तान कहते हैं वह सारे का सारा पाकिस्तान हो जायगा।

पछाँह के इन नेताजी ने दाढ़ी हिला-हिला कर इस योजना को विस्तार के साथ समझाया। मीर बंदेअली को इसकी सफलता में सन्देह था, पर जहाँ सब लोग चुप थे वहाँ इस मामले में बोलना खतरे से खाली नहीं था, पर एक स्थानीय व्यक्ति ने यह पूछ ही लिया—साहब मान भी लें कि आप जो बता रहे हैं हम सब कुछ करने के लिये तैयार भी हो जायँ और हमारे पास इसे करने की एक हद तक ताकत भी हो, फिर भी पुलिस कहाँ जायगी वह और सरकार हमें नहीं रोकेगी ?

पछाँह से आये हुए नेता हँसे। उन्होंने लापरवाही से पान के डब्बे में से पान निकाल कर मुँह में रखा, फिर राजधानी से आए हुए लोगों की ओर इशारा करते हुए कहा—इस बात का जवाब हजरत मलिक इसफहानी देंगे।

राजधानी से आए हुए लोगों में जो व्यक्ति जरा नेता-से मालूम पड़ रहे थे, उन्होंने चारों तरफ देखते हुए कहा—आपको मालूम होना

चाहिए कि हमारे सूबे में लीगी सरकार है और लीग का मकसद पाकिस्तान है। क्या लीगी सरकार ऐसी कोई बात करेगी कि जिससे पाकिस्तान की स्थापना में बाधा पहुँचे ?

सब लोग समझ गये। अब व्यावहारिक रूप से क्या किया जाय, इस पर बात चली। एक साहब जो अपनी पोशाक से सामरिक विभाग के मालूम होते थे, बोले—तैशुदा दिन पर जहाँ से हिन्दू गाँव शुरू होते हैं, उसी के पास लीग का एक बड़ा भारी जलसा होगा, फिर वहीं से बताया जायगा कि क्या करना है। सब सामान वहीं मिलेगा।

एक ने पूछा—कब तक यह बात होगी ?

इस पर पछाँह से आये हुए नेता ने कहा—सब लोग हर वक्त तैयार रहें, किसी भी वक्त हमले का नारा दे दिया जा सकता है।

बैठे हुए सब लोग इस बात के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो गये कि क्या होगा।

ठीक इसी समय पुरोहित जी के मकान पर इधर के इलाके के गण्य-मान्य हिन्दुओं की और साथ ही साधारण हिन्दुओं की एक सभा हो रही थी। सब लोग घबड़ाये हुए थे। यदि किसी का चेहरा प्रशान्त था तो पुरोहित जी का। बाकी सबके चेहरे पर आतंक तथा उद्वेग था। यदि लीग की उस सभा को युद्ध-समिति कहा जा सकता है तो इसे आत्म-रक्षा-समिति कहा जा सकता है। आत्मरक्षा-समिति, पर आत्मरक्षा के सब साधनों से हीन।

ये लोग यह समझ बैठे थे कि यदि कोई बखेड़ा हुआ तो उनकी हार अवश्य होगी। एक तो संख्या कम, तिस पर सरकार विरोध में, फिर कुछ एका नहीं था। यदि उनको यह पता होता कि सब हिन्दुओं के विरुद्ध हमला होने वाला है, तो उसकी कोई व्यवस्था हो जाती, पर वहाँ तो यह मालूम नहीं था कि विराट पैमाने पर कुछ होने जा रहा है। वे तो सोचते थे कि जैसे इक्के-दुक्के हमले हो रहे हैं, वैसा ही इक्का-दुक्का

हमला होगा। इसीलिये कोई संगठन की बात नहीं सोचता था।

गरीब लोग मन ही मन यही सोचते थे कि हमला धनियों के विरुद्ध है। इसलिये वे उससे उदासीन थे।

पुरोहित जी ने सभा में निर्भीक होकर यह कहा—हमें किसी तरह के शस्त्र की जरूरत नहीं है। यदि हम सचमुच निर्भीक हो जायँ और चाहे लीगियों की तरफ से कुछ भी हो तथा हम मुसलमान भाइयों के प्रति विद्वेष न रखें, तो हमारा कुछ भी बिगड़ नहीं सकता।

एक ने कहा—पंडित जी आपके मन में तो मुसलमानों के प्रति कोई विद्वेष नहीं है, फिर आपके हाथ से सत्यनारायण-शिला छीन ली गई और वह चक्की में पीस डाली गई?

पुरोहित जी ने कहा—तुमने यह कैसे जाना कि मेरे मन में कोई मैल नहीं था! अवश्य ही था, नहीं तो मुसलमान क्यों मुझ पर हमला करते? अब मैं समझता हूँ कि इतने दिनों तक आंशिक अनशन करने के बाद अब मुझमें वह शक्ति पैदा हो रही है, जिससे मैं बाघ का भी सामना कर सकता हूँ। मेरे मन में कुछ भी डर नहीं है। ऐसा ही अगर सब हिन्दू रखें तो काम बन जाय। उस हालत में कोई हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। पर हो सच्ची अहिंसा की भावना, इसमें कोई मिलावट न हो।

राजधानी से आये हुए हिन्दू महासभा के नेता बोले—आप जैसी अहिसा की बात कह रहे हैं वह शायद दुर्लभ है। मैं इतना ही जानता हूँ कि राजधानी में अभी जो दंगा हुआ था उसमें पहले मुसलमानों ने हिन्दुओं के एक-एक साल के बच्चों तक को मार डाला, फिर हिन्दुओं ने भी ऐसा ही किया। अब यह कहा जाय कि इन साल भर के बच्चों में भी हिंसा थी तो बात दूसरी है। कोई भी सही दिमाग इसे नहीं मान सकता।

पुरोहित जी का अनशन-क्लिष्ट चेहरा दमक उठा, बोले—भाई, मैं

बहुत बूढ़ा हो गया हूँ, अब मेरे लिये कोई नया सबक सीखना असम्भव है। मुझे तो अहिंसा पर ही विश्वास है और अगर आप लोगों को किसी दूसरे तरीके पर ही विश्वास है, तो आप उसी तरीके से बन्दोबस्त कीजिए। मैं इसमें नहीं पड़ता हूँ। मेरा तो यह इरादा था कि मैं नबी ्र के उन मुसलमानों में जाकर अनशन करूँ जिन्होंने मेरी मूर्ति छीन ली थी, पर लड़कों तथा पास पड़ोसियों ने ऐसा नहीं करने दिया। इस प्रकार मैं अहिंसा का जो प्रयोग कर रहा हूँ, उसे एक दायरे के अन्दर ही कर रहा हूँ फिर भी मैं समझता हूँ कि मुझे यथेष्ट सफलता मिलेगी।

हिन्दू महासभा के राजधानी से आए हुए नेता ने इस पर कुछ नहीं कहा। उन्होंने समझा इस ६५ साल के बूढ़े से तर्क करना व्यर्थ है। उनका विश्वास टल नहीं सकता, वे तो अपने ढर्रे पर ही चलेंगे। इसलिये उन्होंने प्रसंग बदलते हुए कहा—शास्त्रों में इसका विधान है कि आततायी से जिस किसी भी तरह से रक्षा हो, उचित है।

दोनों पक्षों में गहरा तर्क छिड़ गया और इसी प्रकार कई दिनों तक हिंसा-अहिसा पर तर्क होता रहा और कोई किसी व्यावहारिक नतीजे पर नहीं पहुँचा। सच बात तो यह थी कि मुसलमानों में जिस प्रकार का पागलपन था, हिन्दुओं में उस प्रकार की कोई भावना नहीं थी। वे तो हर कदम पर सोचते थे और यह शायद अच्छा ही था कि वे छोटे हितों के लिये बड़े हितों का बलिदान करने के लिये तैयार नहीं थे।

६

दशरथ बाबू पागल की तरह रेनुका की शादी की तैयारी में घूम रहे थे। उनके सामने ऐसे वर के ढूँढ़ने की समस्या थी जो बीस बिसवा का तो हो ही, साथ ही शिक्षा और चरित्र में परिमल से किसी तरह घटकर न हो। उनके अन्दर जो बदले की भावना उत्पन्न हो चुकी थी, वह इसी प्रकार का दामाद प्राप्त कर ही तृप्त हो सकती थी।

पहले तो इस किस्म का कोई वर नही मिला, पर जब चारों तरफ से आदमी दौड़ाये गये और सबसे ज्यादा वे खुद दौड़े तो ऐसा एक वर पास ही मिला जो कुल की दृष्टि से रजनी बाबू से कुछ अच्छा ही था, इसके अलावा वह एम० ए० पास तथा संस्कृत में भी कुछ डिग्री प्राप्त था। उम्र में भी वह परिमल के ही बराबर था। हाँ, वह दुआह जरूर था, पर केवल नाम मात्र को, क्योंकि जब उसकी उम्र पन्द्रह साल की ही थी, तभी उसकी आठ साल की दुलहिन का देहान्त हुआ था। अपनी जान में दशरथ बाबू को यह निश्चय था कि यह वर रेनुका के लिये पूर्ण रूप से उपयुक्त है।

वर के पिता जीवित थे, पर माता मर चुकी थी। वर अपने बाप का एकमात्र पुत्र था, जमींदारी के काम-काज में होशियार था, वह पास ही के किसी जमींदार के यहाँ कई महीने तक मैनेजर या कारिन्दा कुछ रह चुका था। इस समय किसी और पढ़ाई के लिये तैयारी कर रहा था। उसकी उच्चाकांक्षा यह थी कि एक स्कूल की स्थापना करे।

इस प्रकार यह वर दशरथ बाबू को सब तरह से पसन्द था। लेन-देन का मामला भी आसानी से निपट गया। वर के बाप ने एक माँगा तो वे दो देने पर राजी हो गये, फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यही लड़का आगे चलकर उनकी सारी जमीन और जायदाद का मालिक होगा। स्वयं वर को भी यह विवाह पसन्द था क्योंकि इस विवाह से उसकी उच्चाकांक्षा पूरी होने की सम्भावना अधिक हो जाती थी।

दशरथ बाबू ने इन सारी बातों को एकदम गुप्त रखा। यहाँ तक कि रूपवती से भी उन्होंने इसका उल्लेख नहीं किया। जब सब मामला तय हो गया तब उन्होंने रूपवती से यह बात बतायी।

रूपवती दशरथ बाबू के जोश से तमतमाते हुए चेहरे की ओर टुकुर-टुकुर देखती रही और उसका हृदय करुणा से भर गया। दशरथ बाबू तो बड़े उत्साह के साथ सब बातें कहते जाते थे मानो कोई मुल्क

फतह कर लिया है, पर रूपवती का दिल भीतर ही भीतर बैठता जा रहा था। यह आदमी उसका प्यारा पति कितना अ-यावहारिक है कि जिस व्यक्ति का इस विवाह से सबसे अधिक सम्बन्ध है, उससे बिना कुछ पूछे ये अपने आकाश-सौध की रचना करते गये थे। एक किशोरी का मन कोई साँचा थोड़े ही है कि उसमें जिसे चाहे लाकर डाल दिया और वह घुल-मिलकर फिट हो जायगा। हृदय के नियम और ही हैं। उसमें जो चीज एक बार घुस गयी वह जब तक नहीं निकलेगी उसमें दूसरी चीज के लिये गुञ्जाइश न होगी। मनुष्य कोई भेड़-बकरी थोड़े ही है कि एक जोड़ा फूट गया तो दूसरा जोड़ा लाकर रखने से फौरन सब समस्या हल हो जायगी। अवश्य सभी घाव भर जाते हैं, समय सभी घावों को भर देता है, पर ऐसे मौकों पर जल्दबाजी के लिये कोई स्थान नहीं। पर दशरथ बाबू तो सरपट दौड़ रहे थे।

रूपवती ने जब सारा व्योरा सुन लिया तो बोली—रेणु से पूछ लिया ?

दशरथ बाबू यद्यपि अपनी धुन में बहे जा रहे थे और उस धुन के सामने उन्होंने किसी चीज को गिना नहीं था, फिर भी उनके मन में कुछ खटका तो था ही। रूपवती ने जो एकाएक इस प्रश्न को पूछ दिया तो उनको वास्तविक की एक झलक दिखाई पड़ गई। एक क्षण के लिये उन्होंने अपनी सारी बनी-बनाई अट्टालिका को अररर धम् करके, गिरती हुई देखा, पर इच्छा-शक्ति के प्रबल प्रयास से उन्होंने अपने को सम्हालते हुए कहा—पूछने में क्या देर लगती है ? पूछ लूँगा।

रूपवती थोड़ी देर चुप रही, फिर बोली—अगर वह न राजी हुई तो ?

दशरथ बाबू ने इस तरह से चीज को कभी नहीं सोचा था। वे यह समझते ही नहीं थे कि वे एक शादी तय करें और रेणु उसमें बाधा पहुँचाये या न करे। फिर भी उनके मन में जो तिल-सा खटका था वह वृहत् आकार में हो गया।

वे थोड़ी देर तक चुप रहे, फिर बोले—क्या ऐसा भी हो सकता है कि मैं शादी तय करूँ और रेणु उसे अस्वीकार करे ?

रूपवती ने साधारण तरीके से कहा—क्यों नहीं ? लड़की सयानी हो गयी है, फिर·· कहते-कहते वह रुक गई।

—फिर क्या ?

रूपवती कुछ देर चुप रही, फिर बोली—मैं तो जहाँ तक समझती हूँ, परिमल से वह प्रेम करती है।

—तो मैं ही कब इसमें बाधक था ? अब परिमल के पिता राजी नहीं होते तो मैं क्या करूँ ?

—हाँ, तुम्हारा भी तो कसूर नहीं है, पर इतनी जल्दी ?

दशरथ बाबू बोले—जल्दी इसलिये है कि जमाना बहुत तेजी से खराबी की ओर जा रहा है। फिर मैंने एक बात तो तुमसे बताई नहीं। जिस तरह से नीच लोग उभर रहे हैं उससे अब मैं अपनी जान-माल खतरे से खाली नहीं पाता।—दशरथ बाबू के चेहरे पर इन दिनों जो सिकुड़नें पैदा हुई थीं वे एकाएक गहरी हो गयीं।

—क्यों ? क्यों ?—रूपवती एकाएक बहुत व्यग्र हो गयी और उसने विस्तरे से उठने की व्यर्थ चेष्टा की। उसके चेहरे पर भय के चिन्ह स्पष्ट हो गये।

—बात यह है कि बहुत से लोग हर वक्त मेरी जान लेने की फिक्र में घूम रहे हैं। उनकी यह धारणा हो गई है कि मैं नहीं रहूँगा तो दुनिया अच्छी हो जायगी।—एक कड़वी हसी हँसे।

रूपवती मानो इसी की आशंका कर रही थी। उसकी आदत ही ऐसी बन गई थी कि कोई भी बुरी बात आती तो वह समझती कि यह बिलकुल स्वाभाविक है। बोली—तो होशियार रहा करो।

दशरथ बाबू फिर कड़वी हँसी हँसे, बोले—होशियार रहूँ तो किससे रहूँ ? एक-दो दस-बीस हों तो होशियार रहूँ। यहाँ तो इन्हीं में रहना

है। इसलिये यह होशियारी करता हूँ कि बिलकुल होशियार नहीं रहता।

दोनों देर तक चुप रहे। फिर दशरथ बाबू ने कहा—इसीलिये चाहता हूँ कि जल्दी से जल्दी लड़की का बोझ सिर पर से उतर जाय।—कहकर ध्यान से रूपवती के चेहरे की ओर देखते हुए बोले—मैं समझता हूँ कि तुम यह शक करती हो कि मेरी बदमिजाजी की वजह से वह शादी बिगड़ गई, पर ऐसी बात नहीं है। यदि पुरोहित जी के पैरों पर गिरने से मेरा काम बनता तो मैं गिर पड़ता। पर वहाँ तो बिलकुल किवाड़े बन्द हैं। जब किवाड़े बन्द हो गये और मैंने यह समझ लिया कि ये खुल नहीं सकते, तभी मैंने दो-एक कड़ी बातें कह दीं। अब मैं वह नहीं हूँ जो पहले था। जमाने ने मुझको भी बदला है। अगर वैसा ही होता तो कब का जूझ चुका होता।

रूपवती दशरथ बाबू की इन बातों को विशेषकर, पैरों पर गिर पड़ता, अब मैं वह नहीं हूँ—सुनकर बहुत द्रवित हो गई। अब उसे पूरा विश्वास हो गया कि उस विवाह के टूटने में पति का कोई दोष नहीं है, पर फिर भी इस नये विवाह की सफलता के सम्बन्ध में उसे गम्भीर सन्देह थे। किन्तु उसने यह मुनासिब नहीं समझा कि इस बात को स्पष्ट कहकर पति के दुखाये हुए मन को और भी दुखित किया जाय। उसने परिवार पर एक भयंकर विपत्ति की छाया देखी, पर फिर उसने अपने स्वभाव के अनुसार यह तय किया कि जब तक टले टले, फिर देखा जायगा। टलने में ही मंगल है, यों तो सर्वत्र विपत्ति ही विपत्ति है।

दशरथ बाबू विवाह की अन्य तैयारियों की बात बताने लगे, पर रूपवती ने इनमें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली। प्राणहीन तरीके से हर बात पर हाँ हाँ करती गई। कुछ सुनी और कुछ नहीं सुनी। वह तो यही सोच रही थी कि अब परिवार पर हर तरीके की विपत्ति आई, कहीं कोई मुक्ति का मार्ग दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। अत्यन्त ढालू पहाड़ पर गिरते हुए प्रस्तर खंड की तरह विपत्ति उन पर दौड़ी आ रही

थी, नीचे खड़ी वह उसे देख रही थी, पर कहीं हटने की जगह नहीं थी।

१०

पत्र भेजकर रेनुका बड़े चाव से परिमल के पत्र की प्रतीक्षा करती रही। रोज आदमी दौड़ाती थी, पर पत्र भी मिला तो बहुत छोटा सा जिसमें कोई बात साफ नहीं हुई थी। पत्र का लहजा भी कुछ विशेष उत्साहवर्द्धक नहीं था।

पत्र यों था—

प्रिय—मुझे तुम्हारा पत्र मिला। हम लोगों का प्रेम तो कायम ही है। मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हूं, पर और बातों के सम्बन्ध में सोचने में असमर्थ हूं। जल्दी क्या है ? फिर लिखूँगा।

तुम्हारा—

परिमल

रेनुका इस पत्र को पढ़कर अजीब उधेड़बुन में पड़ गई। खासपुरवा यहाँ से साइकिल पर पाँच मिनट का रास्ता है, इतनी व्याकुलता के साथ बुलाया गया, पर परिमल फिर भी नहीं आया। लिखा है कि प्रतिज्ञा पर अटल है, पर पाँच मिनट के लिये आ भी नहीं सका, और यह जो लिखा है कि अन्य बातों के सम्बन्ध में सोचने में असमर्थ हूं, सो इसका क्या अर्थ है ? यह असमर्थता किसी विशेष काम-काज के पड़ जाने से सामयिक रूप से है, या स्थायी असमर्थता है। पुरोहित जी का अपमान हुआ, इसलिये इसका अर्थ यह तो नहीं है कि विवाह की बात अकल्पनीय है। इस प्रकार रेनुका तरह-तरह के विचारों में गोते खाती रही। कभी तो वह इस पत्र में आशा की जीवनदायिनी किरणें देखती और कभी वह इसमें अन्धकार ही अन्धकार देखती, ऐसा अन्धकार जिसमें कुछ सूझता ही नहीं, जो सब तरह से ठोस है और जिसमें कहीं दरार नहीं है। वह कुछ समझ ही नहीं पा रही थी कि अब आगे क्या किया जाय। दो-तीन दिन तक

उसने लगातार आदमी भेजे, पर परिमल ने पहले दिन जो उत्तर दिया था उसके अलावा न तो कोई उत्तर दिया और न खुद आया ही।

जिस आदमी को वह भेजती थी वह घर का पुराना नौकर था। इधर-उधर दौड़ना ही उसका काम था। वह नौकर था, पर फिर भी नौकर के सामने भी एक इज्जत होती है। नौकर कोई मशीन नहीं होता वह भी कुछ सोचता है, अपने ढंग से वह भी हर बात का एक अर्थ लगाता है। इसलिये जब लगातार तीन दिन तक पत्र के साथ भेजे जाने पर भी परिमल ने कोई उत्तर नहीं दिया, न कोई सन्देश ही दिया, और न वह खुद ही आया, तब नौकर के सामने अपनी इज्जत बचाने का यह तकाजा हुआ कि अब उसे इस काम में न भेजा जाय।

अन्तिम बार उस नौकर ने आकर कहा था—दीदी, वे तो कुछ कहते ही नहीं, बड़ी मुश्किल से मिलते हैं; फिर कहते हैं कि जाओ हम खबर भेज देंगे।

रेनुका ने नौकर की आँखों में यह स्पष्ट पढ़ लिया कि वह समझ रहा है कि परिमल उसे प्रत्याख्यान कर रहा है। कोई भी स्त्री, वह चाहे कितना भी प्यार करती हो, इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकती कि लोग जानें कि वह किसी से प्रेम करती है और वह उसे ठुकरा रहा है। इसलिये रेनुका ने बनावटी क्रोध के साथ कहा—नहीं आते, न आवें, उन्हीं के फायदे की एक बात थी, नहीं आते न आवें। जाओ।

नौकर तो चला गया। नौकर के सामने तो इस प्रकार अपनी इज्जत रेनुका ने बचा ली, पर अपनी आँखों के सामने उसकी इज्जत गई। वह अजीब परिस्थिति में पड़ गई। न तो वह यह समझ सकी कि उसकी असली परिस्थिति क्या है और न वह आगे के कार्यक्रम का निर्णय कर सकी। साम्प्रदायिक परिस्थिति के कारण पिता की मुमानियत थी कि वह कहीं बाहर न जावे। फिर भी वह छिपकर जा सकती थी, पर उसे इस बात में सन्देह था कि जाने से काम बनेगा ही। ऐसी हालत में

परदे के अन्दर बैठकर घुलने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। माता जी की जैसी हालत थी, उसमें उनको इसमें सानना व्यर्थ था। पिता जी तो दिन भर आजकल न मालूम किन कामों से दौड़ा करते थे। जब कभी भेंट भी हो जाती थी तो इतनी जल्दी में होते थे कि कुछ बात-चीत की हिम्मत नहीं पड़ती थी। जो परेशान है उसे क्या परेशान करना?

परिमल ने बाद के पत्रों का उत्तर क्यों नहीं दिया था, यह तो वही जाने, पर था वह इन दिनों बड़ी विपत्ति में, इसमें सन्देह नहीं। पुरोहित जी के घर में तथा इर्द-गिर्द लोग जमा हो रहे हैं और किसी न किसी तरह के प्रतिरोध की तैयारी कर रहे हैं, यह खबर स्थानीय लीग के कारकुनों को लग चुकी थी। वे समझ रहे थे कि यही एक पुरोहित है जो उनके मार्ग में कंटक-स्वरूप है। वे समझते थे कि यही आदमी ऊपर से अहिंसा और हिन्दू-मुस्लिम एका का बाना पहन कर भीतर-भीतर मुसलमानों को गारत करने के लिये हिन्दू-संगठन कर रहा है।

बात यह है कि पुरोहित जी निर्भीक थे, इसमें तो सन्देह नहीं। वे साफ-साफ कहते थे कि कोई कितना भी धमकावे, हमें धर्म नहीं बदलना है। इसलिये नहीं कि हिन्दू-धर्म सबसे अच्छा है, बल्कि इसलिये कि सभी धर्म एक गन्तव्य स्थान के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। पुरोहित जी कहते थे कि उनके लिये हिन्दू-धर्म का मार्ग सबसे अच्छा पड़ता है, इत्यादि।

इन बातों की खबर पछाँह से आये हुए उस लीगी नेता तथा अन्य सभी लीगी नेताओं को हो चुकी थी। अहिंसा का असर हो या न हो, पुरोहित जी की निर्भीकता का असर सब पर पड़ता था। नितान्त कायर भी उनके नैतिक असर से प्रभावित होता था। इस प्रकार लीग के फैलाये हुए अंधकार के मुकाबिले में वे एक रोशनी-घर के रूप में हो रहे थे। यह बात इनको नागवार थी।

अभी लीग की तैयारी में कुछ कसर थी। इसलिये वह प्रत्यक्ष हमला तो नहीं करना चाहती थी, पर उसके डराने-धमकाने का काम तो शुरू

हो चुका था। परिमल के छोटे भाई से जिसकी उम्र अभी १३ साल थी, लीगियों ने एक दिन यह कहा था कि जाकर अपने बाप से कह दो कि अगर भला चाहते हैं तो अपने घर में मजमा करना बन्द कर दें, नहीं तो खतम कर दिये जायँगे। उस लड़के ने आकर यह खबर घर में दी तो भय छा गया। पण्डिताइन ने तो कहा कि चलो हम लोग कुछ दिनों के लिये काशी जी हो आवें। पर पंडित जी राजी नहीं हुए। केवल यही नहीं, लड़के को बुलाकर उन्होंने पूछा कि कौन से गाँव के लोग थे। जब बताया कि नबीपुर और इमाम नगर के लोग थे, तो वे वहीं जाने पर उतारू हो गये।

बोले—अगर कुछ लोग ऐसे हैं, जो मुझे मार डालना चाहते हैं तो मुझे उन्हीं में जाना चाहिये। अगर मेरे जाने से ही उनको अपनी गलती मालूम हो जावे, तब तो अच्छा ही है। पर अगर ऐसा न हो और वे मुझे मार डालें, तब तो उन्हें अपनी गलती मालूम ही हो जायगी।—वे सचमुच एक लोटा और एक डोरी लेकर चलने के लिए तैयार हो गये, पर घर तथा पास-पड़ोस वालों ने उन्हें जाने नहीं दिया। अवश्य उनके घर में पहले की तरह बराबर सभा होती रही और वे उसमें सब धर्मों की एकता साथ ही निर्भीकता पर व्याख्यान देने लगे।

नतीजा यह हुआ कि लीगी और ज्यादा नाराज हुए। अवश्य अब पुरोहितजी के लड़के तथा पास-पड़ोस के लोग चुपके से पुरोहित जी पर पहरा देने लगे। पुरोहित जी को यह बात मालूम होती, तो वे बहुत बिगड़ते, शायद अनशन कर देते, इसलिये उन्हें कानों-कान खबर नहीं हो पाई कि उनके इर्द-गिर्द हर समय कुछ नौजवान पहरा देते हैं।

एक दिन संध्या समय उनके पहरेदारों ने एक नौजवान मुसलमान को सन्देहजनक परिस्थिति में मकान के अन्दर दाखिल होने की कोशिश करते हुए पकड़ लिया। उस दिन परिमल किसी काम से शहर में गया हुआ था।

लड़कों ने पकड़कर पहले तो उसकी तलाशी ली, पर उसके पास कोई भी अस्त्र या कोई सन्देहजनक वस्तु नहीं मिली। उससे पूछताछ करने पर उसने बताया कि वह पुरोहित जी के बड़े लड़के से मिलने आया था। अँधेरे में इसलिये आया था कि दिन में मिलने पर खतरा था। उसने यह बताया कि लीग के खुफिया चारों तरफ फिर रहे हैं। इसलिये उनकी आँख बचाकर वह पुरोहित जी के बड़े लड़के को एक जरूरी खबर देने आया था।

पुरोहित जी को इस नौजवान के सम्बन्ध में खबर नहीं दी गई क्योंकि लोग जानते थे कि खबर दी जायगी तो वे फौरन न आव देखेंगे न ताव उसे छुड़ा देंगे और उसे पुलिस में न दिया जा सकेगा। यह तय हुआ कि परिमल के आने की प्रतीक्षा की जाय। वह नौजवान भी इसी बात पर राजी हो गया।

परिमल ने आते ही उसे पहिचान लिया। अरे यह तो वही शकूर था जिसका भाई मूर्ति वापस देने की चेष्टा करने के कारण लीगियों के हाथ मारा गया था। इसी को परिमल ने ५०) रुपये दिये थे।

परिमल के माथे पर सिकुड़नें आ गईं, बोला—शकूर, तुम कैसे आये?

शकूर ने टोपी उतार कर अच्छी तरह टते हुए कहा—आपसे कुछ बातें करनी हैं, इन लोगों को जाने के लिए कह दीजिए—परिमल का इशारा पाकर वे लोग अनिच्छा से उस कमरे से निकल गये, पर बाहर ही दरवाजे के पास मँड़राते रहे।

शकूर ने कहा—लीग की सब स्कीम तैयार है। एक अँगरेज मुसलमान का भेष बनाकर इन लोगों को रास्ता बता रहा है। वह असल में अँगरेज है, पर अपने को बुखारे का मुसलमान बताता है। वह लोगों से कह रहा है कि कुछ नहीं होगा, हिन्दुओं को खतम कर दो।

परिमल ने कहा—अच्छा, वह अँगरेज है, यह तुमने कैसे जाना?

—जब से हमारे भाई साहब मारे गये तब से मैंने और मेरे कुछ साथियों ने एक सोसाइटी बनाई है। यह सोसाइटी लीग तथा हर तरीके के तास्सुबी लोगों के खिलाफ चलेगी। हम लोगों की कुछ ज्यादा नहीं चल रही है। फिर भी हम आठ-दस नौजवान हैं। हम लोगों का यह ख्याल है कि असली दुश्मन हिन्दू नहीं, बल्कि अंगरेज हैं पर लीग के पास इतने रुपये, परचे और आदमी हैं कि हमारी बात नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह है। इसी सोसाइटी से इस आदमी का असली पता लगा है, इसका नाम विलसन है।

परिमल को यह बात समझ में नहीं आई कि शकूर क्या चाहता है, बोला—बहुत खुशी है कि मुसलमान भाइयों में भी कुछ लोग ऐसे मौजूद हैं। जो कुछ मेरे करने लायक हो बताओ। विलसन की बात खूब बताई।

शकूर कुछ सकपकाया, क्योंकि उसने समझा कि वह गलत समझा गया है। उसने कहा—नहीं, मैं इस वक्त किसी तरह की मदद लेने नहीं आया हूँ, बल्कि यह बताने आया हूँ कि लीगियों ने पुरोहित जी को मारने का तय कर लिया है। उनके लीडर चाहते हैं कि जिस तारीख को आम हिन्दुओं पर हमला होगा, उसी तारीख को वे भी मारे जायँ, पर उतावले नौजवान यह कह रहे हैं कि इसे अभी खतम कर दो। तरह-तरह की बातें हो रही हैं। हमें यह खुफियातौर पर मालूम हुआ है कि दो-एक दिन के अन्दर ही पुरोहित जी जिस झोपड़ी में रहते हैं, उसमें आग लगाने की कोशिश होगी, इसलिते आप लोग होशियार रहें।

परिमल ने पूछा—बाबू जी पर ये लोग इतने नाराज क्यों हैं? वे तो बराबर यही कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई हैं, और लोगों ने बदले की वात कही तो उन्होंने कान पर उँगली रख ली।

शकूर बोला—वे लोग इसलिये उन पर इतना ज्यादा नाराज हैं कि वे समझते हैं कि पंडित जी का यह सब ढोंग है और इस ढोंग की वजह

से हिन्दू उनके पीछे हैं और वे उनका संगठन कर रहे हैं।

शकूर यह खबर देकर चला गया। जाते समय वह यह भी कह गया कि आगे कोई खबर होगी, तो बताऊँगा, पर किसी से नाम न खुले।

परिमल ने सब साथियों से बता दिया कि यह मामला है। यह सलाह हुई कि पंडित जी से यह कहा जाय कि वे सम्हल कर सोवें, खैर उन पर पहरा तो रहने ही वाला था। उनसे यह कहा गया कि आप फूस की इस झोपड़ी में न सोकर बाहर जो पक्का कमरा मन्दिर के रूप में है, उसमें सोयें। पर पंडित जी इस पर राजी नहीं हुए।

उन्होंने कहा—मरना तो एक दिन है ही, डरना क्यों? अगर मेरी आयु खतम हो गई तो सात ताले के अन्दर भी मर जाऊँगा। मौत का कोई न कोई बहाना होता है, सो अगर जल जाने में ही मेरी मृत्यु है तो उसी में हो। ईश्वर की इच्छा पूरी हो।

जब पंडित जी नहीं माने, तो यह तय हुआ कि एक आदमी उनकी एक तरफ सोये और दूसरा दूसरी तरफ, इसके अलावा कुछ लोग पहरे पर रहा करें।

तीन-चार दिन तक यही क्रम रहा, पर जब कोई खतरा पेश नहीं आया, तब लोग गाफिल हो गये। कुछ लोगों ने तो यह भी कहा—यह आदमी जब भी आता है, एक न एक गप्प हाँक जाता है, न मालूम इससे उसको क्या मिलता है।

परिमल ने उसे टोकते हुए कहा—पर इसका भाई तो मारा गया था।

पूर्व वक्ता ने जिद के साथ कहा—इसका क्या प्रमाण है? शायद यह भी बनाई हुई बात हो।

परिमल ने कहा—इसकी तो तसदीक हो चुकी है—फिर उसने यह बताया कि किस प्रकार शकूर के भाई के मारे जाने की तसदीक हुई है।

प्रश्नकर्ता जिद्दी था, उसने पूछा—एक आदमी मर गया और कुछ मुकदमा ही नहीं चला।

—हाँ, नहीं चला। लाश गायब कर दी गयी, कोई गवाह नहीं रहा, फिर दारोगा लीगी, तो क्या होता? दारोगा ने गाँव में आकर तहकीकात करने के बाद शकूर से यह कहा कि तुम्हारा भाई गायब है, यह तो साबित है, पर वह कहीं परदेश चला गया या मर गया, इसका कोई सबूत नहीं मिला। नतीजा यह हुआ कि शकूर हाथ मलकर रह गया। उसे स्वयं अपनी जान का खतरा है और तभी शायद उसने यह सोसाइटी बनाई है।

जो कुछ भी हो, लोग पहले के मुकाबिले में गाफिल हो गये और जो लोग पंडित जी के पास सोते थे वे अपने घर जाकर सोने लगे।

पुरोहित जी को इससे खुशी ही हुई।

११

जब कुछ अराजकता या अशान्ति होती है तो चोर, डाकू और जितने तरह के अपराधी हैं, उनका पौ बारह हो जाता है। वे तो ऐसे ही समय में खूब पनपते हैं। इस इलाके में चोरों के कई गिरोह थे। यह इलाका यों गरीब था, इसलिये ये लोग अक्सर चोरी ही करते थे, पर मौके-बेमौके डाका भी डाल देते थे। बस्ती से दूर एक जंगल में रात के समय इनके एक गिरोह की सभा हो रही थी। बीस-पचीस आदमी गोलाई से बैठे हुए थे। बीच में सरदार बैठा था।

इस गिरोह में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। आज ये लोग एक गम्भीर समस्या पर विचार करने के लिये इकट्ठा हुए थे। यदि ये कालेज के छात्र होते तो आज के विषय का नामकरण यों करते—"देश की गम्भीर परिस्थिति और चोर-समाज का कर्तव्य।"

आखिर चोरों को इतने गम्भीर विषय पर आलोचना करने की जरूरत क्यों पड़ी? इसलिये पड़ी कि चोरों में साम्प्रदायिकता का कुछ

प्रचार हो रहा था और इससे उनके भ्रातृत्व के टूट जाने का डर था। इसीलिये यह सभा बुलाई गई थी।

चोरों का जो सरदार था, वह अधेड़ उम्र का दुबला-पतला आदमी था। जितना ही वह दुबला-पतला था उतना ही फुर्तीला था, उसके शरीर का रंग अँधेरे से बिलकुल मिलता-जुलता था। यदि वह अमावस्या की रात में खड़ा हो जाता तो उसे जानना मुश्किल था। दुनिया की दृष्टि में भले ही इस प्रकार का रंग होना बुरा समझा जाय, पर चोर-समाज की दृष्टि में यही रंग आदर्श रंग था। इसका शरीर दुबला था, यह भी एक चोर के लिये बहुत अच्छी बात थी क्योंकि सेंध डाल कर कुछ मामूली छेद करते ही सरदार उसमें घुस सकता था। सरदार ने अपना अपराधी जीवन एक चोर के रूप में ही शुरू किया था, वह इसी रूप में एक बार जेल भी गया था। वहाँ से वह इस मत का होकर लौटा था कि जिस प्रकार वही मोटर अच्छी है, जो मौका पड़े तो पानी में स्टीमर की तरह चले और जमीन पर मोटर की तरह चले, उसी प्रकार मौका लगे चोरी करे और मौका लगे डाका डाले, इसी में भलाई है।

जब सरदार-प्रवर जेल से यह नया सन्देश लेकर लौटे तो कुछ पुराने चोरों ने इसका विरोध किया था। उन लोगों ने कहा था—चोरी में पकड़े भी गये तो छः महीना या साल भर की सजा होती है और डाके में तो एक ही दफे में जिन्दगी भर की नप जाती है।

सरदार ने इस पर वही मोटर वाली बात कहकर बताया था—यों तो चोरी ही हमारा काम रहेगा, पर कहीं डाके से बहुत काम बनता हो तो यह भी कर लेंगे।

इस प्रकार जेल के प्रसाद से यह गिरोह एक मिश्रित गिरोह हो गया था। अवश्य जैसा कि सरदार ने कहा था कि चोरी ही प्रधान कार्य है, यह गिरोह डाका बहुत कम डालता था। साल में एकाध।

आज इसी गिरोह का जीवन खतरे में था।

सरदार ने एक बार अपने सब साथियों को देख लिया, फिर कहा—बड़ी अजीब बात है कि तास्सुब का जहर हम लोगों में भी फैल रहा है। अब तक ऐसा होता था कि चाहे बड़े से बड़े लीडर इस जहर के चक्कर में फँस जायँ, पर हम लोग इससे अछूते रहते थे। हम लोगों का काम ही ऐसा है कि इसमें तास्सुब के लिये कोई गुञ्जाइश नहीं है। अगर हमें मालूम हो जाय कि किसी हिन्दू के घर माल है और हम उसे पा सकते हैं, तो क्या हममें से हिन्दू भाई उसे यह कहकर छोड़ देंगे कि यह हिन्दू का माल है? या मुसलमान इसलिये मुसलमान मालदार को छोड़ देगा कि उनका मजहब एक है? अगर हममें यह बदख्याल फैल गया तो हम खतम हो जायँगे। फिर तो हम हिन्दू महासभा और लीग की शाखा हो जायँगे। हममें और उनमें फिर क्या फर्क रहेगा, फिर हमारा कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहेगा और इस स्वतन्त्र अस्तित्व के लिये हमने कौन सी कुर्बानी नहीं की? किसी भी कांग्रेसी या लीगी के मुकाबिले में हमारी कुर्बानी ज्यादा है।

सरदार ने फिर एक बार अपने चारों ओर देखते हुए कहा—आप हमारे सामने बुद्धू मियाँ को देख रहे हैं, इन्होंने क्या-क्या झेला, यह इन्हीं से पूछ लीजिए।

सबने बुद्धू चाचा से कहा कि वह अपनी जीवनी सुनावें। बुद्धू चाचा ने टूटे-फूटे शब्दों में अपनी बात कहनी शुरू की। बोला—सरदार ने मुझे बोलने के लिये कहा, पर लीग, कांग्रेस और हिन्दू सभा की तरह हम लोग बातों के वीर नहीं हैं, हम तो कर्म करते हैं।—इस भूमिका के बाद चाचा ने जो कहा उसका सारांश यह है कि अभी बारह साल भी नहीं हुए थे कि पहले तो फूल बेंत लगा, इस प्रकार होते-होते और सजा बढ़ते-बढ़ते अभी चाचा हाल ही में सात साल की काटकर छूटे हैं।

सबने बुद्धू मियाँ की तारीफ की।

सरदार ने फिर कहा—तो हमारा रिकार्ड किसी से भी अच्छा है।

अब की बार मैं जेल गया था तो वहाँ पर राजनैतिक कैदियों को गोल बाँधकर कुछ कथा-सी कहते सुनता था। वे समझते थे कि रहीम धूप ले रहा है, पर मैं उनकी बात सुना करता था। वे कुछ समाजवाद-समाजवाद कहा करते थे। समाजवाद के माने सबकी बराबरी है, तो हम तो इसके लिये हजारों वर्ष से लड़ रहे हैं। हम धनियों का माल लेकर उसे अपने गरीब भाइयों में बाँटते हैं। जो कुछ भी हो, हमें तास्सुब से अलग रहना चाहिए।

मुस्लिम लीग की ओर झुके हुए एक चोर ने कहा—तो क्या हम सबसे अलग हैं ?

सरदार जेल में अब की बार सियासी वार्ड में कुछ झाड़ू आदि का काम करता था। वहाँ एक साहब द्वन्द्ववाद पढ़ाते थे, वे हर बात पर, हैं भी और नहीं भी, कहा करते थे। यह बात सरदार को बहुत पसन्द आयी थी, पर आज तक उसे इस सुन्दर वाक्य को इस्तेमाल करने का मौका नहीं आया था। आज एकाएक उसे ऐसा जान पड़ा कि यह बहुत उचित मौका है, बस उसने झट से प्रश्नकर्ता के उत्तर में कहा—हैं भी और नहीं भी।...

सरदार ने कहा—साफ बात है अगर आप बिरादरी में हैं तो आप बिरादरी की भलाई देखिये, जहाँ माल मिले, आसानी से मिले, वहीं हमारा काम है। हमें उस धनी के हिन्दू या मुसलमान होने से कोई मतलब नहीं है। हमें इस बात को आज खास करके इसलिये कहना है कि मुझसे कुछ लीगी मिले थे, उन्होंने कहा कि पाकिस्तान बनाने में मदद दो, वे चाहते थे कि हम हिंदुओं की मार-काट में हिस्सा लें, पर मैंने साफ इन्कार कर दिया।

मुस्लिम लीग की तरफ झुकाव वाले उस चोर ने कहा—आपको यह तो मालूम होगा कि जल्दी ही लीग की तरफ से लूट-पाट होने वाली है, उस वक्त हम लोग किस तरफ होंगे ?

सरदार ने कहा—यह बात आपको उस्ताद रामदास बतायेंगे—उसने पास ही बैठे एक चोर की ओर इशारा किया।

रामदास शायद गिरोह में सबसे बूढ़ा था। बोला—हम तो मूरख आदमी हैं, पर हम इतना जानते हैं कि कोई गड़बड़ हो तो हमें चेहरा न देखकर सबसे धन लेना चाहिए।

सरदार बोले—हाँ, यही है। यहाँ तो चाहे जो गड़बड़ हो, हमें अपना काम करना है। हमें दूसरों के नारे पर चलना नहीं है।

रामदास ने कहा—यही तो मेरा कहना है। हम इसके अलावा जी भी तो नहीं सकते।

सरदार बोला—पर फिर भी हम जानते हैं कि हम लोगों में जो हिन्दू हैं, उनमें हिन्दुई और मुसलमानों में मुसलमानी के ख्याल फैल चुके हैं, यह हमारे लिये खतरनाक है।

मुस्लिम लीग की ओर झुकावयुक्त उस चोर ने कहा—तो क्या हम लोग मुसलमान नहीं हैं, या बाबा रामदास हिन्दू नहीं हैं।

सरदार ने कुछ तैश में कहा—क्यों नहीं ? हम अपने-अपने धर्म मानते हैं, पर घरों के अन्दर। हम जब अपनी बिरादरी में हैं तो सिवा चोर-भाई के और कुछ नहीं हैं। हम इसमें जब आते हैं तो यह सब छोटा ख्याल छोड़कर आते हैं।

उस लीगी चोर ने कहा—तो क्या हम पाकिस्तान नहीं चाहते ?

सरदार ने कहा—चाहते क्यों नहीं ? यहाँ क्या बिगड़ता है ? पाकिस्तान रहे तो लूटूँगा, हिन्दुस्तान रहे तो लूटूँगा।

किसी ने कुछ नहीं कहा। सब ने सिर हिलाकर सरदार के मसलहत भरे वाक्यों का समर्थन किया। सरदार बोला—पर फिर भी इसमें तास्सुब फैल चुका है। इसलिये मेरा यह प्रस्ताव है कि इसको दूर करने के लिये एक काम किया जाय। हममें से जो हिन्दू हैं, वे जाकर किसी हिन्दू को लूट लावें और जो मुसलमान हैं, वे किसी मुसलमान को लूट लावें। फिर

दोनों के रुपये इकट्ठे कर सत्यनारायण की कथा और मौलूद शरीफ करवाएँ और सब गले मिलें, तभी यह कारिख धुलेगी। अभी जल्दी ही रोजगार का मौका आने वाला है, लाखों के वारे-न्यारे हो जायेंगे, हमें उसके पहले ही इस तरह हाथ साफ कर अपना दिल साफ कर लेना चाहिए।

सबने इस पर सम्मति दी। सरदार ने बताया—चूँकि इस गिरोह में हिन्दू कम हैं, इसलिये उनको आसान काम दिया जायगा और मुसल-मानों को कुछ मुश्किल काम दिया जायगा।

यह तय हुआ कि सरदार ही कामों को तय करेंगे। सब लोग बड़ी खुशी से अपने-अपने घर गये। सरदार और रामदास का कोई घर नहीं था, वे उसी जंगल में रहते थे। वे भी अपने स्थान में चले गये।

सरदार को बड़ी खुशी थी कि उसने अपने डूबते हुए गिरोह को बचा लिया।

१२

हिन्दुओं में इन दिनों पुरोहितजी का नाम सबसे अधिक हो रहा था। इसलिये सरदार ने यह तय किया कि पुरोहितजी के घर में हिन्दू चोर जायँ। इस पर एक हिन्दू चोर ने कहा—उसके यहाँ क्या माल धरा है? वह तो खुद ही भिखमंगा है।

सरदार ने कहा—इसकी कोई परवाह नहीं। कोई माल के लिये थोड़े ही भेजे जा रहे हो। तुम लोग अगर उनकी रामनामी और दो-चार लोटा उठा लाओ, तो हमारा काम बन जायगा। हमें तो एक दृष्टान्त कायम करना है।...

रामदास हिन्दुओं की टुकड़ी का नेता बनाया गया था। बोला—सो तुम निसाखातिर रहो सरदार, जो कुछ पाऊँगा सब ले आऊँगा।

चोरों ने जाकर अँधेरे में पुरोहित जी के घर के इर्द-गिर्द पड़ाव डाला, याने छिप गये। उनका मतलब यह था कि जब रात अधिक हो तो घर में घुसा जाय।

जब रात काफी हो गई, तो चोरों ने देखा कि दो-तीन आदमी मकान के इर्द-गिर्द सन्देहजनक रूप से फिर रहे हैं। इसी इलाके में चोरों का एक दूसरा गिरोह भी था। इस गिरोह के साथ रहीम वाले गिरोह की ऐसी लाग-डाँट थी कि एक दूसरे से बहुत जलते थे। उस गिरोह के सरदार का नाम करीम था। कहते हैं कि पहले करीम और रहीम का गिरोह एक ही था। दोनों शायद जेल में भी पहली बार एक साथ गये थे। पर वहीं शायद दोनों में कुछ झगड़ा हो गया और तब से चोरों में दो पार्टियाँ हो गई थीं।

रामदास बूढ़ा होने पर भी फुर्तीला था। उसकी आँख भी तेज थी। उसने अपने साथियों से धीरे से कहा—मालूम होता है करीम वाले आ गये।

सब लोग साँस रोक कर देखने लगे कि करीम वाले क्या करते हैं तथा कहाँ जाते हैं?

उधर तीन आदमी थे, तीनों नौजवान। तीनों ने मुंह पर कुछ कपड़ा-सा बाँध रक्खा था जिससे यह जानना असम्भव था कि वे कौन हैं, नहीं तो रामदास करीम के गिरोह के सब आदमियों को करीब-करीब पहचानता था और बता सकता था कि ये कौन लोग हैं। वे दूर से देखने लगे कि ये तीन आदमी क्या कर रहे हैं?

इन तीनों ने एक सुनसान जगह देखकर अपने सारे कपड़े जूता आदि उतार डाले, फिर हाथ में कुछ लिये हुए आगे बढ़े। जहाँ इन्होंने कपड़ा रखा था वहाँ से पुरोहित जी का घर डेढ़ फर्लाङ्ग पड़ता था।

ज्योंही ये तीनों आदमी कपड़े, जूते उतार कर गाँव की तरफ बढ़े, त्योंही रामदास ने अपने साथियों से कहा—जल्दी से इन्होंने जो कुछ

कपड़े उतार रखे हैं उन सबको ले लो।

तदनुसार ऐसा ही किया गया। देखा गया कि जूते और कपड़े मिलाकर दो-तीन सौ के सामान थे। जेब टटोलने पर सौ के करीब नकद रुपये थे, सिगरेट, दियासलाई, रूमाल और दो जेबी घड़ियाँ भी मिल गईं। रामदास ने गालियाँ देते हुए कहा—करीम वाले आजकल खूब मजा कर रहे हैं, साले इनकी बिटिया को यह करूँ, आजकल घड़ी बाँध कर चोरी करने चलते हैं।

रामदास ने दो साथियों से कहा कि तुम लोग यह सामान लेकर रवाना हो जाओ। अब हम आगे जो होगा, सो देखते हैं।

रामदास की आज्ञा पाकर दो व्यक्ति चले गये। बाकी तीन रहे। अब ये लोग आँख बचाकर दूर रहते हुए उन तीनों के पीछे चलने लगे। उन्होंने दूर से देखा कि वे तीनों आदमी पुरोहित जी के टट्टर के पास जाकर दबक गये, शायद आवाज सुनते रहे। जब देर तक कोई आवाज नहीं सुनाई पड़ी तो तीनों धीरे से उठे और जल्दी में जेब टटोलने लगे।

रामदास दूर ही दूर खड़ा यह तमाशा देखता रहा। उसने साथियों से चुपके से कहा—शायद सेंध का लोहा खोज रहे हैं, शायद सेंध डालेंगे।

पर ये लोग सेंध का लोहा नहीं खोज रहे थे, ये खोज रहे थे दियासलाई। रामदास का यह अनुमान गलत था कि ये करीम वाले थे। ये लोग तो पुरोहित जी की छप्पर में आग लगाने आये हुए थे, पर दियासलाई होती तो मिलती, वे तो भूलकर दियासलाई वहीं पर छोड़ आये थे जहाँ कपड़े उतारे थे।

टट्टर के पास खड़े होकर वे तीनों बनियाइन की जेब टटोलकर हार गये। फिर उन्होंने आपस में कुछ सलाह की। दो आदमी वहीं अँधेरे में दबक कर रह गये और एक आदमी उधर चला, जिधर कपड़े उतार रखे

थे। इधर रामदास ने भी अपना कर्तव्य तय कर लिया।

वह आदमी उस जगह पर पहुँचा जहाँ कपड़े उतारे गये थे, पर वहाँ कुछ भी न देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने समझा कि शायद जगह भूल गया है, इसलिये इधर-उधर ताकने लगा। वह देख ही रहा था कि रामदास और उसके दो आदमी उस पर टूट पड़े और वह कुछ बोल भी नहीं पाया और वहीं पर ढेर हो गया। क्योंकि रामदास ने उसकी पीठ पर, मुँह पर जहाँ जहाँ मौका लगा, छूरे से वार किया।

करीम वालों के विरुद्ध रहीम वालों का इतना विद्वेष था कि वे एक दूसरे के खून के लिये सब कुछ कर सकते थे।

रामदास ने जब देखा कि एक करीम वाला ढेर हो गया तो उसने सोचा कि बाकी दो को कैसे हैरान किया जाय। रामदास का दिमाग बहुत जल्दी काम करता था। कई माने में वह सरदार रहीम से भी अधिक क्षिप्र-बुद्धि था। वह एकाएक हँसा। उसके दिमाग में एक बहुत अच्छा ख्याल आया। उसने अपने साथियों से कहा कि इस मुर्दे को जहाँ का तहाँ छोड़ दो। उसने अपना छुरा भी वहीं छोड़ दिया। फिर उसने अपने साथियों से कहा कि कम से कम दो सौ ढेले इकट्ठे कर लो।

पास ही एक खंडहर-सा था, उसमें से सैकड़ों ढेले इकट्ठे हो गये। फिर तीनों उन ढेलों को लेकर पुरोहित जी के टट्टर के जितने करीब बिना किसी खतरे के तथा उन दो करीम वालों को चौकन्ना किये बगैर जा सकते थे गये। फिर रामदास के हिदायत के अनुसार तीनों मिलकर बड़े जोरों से उस टट्टर के पास जहाँ वे कथित करीम वाले छिपे थे, वहाँ ढेला मारने लगे और बड़े जोर से चिल्लाने लगे—चोर, चोर, चोर।

गाँव वाले कुछ चौकन्ने तो रहते ही थे, वे एकदम दौड़ पड़े। अब वे दो करीम वाले यह समझे कि वे पकड़े जा रहे हैं, इसलिये वे उस तरफ भागे जिधर उनके कपड़े रखे हुए थे। पीछे पीछे गाँव वाले भी भागे। वे उस लाश तक पहुँचे ही थे कि पकड़ लिये गये।

इधर रामदास ने जो गाँव वालों को उधर भागते हुए देखा तो जगह खाली पाकर पुरोहित जी जहाँ रहते थे, वहाँ घुस पड़े, और वहाँ जो कुछ भी मिला उन सबको बाँधकर चलते बने।

अगले दिन सबेरे पुलिस आई और उन दो आदमियों को लाश के साथ थाने ले गई। गाँव वाले इसका कोई अर्थ ही न लगा पाये कि कैसे क्या हुआ। पर इतना तो सभी समझ गये कि पुरोहित जी पर किसी तरीके का हमला था। लोगों ने कहा कि चोर लोग पुरोहित जी का सब सामान तो ले ही गये, साथ ही शायद आग लगाना चाहते थे, पर पुरोहित जी के आध्यात्मिक तेज के कारण एक तो मर गया और दो पकड़ लिये गये। थानेदार ने यह सिद्ध किया कि चोर लोग चोरी के माल के बँटवारे पर लड़ पड़े, एक मारा गया, दो पकड़े गये और बाकी भाग गये।

३

उधर जो लोग मुसलमानों के यहाँ चोरी करने के लिये पहुँचे, उनका नेतृत्व स्वयं रहीम कर रहा था। जैसे हिन्दुओं के लिये यह तय हुआ था कि उनमें सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर में चोरी की जाय, उसी प्रकार से मुसलमान चोरों के लिये यह तय हुआ कि मीर बन्देअली के घर में चोरी की जाय, क्योंकि इन दिनों लीगी नेता की हैसियत से वह स्थानीय लोगों में सबसे आगे आ रहा था।

मीर बन्देअली का घर एक गढ़ की तरह सुरक्षित था। वह यों ही बहुत बड़े जमींदारों में गिना जाता था, इसलिये स्वाभाविक रूप से उसका घर एक गढ़ के रूप में था। फिर भी रहीम इस बात को मानता था कि चोरों के लिये कुछ असम्भव नहीं है। तदनुसार उसने पहले ही सब तैयारी कर ली थी। रहीम चाहता था कि हिन्दू टुकड़ी जो कुछ लाये, मुसलमान टुकड़ी उससे अधिक ले आवे। वह यह दिखलाना चाहता था कि चोरों का आदर्श साम्प्रदायिकता नहीं, बल्कि विश्वबन्धुत्व है।

इस मसले में भाग्य ने भी उसका साथ दिया। अब चोरों को यह बिल्कुल नहीं मालूम था कि मीर बन्देअली ही इन दिनों लीग का गुप्त कोषाध्यक्ष है और जो हमला होने वाला था उसके लिये सारा खर्च उसी के मकान से होता है। भविष्य-हमले की तैयारी में उसके घर में सैकड़ों बोरे चावल, दाल और रुपये जमा थे। पता नहीं ये रुपये और चावल कहाँ से आये थे? स्थानीय मुसलमानों में तो इतना दम नहीं था कि इतने रुपये जमा करें। कहते हैं कि बुखारे के उस मुसलमान ने बहुत रुपये दिये थे और उसी ने चावल भी मँगवा दिये थे।

रहीम और उसके साथी सेंध फोड़कर जिस कमरे में घुसे, उसमें किसी ने नोट और रुपये की थैलियों को मानो उन्हीं के लिये सजाकर रख दिया था। उन्होंने और किसी तरफ नहीं देखा, उन नोटों और रुपयों को समेट लिया। फिर वे अपने गुप्त स्थान की ओर चल दिये। वे मकान से यहाँ तक कि गाँव से भी बहुत मजे में निकल गये। फिर वे बाग में पहुँचे, वहाँ उनके मन में कुछ पाप आ गया। इन लोगों ने सोचा कि अगर हम इतने रुपये वहाँ ले गये तो सबको हिस्सा देना पड़ेगा। रुपयों का मोटा हिसाब किया तो मालूम हुआ कि एक लाख के करीब थे। इसलिये उन्होंने साम्प्रदायिक-दृष्टि से नहीं बल्कि स्वार्थ-दृष्टि से यह तय किया कि चार-पाँच हजार रुपये ले चला जाय, बाकी यहीं पर कहीं दबा रखा जाय जो बाद को ले जाया जायगा।

अब जिस समय ये लोग रुपये का हिसाब लगा रहे थे उस समय शकूर का दल भी वहीं कहीं पड़ा था। उन लोगों ने देखा तो पहले तो समझ नहीं पाया कि ये कौन लोग हैं, पर ध्यान से इनको देखा तो वे समझे कि असली मामला क्या है? वे समझ गये कि यह चोरों का गिरोह है और कहीं से पड़ाव मारकर आया है। शकूर के दल को रुपयों की बहुत जरूरत थी। उन्होंने जो देखा कि इस प्रकार ये रुपये लिये जा रहे हैं तो उन्होंने सोचा कि किसी प्रकार इनसे रुपया छीना जाय।

शकूर के दल के पास कुछ करौलियाँ और एक तोड़ेदार बन्दूक भी थी। इस दल पर काबू पाने के लिये इतना काफी था। शकूर ने देखा कि ये लोग जाने ही वाले हैं तो उसने आड़ में रहकर तोड़ेदार बन्दूक दाग दी।

फौरन चोर घबड़ा कर भागे, पर उनमें से सभी इतने तजर्बेकार थे कि भागते समय भी एक-एक थैली लेकर भागे। इस प्रकार वे आधा धन तो ले ही गये। उनमें से दो-एक के शरीर में शायद एकाध छर्रा भी लगा था, पर इतने से वे चूकनेवाले नहीं थे।

इस प्रकार जब ये लोग भाग गये तो बाकी धन पर शकूर ने कब्जा कर लिया।

चोर लोग यों तो किसी संस्कार के पाबन्द नहीं होते, पर इस प्रकार उनके हाथों में इतना धन आकर निकल गया, यहाँ तक कि जान पर आ बनी, उन्होंने इसका कारण यह लगाया कि वे अपने साथियों को धोखा देना चाहते थे, खासकर जब कि वे अपनी समझ से इतने पवित्र कार्य में भेजे गये थे। रहीम ने अपने गुप्त स्थान पर पहुँचते-पहुँचते अपने मुसलमान साथियों से कह भी दिया—देखो हम लोगों के मन में शैतान आ गया था, तभी रुपये आकर भी गये, इसलिये हमें कभी एक दूसरे को धोखा न देना चाहिए।

अब इसके बाद चोरों में किस तरह बँटवारा हुआ इसे बताने की जरूरत नहीं है। सबके हिस्से में इतने रुपये आये जितने कभी नहीं आये थे। रामदास की सारी चालाकी को किसी ने नहीं पूछा। रामदास स्वयं भी खुश था कि इस तरह रुपये मिले।

इधर तो यह हुआ। उधर सबेरा होते-होते लीग के नेताओं में कोहराम मच गया। खास पुरवा की घटना को कोई समझ नहीं सका कि क्या हुआ। पछाँह से आये हुए उस मुसलमान नेता ने कहा—मुझसे कल दिन में तीन मुसलमान नौजवान पुरोहित के मकान में आग लगाने

की इजाजत माँगने आये थे। सच तो यह है कि वे कई दिन से पीछे पड़े हुए थे। फिर मैंने उकता कर इजाजत दी। अब सुनता हूँ कि एक मारा हुआ पाया गया, और दो गिरफ्तार हो गये।

एक दूसरे लीगी नेता ने कहा—मैं तो उनसे थाने में मिल भी आया। वे कहते हैं कि तीसरा आदमी दियासलाई लाने के लिये भेजा गया था, वह कैसे मर गया यह वे नहीं बता सकते।

तरह-तरह के अनुमान किये गये, पर कुछ समझ में नहीं आया। लोगों को सबसे ज्यादा गम उस समय हुआ जब उन्हें मालूम हुआ कि हमले के लिये जो एक लाख रुपये पछाँह से आए हुए थे वे चोरी में चले गये। खबर पाकर सब लीगी नेता मीर बन्देअली के घर पहुँचे और मौका देखा। पुलीस भी आयी, पर कुछ समझ में नहीं आया। कुछ लोग तो मीर बन्देअली पर ही शक करने लगे और मीर बन्देअली भी समझा कि लोग उस पर शक कर रहे हैं। वह स्वभाव से अकड़बाज खाँ था और सम्भव है कि इसी को लेकर लीग के लोगों में दो टुकड़े हो जाते, पर बुखारे के उस मुसलमान ने सबको समझाते हुए कहा—यह सब शैतान की कार्रवाई है। कोई भी अच्छा काम उठाया जाता है, तो उसमें शैतान हायल होता है। हाँ, यह शैतान का ही काम है, इसमें शक नहीं।

लोगों ने पूछा—शैतान कौन ?

तो उसने कहा—यह सब हिन्दू महासभा का काम है। हम तो खासपुरवा के वाकया में भी उसी का हाथ देखते हैं और रुपये चुराने में भी उसी का हाथ देखते हैं।

मीर बन्देअली को यह सिद्धान्त बहुत पसन्द था, उसने कहा—यही होगा, नहीं तो मेरे घर पर चोरी ? जो आज तक कभी नहीं हुई, वही हुई ?—फिर उसने सोचकर कहा—आप लोगों में से किसी को मेरे किसी आदमी पर शक तो नहीं है।

लोगों को तो उसी पर शक था, पर फिर एक बार बुखारा का वह

मुसलमान बीच में पड़ा और बोला—तोबा तोबा, फिर रुपयों की क्या फिक्र है ? जहाँ से उतने आये थे वहाँ से फिर उतने आयेंगे।

एक ने कहा—पर काम तो जल्दी होना है न ?

बुखारे के पीर ने कहा—तो क्या ? रुपये शाम तक आ सकते हैं। आप लोग रुपयों की न सोचें और अपना काम करें।

इस प्रकार किसी तरह एका कायम रहा और काम चलने लगा। पर सभी को यह भय हुआ कि हिन्दुओं में कोई संगठन भीतर-भीतर जोरों के साथ काम कर रहा है। इसका फल यह हुआ कि वे लोग और भी मुस्तैदी के साथ अपनी तैयारियों को पूरी करने लगे। आम मुसलमानों में यह फैला दिया गया कि हिन्दुओं ने ही पहले हमला कर दिया, उन्होंने एक मुसलमान को मार डाला और एक लाख रुपये सेंध फुड़वाकर चुरवा लिये। काना-फूसी से लोगों में यह भी प्रचार कर दिया गया कि यद्यपि देखने में पुरोहित जी इन सब बातों से बिलकुल ऊपर हैं, पर वे ही इन सब लोगों के नेता हैं।

१४

दशरथ बाबू ने बहुत दिनों से अपनी कन्या से अच्छी तरह बात भी नहीं की थी। पर एक दिन एकाएक वे उस समय पहुँचे जिस समय रेनुका रूपवती के कमरे में थी।

दशरथ बाबू ने कुछ देर तक तो कुछ भी नहीं कहा, फिर एकाएक पुत्री से बोले—बेटी, मैंने तुम्हारी शादी तय कर ली है।

पहले तो रेनुका यही समझी कि परिमल के साथ शादी तय हो गई, इसलिये वह खिल उठी, पर अगले ही क्षण उसे यह याद आ गयी कि पिता जी तो वहाँ से लड़कर आये थे। वह समझ गई कि किसी और से शादी की बात तय हुई है। यह सोचते ही उसकी अजीब हालत हुई और वह इतना ही बोल सकी—शादी ?

दशरथ बाबू समझ गये कि पुत्री घबड़ा गई कि न मालूम किस बेहूदे से पिता जी शादी तय कर आये, इसलिये मानो सान्त्वना देते हुए बोले—लड़का एम० ए० पास है, संस्कृति की भी कोई ऊँची डिग्री है, कुल का अच्छा है।

रेनुका के दिमाग में इस समय इतने विचार एक साथ दौड़ रहे थे कि वह किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो रही थी। फिर शरीफों में शिक्षा जब होती भी है तो इस प्रकार की होती है कि जीवन में जो सबसे महत्वपूर्ण निर्णय है, याने अपने जीवन-सहचर या जीवन-सहचरी ढूँढ़ने का प्रसंग है, उस सम्बन्ध में कुछ न कहना या स्पष्टरूप से कुछ न कहना ही शराफत समझी जाती है। इसी को सभ्यता और संस्कृति कहते हैं, इस कारण रेनुका चुप रह गई, यद्यपि वह कहना बहुत कुछ चाहती थी।

दशरथ बाबू ने सोचा कि कहीं बाद को यह कहने की नौबत न आये कि उन्होंने किसी मामले में लड़की से छल किया, इसलियें उन्होंने बता दिया—लड़का नाम को ही दुआह है, जब उसकी दुलहिन मरी तो उसकी उम्र आठ या नौ साल की थी।

रेनुका फिर भी कुछ नहीं बोली। तब दशरथ बाबू ने कहा—तुम तो उसे पहचानती हो।

रेनुका को शादी के सम्बन्ध में कोई भी कौतूहल नहीं था। सच तो यह है कि उसने मन ही मन यह तय कर लिया था कि परिमल के साथ जो प्रतिज्ञा की गई थी उसे नहीं तोड़ना है, फिर भी जब बाबू जी ने यह कहा कि तुम तो उसे पहचानती हो तो उसके मुँह से बरबस निकल पड़ा—कौन?—जब यह प्रश्न निकल पड़ा तब उसे ज्ञात हुआ कि यह प्रश्न कितना निरर्थक था। साथ ही उसे लज्जा भी मालूम हुई, पर अब तो प्रश्न किया जा चुका था।

दशरथ बाबू बोले—वही सुधांशु जिनका ननिहाल इसी गाँव में है,

बहुत दिनों तक इस गाँव में रहा है और हमारे यहाँ भी आता-जाता रहा है।

रूपवती ने अब तक कुछ नहीं कहा था, वह एकाएक बोली—अच्छा वह लड़का! मुझे याद आ गई, गोरा-गोरा सा, दुबला-सा है।

—अब वह दुबला नहीं है, हृष्ट-पुष्ट हो गया है।

रूपवती बोली—उनका तो वंश बहुत उच्च है। उसके पिता जी की भारतीय पंडित समाज में भी गिनती होती है।

दशरथ बाबू ने कहा—हाँ वही। बड़ा अच्छा लड़का है। एक स्कूल खोलने का विचार रखता है, तो तुम्हारे नाम से खुलवा दूँगा।

रूपवती कन्या की तरफ देख रही थी, बोली—देखो बेटी जीवन में जिस बात को हम सबसे ज्यादा चाहते हैं और जिसके हो जाने से जीवन शायद सबसे ज्यादा सुखी होता, वह अक्सर नहीं होती, इसलिये हमें उसके बाद ही जो सर्वोत्तम बात है उसी को लेकर जीवन के मार्ग में चल पड़ना होता है। इसी प्रकार जब सबसे अच्छा हाथ से निकल जाय, उसके बाद जो सबसे अच्छा है उसे ग्रहण कर हमें सुखी होना चाहिए। इसी प्रकार जीवन में पगपग पर समझौता करना पड़ता है। मैं समझती हूँ कि परिमल बहुत अच्छा पात्र है पर जब वह नहीं मिलेगा तो यह थोड़े ही है कि जीवन वहीं पर रुक जाय, मैं समझती हूँ, सुधांशु एक अच्छा पात्र है।

फिर भी रेनुका कुछ नहीं बोली—वह माँ की चादर के एक अंश को उँगली से खुरचती रही। उसका सिर नीचा था, वह क्या सोच रही थी यह तो वही जाने, पर यह स्पष्ट था कि वह सहसा किसी निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ थी।

रूपवती पति से बोली—तुमने इतनी जल्दी सब तय कर लिया कि किसी को कुछ सोचने का मौका ही नहीं मिला। लड़की सयानी है, सोचने के लिये कुछ समय दो। क्यों बेटी है न यही बात?

रेनुका ने चादर खुरचना बन्द कर दिया और—हाँ, कहकर करीब-करीब रुआँसी अवस्था में कमरे से निकल गई।

दशरथ बाबू ने उसे सुनाते हुए कहा—पर अब ज्यादा ठहरना नहीं है, या तो परिमल राजी हो जाय, या सुधांशु से शादी हो जाय।

रेनुका ने इसके अर्थ को समझ लिया, सचमुच उसे परिमल पर बड़ा गुस्सा आ रहा था कि जरा दूर तो घर है पर न तो पत्र ही देता है और न आकर मिल ही जाता है। उसने माता की बातों पर विचार किया तो वह और भी घपले में पड़ गई, उसके सामने तो इस समय सबसे अच्छा और उसके बाद के नम्बर में सबसे अच्छे का प्रश्न नहीं था। उसके सामने तो एक ही अच्छा था। वह था परिमल। बाकी सुधांशु या और कोई उसकी आँखों में अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं था, उनका तो कोई अस्तित्व ही नहीं था। माँ के उपदेश उसे एक व्यंग के रूप में ज्ञात होने लगे। वे उसे कर्तव्य-निर्णय में सहायक सिद्ध न होकर और भी उद्भ्रान्त कर देने वाले प्रतीत हुए।

बल्कि उसे पिता की बातें कुछ अधिक संगत ज्ञात हुईं। पिता का कहना था कि विवाह करो, इससे या उससे, अगर वह नहीं करता है तो इससे करो। पर ये संगत बातें भी उसे अजीब मालूम हुईं। वह अपने कमरे में पहुँच कर परिमल की तस्वीर को ध्यान से देखने लगी। जितना ही वह उसे देखने लगी, उतना ही उसे निश्चय होने लगा कि बाबू जी तथा माता जी दोनों असलियत से कोसों दूर थे। एक में निराशा और तर्क दोनों मिलकर अजीब रूप में प्रकट हुए थे, दूसरे में तर्क जीवन से संस्पर्श-विहीन हो गया था। उसे इनमें से किसी की भी जरूरत नहीं थी। उसे तो जीवन चाहिए, भरपूर और लबरेज जीवन, चाहे उसमें तर्क भले ही न हो। तर्क को लेकर क्या करना है, जीवन कोई नहर नहीं है जो एक बताये हुए मार्ग पर चले और जब चाहे तब धीमा पड़ जाय और जब चाहे तब गहरा हो जाय। नहीं, जीवन तो एक प्राकृतिक नदी है,

कहीं वह चट्टानी जमीन पर बहती है, तो कहीं पहाड़ से दौड़ती चली आती है तो कहीं समतल में धीरे-धीरे इठलाती हुई सरकती चलती है।

वह परिमल का फोटो देखते-देखते इतनी तन्मय हो गई कि उसे देश-काल का ज्ञान नहीं रहा। उसे यह बात भूल गई कि एक बहुत बड़ा फैसला करना है। ऐसा फैसला जिसके कारण शायद उसे माता-पिता को छोड़ना पड़े। बचपन से सुपरिचित इस घर-गाँव को छोड़ना पड़े। सर्वस्व होम कर आग में कूदना पड़े। पर कहाँ ? परमिल की तरफ से तो कुछ बात ही नहीं आती है। उसके इशारे पर और वह यदि साथ रहे तो वह ज्वालामुखी के मुँह में कूद सकती है, सागर तैर सकती है, असाध्य साध्य कर सकती है। पर उसकी तरफ से कुछ इशारा भी तो हो। नहीं तो वह किसके बूते पर स्नेहमय पिता जी को स्नेहमयी माता-जी को, इस घर को समाज को छोड़ेगी ?

उसने अपनी सहजात बुद्धि से समझ लिया कि अब देर करने का समय नहीं है, अब कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। यदि परिमल उसके अर्घ्य को स्वीकार नहीं करता, यदि वह उसके प्रेम को पैरों से ठुकरा देता है, तो फिर उसे काहे की परवाह ? फिर वह सुधांशु क्यों एक कुत्ते पर भी चढ़ा दी जाय तो उसे क्या परवाह ? उस हालत में जब कि वह जान ले कि परमिल नहीं मिलेगा, तो वह बाबू जी और माता जी की तृप्ति और सुख के लिये क्यों न जिस किसी से विवाह कर ले। उसमें कम से कम बाबू जी और माता जी को कष्ट तो न होगा। उसमें कम से कम उन्हें यह तृप्ति तो रहेगी कि लाड़ली बेटी ने उनकी आज्ञा मानी।

इसी प्रकार वह भवँर में फँसी हुई कागज की नाव की तरह कभी ऊपर आती फिर नीचे चली जाती, पर ऊपर जाती हो या नीचे जाती हो वह बराबर भवँर में ही पड़ी रही। इसी प्रकार की मानसिक अवस्था में उसके मन में यह विचार आया कि अब तो सब डूब ही रहा है, अब वह एक बार खुद ही जाकर परिमल से मिल क्यों न ले।

इसी विचार से वह उठी मानो उसे एक नवजीवन प्राप्त हुआ है। यह जुए का एक दाँव था, एक तरफ स्वर्ग था और दूसरी तरफ रसातल।

१५

अभी संध्या हुई ही थी कि रेनुका पैदल चलती हुई परिमल के गाँव में पहुँची। इस प्रकार ऐसे समय उसने कभी भी अकेली यात्रा नहीं की थी। न मोटर थी, न कोई साथ में था। फिर समय भी शाम का था।

उसने घर से निकलते समय अपने चेहरे को आइने में भी नहीं देखा था, न बाल सँवारे थे, न पाउडर लगाया था जैसी की उसकी श्रेणी की सब स्त्रियों की आदत होती है। आज वह एक दुलहिन की तरह नहीं जा रही थी, बल्कि वह एक प्राप्त-वयस्क स्त्री की तरह जा रही थी, जो जीवन की गम्भीर समस्या के समाधान के लिये यात्रा कर रही थी। वह अभिसारिका के रूप में नहीं जा रही थी, बल्कि एक कैदिन के रूप में जा रही थी जो अपना फैसला सुनने जा रही है।

वह इसके पहले भी दो-एक बार इस गाँव में परिमल के घर पर आई थी, पर ऐसे मौके पर वह हमेशा परिमल के साथ या किसी और के साथ किसी सवारी पर आई थी।

उसे यह भी सन्देह था कि वह घर ठीक-ठीक पहचान पायेगी या नहीं, पर फिर भी एक अदम्य विश्वास से परिचालित होकर वह चली जा रही थी, चली जा रही थी। उसे कोई चीज पीछे नहीं बुला रही थी, वह बिल्कुल सब तरह से आत्मसमर्पण कर चली जा रही थी।

सौभाग्य से परिमल का घर भी मिल गया और परिमल भी मिल गया। परिमल को देखते ही रेनुका इस प्रकार दौड़ पड़ी जैसे नदी नीची जमीन को देखकर दौड़ पड़ती है, पर परिमल ने यों तो ऊपर से उसका स्वागत ही किया, पर उसके चेहरे पर यह साफ झलक गया कि

वह कुछ परेशान हो गया है। यह परेशानी कई कारणों से थी। घर पर इस समय जो कुछ बीत रहा था, उसको देखते हुए परिमल यह समझता था कि उसे इस बात का कोई हक नहीं है कि एक भी मुहूर्त हल्केपन में व्यतीत करे। परिमल को जो शिक्षा मिली थी, और परिमल को वही शिक्षा मिली थी जो मामूली तरीके से सबको मिलती है उसमें प्रेम तथा उसके साथ की सब बातें हल्केपन में ही शामिल हैं। दूसरी बात जिससे परिमल एक तरह से झेंप रहा था वह यह था कि घर के सभी लोग जानते थे कि रेनुका के पिता पुरोहित जी से लड़कर गये हैं और रुपये दिखाकर अपमान कर गये हैं, फिर घर के कुछ लोगों ने रेनुका को आते देख लिया था। इसलिये परिमल कुछ असमजस में था।

यद्यपि रेनुका एक हद तक सुध-बुध हीन थी, पर फिर भी उसकी यह सुध-बुध-हीनता अन्य पारिपार्श्विक परिस्थितियों के सम्बन्ध में थी, न कि परिमल के सम्बन्ध में। सच तो यह है कि वह अन्य परिस्थितियों के प्रति जितनी ही उदासीन थी, परिमल के सम्बन्ध में वह उतनी ही सावधान थी। वह उसकी प्रत्येक गतिविधि को ध्यान से देख रही थी और उसे आश्चर्य हुआ कि यह परिमल जैसे वह परिमल नहीं है। कहाँ वह प्रेममय परिमल और कहाँ यह करीब-करीब अन्यमनस्क और उदासीन परिमल। परिमल के चेहरे में उसने अपने भविष्य का जो चित्र देखा, वह कुछ विशेष मनोज्ञ नहीं था।

परिमल ने ही पहले बात की—मैं तो फुर्सत पाते ही आता, तुमने क्यों कष्ट किया ? फिर थोड़ी देर रुककर उसने कहा—कोई साथ में आया है ?

रेनुका बोली—नहीं, कोई साथ में नहीं है।

परिमल ने आश्चर्य के साथ कहा—कोई साथ में नहीं आया और तुम सन्ध्या समय इतना रास्ता अकेली चली आई ?

—हाँ, क्या करती ? बाबू जी की सख्त मुमानियत है कि कहीं जाऊँ।

—ठीक तो है, आजकल जमाना ही ऐसा हो रहा है।

रेनुका को परिमल की बातों में कुछ बेगानगी की झलक मिली अपनत्व का अभाव। बोली—क्या करती ? अब पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं आया, तो मुहम्मद को ही पहाड़ के पास जाना पड़ा।

दोनों कुछ देर चुप रहे। फिर परिमल ने सफाई-सी देते हुए कहा—बराबर खबर मिल रही है कि पिता जी का जीवन खतरे में है। परसों रात को कुछ मुसलमान आये थे, उन लोगों ने जो कुछ भी हाथ लगा चुरा लिया, साथ ही पिता जी जहाँ सोये हुए थे, वहाँ आग लगाने वाले ही थे कि किसी ने देखकर हल्ला कर दिया। इस तरह विपत्ति तो टल गई, पर अब पुलिस वालों का कहना है कि जो मुसलमान मारा गया था, उसे मारने में मेरा हाथ है।

थोड़ी देर के लिये रेनुका भूल गई कि वह किस उद्देश्य से यहाँ पर आई थी। उसने कुछ अस्पष्ट रूप से सुना था कि खासपुरवा में कोई चोर आया था, उनमें से एक मरा मिला। पर उसने यह नहीं सुना था कि इस सम्बन्ध में किसी पर सन्देह है। उसने पूछा—क्या कोई मरा था ?

—हाँ, एक आदमी मरा था।

—हिन्दू या मुसलमान।

—मुसलमान ! तभी तो पुलिसवाले शक करते हैं।

रेनुका ने परिमल के चेहरे की ओर ध्यान से देखा। बोली—तो क्या होगा ?

परिमल हँसा, बोला—होना क्या है ? मैंने तो कह दिया कि मुझे कुछ नहीं मालूम। पर दारोगा यही रट लगाये हैं कि आखिर किसी ने मारा होगा और हिन्दू ने ही मारा होगा, आपको जरूर पता है।

—फिर ?

—फिर क्या ? परेशान कर रहे हैं। आज सबेरे तलाशी ले गये। यहाँ क्या धरा था, पर फिर भी बाप-दादों के जमाने की एकाध तलवार रखी थी, उन्हें उठा ले गये।—परिमल के तरुण चेहरे पर अत्यन्त परेशानी के लक्षण थे। कुछ देर रुक कर बोला—केवल मुसलमान ही नहीं, हिन्दू भी समझते हैं कि मैंने ही उस आदमी को मारा। अवश्य इस कारण ये मुझे बहुत बहादुर समझ रहे हैं। मुझे यह बात बिल्कुल पसन्द नहीं है। कुछ तो प्राइवेट में यह पूछ भी चुके कि मैंने ही यह हत्या की है या नहीं और जब मैंने बताया कि नहीं तो बोले कि बस मैं जानना चाहता था, मैं जान गया, स्वीकार करने की कोई जरूरत नहीं।

रेनुका को यह सुनकर गुदगुदी-सी मालूम हुई। उसके चेहरे पर की परेशानी के सारे लक्षण दूर हो गये, मधुर हंसती हुई बोली—तब तो बड़ा मजा हुआ।

—देखने वालों को ऐसा ही मालूम होगा, पर इधर पुलिस नाराज है, उधर मुसलमान बदले का नारा दे रहे हैं। इस हत्या के पहले बाबूजी की जान ही पर खतरा था, अब मेरे सर की भी कीमत बढ़ गई है। कुछ मुसलमान यह समझते हैं कि हम चार भाइयों ने मिलकर उस मुसलमान को मार डाला।

—अच्छा ?

—इसका अर्थ समझती हो न ?

—क्या ?

—इसका अर्थ यह है कि अब हम चारों भाइयों की जान पर आ बनी है। न मालूम कब कहाँ से छुरा लेकर कूद पड़े। छोटा भाई तो बहुत डर गया है। मेरी अजीब परिस्थति है, नाहक को वीर बन गया।

रेनुका का चेहरा शंकित हो गया। बोली—तो अगर ऐसी परिस्थति है तो बाहर कहीं चले क्यों नहीं जाते ?

—चला कैसे जाऊँ ? किसी ने पिता जी से यह प्रस्ताव किया था,

पर वे आगबबूले हो गये, बोले कि मैं तो खेत छोड़ कर भागने वाला नहीं हूँ। ऐसी हालत में जायँ तो कैसे जायँ ? फिर जाने पर भी छुटकारा कहाँ है ? तुमने तो सुना होगा कि क्षितीश बाबू भागकर राजधानी गये थे, पर वे वहीं पर सपरिवार मारे गये।

—हाँ, कुछ मालूम होता है भाग्य भी होता है। नही तो क्षितीश-बाबू राजधानी क्यों गये ? अपनी जान में तो उन्होंने सब सावधानी कर ली थी। पर क्या नतीजा हुआ ?

—हाँ, यही सब सोचकर मैं पिताजी के विचारों को ही ठीक समझता हूँ कि मैदान न छोड़ो, मरना तो एक दिन है ही।

रेनुका बोली—यह साहस निराशावादजन्य साहस है।

—जो चाहे सो कहो, इसमें कुछ विशेष आता-जाता नहीं। सारी परिस्थितियाँ यों हैं—फिर एकाएक जैसे उसे कोई बात याद आ गई, बोला—हाँ, एक बात तो बताया नहीं कि कुछ आशावाद के आसार भी हैं। कुछ अच्छे उपादान भी मौजूद हैं।

—कैसा ?—कौतूहल के साथ रेनुका ने पूछा। उसकी बुझी-सी आँखों में एकाएक रोशनी आ गई।

—कुछ नौजवान मुसलमानों में भी हैं जो प्रतिक्रियावाद के हाथों अस्त्र होने से इन्कार कर रहे हैं।

—हाँ, तुमने तो शकूर की बात बताई थी।

—हाँ, उसका दल बढ़ रहा है, अभी उसके हाथ कुछ रुपये लगे हैं। बहुत बड़ी रकम है।

—डाके से मिला ?—कुछ झिझक के साथ रेनुका ने पूछा, स्पष्ट था कि उसे डाका से घृणा थी।

—नहीं ठीक-ठीक डाका नहीं। चोर चोरी किये जा रहे थे, उसके दल ने उससे छीन लिया।

—पर शकूर ऐसे लोगों की संख्या कितनी होगी ?

—बहुत कम।

इस प्रकार दोनों में देर तक आलोचना हुई। थोड़ी देर आलोचना के बाद रेनुका को यह याद आ गई कि वह किस परिस्थिति में और क्या करने के लिये आई थी। साथ ही उसको यह भी ख्याल हुआ कि परिमल जिस प्रकार की परिस्थिति में है उसमें प्रेम और विवाह की बात अप्रासंगिक है। पर यह बात जितनी भी अप्रासंगिक हो यह तो एक वास्तविकता थी कि दशरथ बाबू उसकी एक दूसरी शादी तय-सी कर चुके थे और उससे बचने का एकमात्र उपाय यही था कि परिमल कुछ तय कर ले, कम से कम एक निर्दिष्ट साफ बात कह दे।

परिमल साम्प्रदायिक परिस्थिति पर एक अच्छा खासा व्याख्यान-सा देने लगा था, पर इधर कुछ मिनटों से रेनुका उसके व्याख्यान पर कोई ध्यान नहीं दे रही थी। परिमल कह रहा था—अजीब परिस्थिति है, कुछ समझ में नहीं आती। हिन्दू जिस देश के हैं, मुसलमान भी उसी देश के हैं, पर फिर भी यह क्या कारण है कि मुसलमान साम्प्रदायिकतावादी है हिन्दू उनके मुकाबिले में कहीं कम साम्प्रदायिकतावादी हैं अब इसके कारण मैं तो यही देखता हूँ कि हिन्दुओं को हिन्दू रूप नुकसान ही है। हिन्दुओं में सब साहसी और आत्मबलिदान में समर्थ लोग क्रांतिकारी या राष्ट्रीय संस्थाओं में हैं, नतीजा यह है कि जब भड़काये हुए मुसलमान हिन्दुओं पर हमला करते हैं, तो वे मारे जाते हैं। अन्तिम रूप से इन बातों का क्या नतीजा होगा यह हम सोचने में असमर्थ हैं, पर···

कहते-कहते परिमल ने यह अनुभव किया कि रेनुका का ध्यान इस तरफ नहीं है और वह बेचैनी से हिल-डुल रही है। उसने एकाएक अपनी उद्दीप्त वाक्य-धारा को रोकते हुए कहा—रेणु, क्या बात है, तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है?

रेनुका के मुँह में कुछ और नहीं आया, जैसे किसी मामले में रंगे हाथों पकड़ी गई है, इस प्रकार सकपका कर बोल उठी—मुझे देर हो रही है।

परिमल ने घड़ी की ओर देखा तो सचमुच उसको आये हुए डेढ़ घंटे से अधिक हो चुके थे। वह लज्जित-सा होकर बोला—मुझे यह याद ही नहीं था कि तुम्हें जाना है और शायद तुम किसी से कहकर नहीं आई ?

—हाँ, कहकर नहीं आई।

परिमल ने जल्दी से उठते हुए कहा—चलो तुम्हें पहुँचा दें, इतनी रात में किसी भी हालत में तुम्हें अकेली तो जाने नहीं दिया जा सकता।

इसके उत्तर में रेनुका उठी नहीं, वह जहाँ की तहाँ पत्थर की भाँति बैठी रही। परिमल को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ, बोला—क्या बात है ?—प्रश्न पूछकर ही उसे उन पत्रों की बात याद आई और इतनी देर तक बातें करने के कारण उसके माथे पर के जो बल चले गये थे, वे फिर आ गये। वह फिर से बैठ गया।

दोनों कुछ देर तक चुप बैठे रहे। यह चुप्पी बड़ी भयंकर थी। कमरे में रखी हुई टाइमपीस की टिक-टिक के अतिरिक्त कुछ नहीं सुनाई पड़ता था और उसके सुनने से दोनों की बेचैनी और बढ़ रही थी न कि घट रही थी। अन्त में रेनुका ही बोली—बाबू जी तुम्हारे यहाँ से हताश होकर मेरी शादी की और कोशिश कर रहे हैं।

इतना कहकर रेनुका शायद इस बात को देखने के लिये ठहर गई कि परिमल पर क्या असर होता है, पर परिमल का चेहरा योंही परेशान था, अगर परेशानी की इन रेखाओं में एक रेखा और बढ़ भी गई हो तो कम से कम वह दिखाई नहीं पड़ी। रेनुका बोली—सुधांशु कुमार को तो तुम जानते होगे, बाबू जी उनसे करीब-करीब मेरी शादी तय कर चुके हैं।

एक क्षण के लिये परिमल के चेहरे में कुछ परिवर्तन हुआ। ऐसा मालूम हुआ वह किसी बात को याद कर रहा है। वह शायद यह याद करने की कोशिश कर रहा था कि सुधांशु कुमार कौन है ? उसने सिर्फ

अस्पष्ट तरीके से हाँ सी एक आवाज की।

रेनुका बोली—इसलिये मैं तुमसे मिलने के लिये उत्सुक थी।

—क्यों ?—परिमल ने इस प्रश्न को ऐसे पूछा मानों उसे बहुत आश्चर्य हो।

रेनुका के चेहरे पर अप्रसन्नता की छाया पड़ी, पर वह तो आज पृथ्वी की तरह सर्वसहा होकर आई थी। बोली—मेरी राय इस शादी में नहीं है।

—ओ !—परिमल ने ऐसे कहा जैसे वह सारी बात समझ गया हो। पर वह इससे अधिक कुछ नहीं बोला।

रेनुका तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी और जितना ही वह उसे देखती थी उतना ही उसके हृदय में एक टीस-सी उठ रही थी। वह तो आज सर्वस्व दाँव पर लगाकर आई थी और यह तैयार होकर आई थी कि सर्वस्व खो सकती है। जब उसने देखा कि परिमल बुद्धू की तरह निर्विकार की तरह बैठा है तो उसने सीधा पूछा—तो क्या कहते हो ?

इस सीधे प्रश्न के सामने परिमल तिलमिला गया, वह केवल इतना ही कह पाया—मैं ?

अब रेनुका भी कुछ आपे से बाहर हो गई। बोली—परिमल, तुम तो ऐसे बातें कर रहे हो मानो तुमसे इन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम तो मुझसे ऐसे बर्ताव कर रहे हो मानो मैं तुमसे इन बातों को पहले ही दफे कर रही हूँ। मैं जानती हूँ किसी भी कारण से हो हम लोगों के पितागण इस सम्बन्ध में एक मत नहीं हो सके, पर हम लोग इस प्रकार के नहीं हैं कि किसी भी बात पर एक नतीजे पर नहीं पहुँच सकतीं। आखिर तुमने हमने जीवन सहचर-सहचरी होने की प्रतिज्ञा की है, उन्होंने नहीं।

परिमल का चेहरा रुआँसा हो चुका था, बोला—पर वैसी प्रतिज्ञा करते समय मैं यह समझता था कि हमारे पिताओं की ओर से कोई

अड़चन न होगी।

रेनुका बोली—पर अब तो अड़चन हो चुकी है पर क्या हम लोग उसे मानने जा रहे हैं? हम लोग चाहें तो इन अड़चनों पर विजय पा सकती हैं।

—पर रेनुका!

—क्या?

—ऐसी हालत में इन बातों का सोचना अच्छा नहीं मालूम देता।

—हाँ, अगर यों मामूली परिस्थिति रहती तो हम लोग प्रतीक्षा करते पर जब कि मेरे सिर पर दूसरी शादी की तलवार लटक रही है, तब हमें जल्दी ही क्या फौरन इस मामले में किसी फैसले पर पहुँचना पड़ेगा।

—मेरी तो राय है कि तुम शादी कर लो।

परिमल की यह बात रेनुका को मृत्यु दंड-सी सुनाई पड़ी। कुछ देर के लिये वह सन्न-सी रह गई। इसी की वह आशंका कर रही थी। उसे यह समझ ही में न आया कि क्या कहे। थोड़ी देर में सम्हलकर वह बोली—तो बस हम लोगों में सब कुछ खतम हो चुका? क्या इतने बड़े आदर्शवाद का यही नतीजा रहा कि हम उच्च कुल और नीच कुल के झगड़े के दलदल में फँसकर रह गये?

रेनुका ने शेषोक्त बात कुछ तैश में ही कही थी। पर परिमल ने कहा—मेरे लिये उच्च कुल नीच कुल कोई माने नहीं रखता, पर गुरुजन को विशेषकर ऐसे समय जब कि किसी भी घड़ी उनकी पीठ पर घातक छुरा बैठ सकता है, कष्ट देना मैं उचित नहीं समझता हूँ।

रेनुका बोली—ठीक है, पर तुम एक बात निश्चित रूप से कह तो दो तो मैं ऐसी हालत में भी अपने पिता के दिल को कष्ट पहुँचा सकती हूं। तुम शायद जानते हो कि मेरे पिता पर भी लीग वालों का क्रोध बहुत अधिक है, पर फिर भी यदि तुम यह बचन दे दो कि इस झगड़े के निपट जाने के बाद अपनी प्रतिज्ञा को कार्य रूप में परिणत करोगे तो मैं

किसी भी दामों पर इस शादी को टाल दूँगी। क्या तुम वचन देते हो?

परिमल का चेहरा बहुत दुखी मालूम पड़ता था। बोला—देखो रेणु, तुम मुझे गलत समझ रही हो। मैंने अब विवाह करने का विचार ही छोड़ दिया। मैंने तुमसे जब कहा था कि मैं तुम्हारा जीवन-सहचर बनूँगा तो मैंने सत्य ही कहा था। मैं उस पर लज्जित नहीं हूँ पर इन दिनों के दौरान में हमें उससे भी एक बृहत्तर सत्य का साक्षात्कार हुआ है। अब मैं समझता हूँ कि जब कि देश की ऐसी परिस्थिति है तब मेरे लिये शादी करना उपयुक्त न होगा। मैं किसी भी तरह तुमसे फिर नहीं गया हूँ, पर मैं अब किसी से विवाह नहीं कर सकता। मैंने यह तय कर लिया है कि अपना जीवन इस देश की हालत सुधारने में अर्पित करूँगा। मैं तो दुखित हूँ कि पहले सारी हालत को क्यों नहीं समझ पाया।

रेनुका ने परिमल के चेहरे की ओर देखा, सचमुच उसका चेहरा बिल्कुल बदला हुआ था। वह कृष्ण-कन्हाई वाला रूप नहीं था, अब तो यह चेहरा भगवान् बुद्ध की तरह गम्भीर हो रहा था। इसकी कुछ थाह ही नहीं मिलती थी। यह तो बिल्कुल रागद्वेष-हीन चेहरा था। कहीं भी इसमें कामना का पुट नहीं था।

अब रेनुका इस पर क्या कह सकती थी? कुछ कहने को रह गया था ऐसा तो नहीं मालूम होता था। वह उठी और उसने परिमल के पैर छुए, फिर बिना कुछ कहे मुँह फेर कर, घर की तरफ रवाना हुई। इस समय तक अँधेरा हो चुका था। पर रेनुका को अन्धकार से कोई भय नहीं था। उसका हृदय अन्धकार से पूर्ण हो रहा था, फिर उसे अन्धकार से क्या डर था? अन्धकार से डर इसलिये होता है कि कोई विपत्ति न आ जाय, पर जो सबसे बड़ी विपत्ति, सर्वनाश के ही भवँर में पड़ चुकी हो उसे मामूली विपत्तियों से क्या डर हो सकता था?

वह अपने ही मन से चलती गयी। कुछ देर तक तो उसे पता ही नहीं लगा कि परिमल भी उसके पीछे-पीछे एक लाठी लिये हुए चल रहा

है । जब उसने यह जान लिया तब उसके मन में अजीब विचार उत्पन्न हुए। जो व्यक्ति उसका जीवन-सहचर होने वाला था और जो उसे समस्त जीवन विपत्तियों से बचाने का भार लेने वाला था, आज वह अन्तिम बार उसके पीछे-पीछे उसकी रक्षा करने के लिये चल रहा था। यह बात सोचकर वह फूट-फूटकर रोती चली। हाय, वह परिमल के विरुद्ध कुछ सोच भी नहीं सकती थी। उसने तो काँटे का मुकुट रखने के लिये ही उसे छोड़ा था। पर इससे कुछ सान्त्वना थोड़े ही होती थी।

न रेनुका कुछ बोली और न परिमल ही कुछ बोला। रेनुका उसी प्रकार रोती-बिलखती हुई अपने गाँव की हद में दाखिल हुई। उधर से उसे खोजने के लिये ही दो-तीन आदमी लाठी और लालटेन लेकर आ रहे थे। रेनुका ने दूर ही से मंगलसिंह की आवाज पहचान ली। वह अपनी पंजाबी भाषा में न मालूम किसको गालियाँ देते हुए आगे-आगे चला आ रहा था। दूर से ही उन लोगों ने रेनुका को पहचान लिया और आवाज दी। रेनुका ने उत्तर दिया। रेनुका ने पीछे लौटकर देखा तो परिमल जा चुका था। परिमल ने ज्योंही देखा कि उसके अपने आदमी आ गये हैं, त्योंही वह पीछे हटकर चला गया।

इस प्रकार परिमल और रेनुका अलग भी हुई तो एक दूसरे से न मिलकर। जब रेनुका घर पहुँच कर अपने कमरे में बैठी तो उसका दुख इस बात को सोचकर और भी दुगुना हो गया कि चलते समय दो बातें भी न हो सकीं। इस सम्बन्ध का अजीब अन्त रहा।

१९

दशरथ बाबू बड़े जोरों से शादी की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने उस प्रसंग के बाद कन्या से एक दिन परोक्ष रूप से पूछा था तो रेनुका ने कहा था—आपकी जैसी इच्छा।

यदि परिमल उससे यह कहता कि किसी दूर-भविष्य में भी वह गृहस्थ होगा तो वह जैसे भी हो शादी रुकवा देती, पर जब उसके पास इस प्रकार की कोई प्रतिज्ञा नहीं थी तो वह कैसे क्या कर सकती थी? हाँ, वह भी चिरकुमारी-व्रत ग्रहण कर सकती थी पर इस प्रस्ताव को रख-कर वह जानती थी कि वह केवल हास्यास्पद ही होगी। वह जानती थी कि कोई उसकी बात नहीं सुनेगा। ऐसा प्रस्ताव रखती तो एक तरफ सारा समाज हो जाता और दूसरी तरफ होती वह अकेली। ऐसे असम-युद्ध में वह कब तक टिक सकती थी। अवश्य ही उसकी पराजय होती।

सच बात तो यह है कि इस भयंकर निराशा के बाद वह कुछ हत-बुद्धि हो गई थी। उस पर भी कुछ उसकी माँ की तरह भावनाएँ हावी-हो रही थीं। वह भी अपने को एक अज्ञात भाग्य के हाथों में कठपुतली समझ रही थी, जिसके विरुद्ध हाथ-पैर मारना व्यर्थ था। उसे परिमल के रूप में कितना अच्छा जीवन-सहचर प्राप्त हुआ था? पर वह कैसे बात की बात में हाथ से निकल गया? कहाँ से यह साम्प्रदायिक झगड़ा खड़ा हो गया? न मालूम कौन किसे भड़का रहा था, कौन रुपया दे रहा था, पर कहीं कुछ नहीं, किन्हीं लोगों ने पुरोहित जी की सत्यनारायण शिला छीन ली। फिर तो घटनाएँ होती गईं। फिर भी सब हो जाता पर कहाँ से बीस बिसवा वाला झगड़ा निकला? इस प्रकार कहीं से कुछ आया, कहीं से कुछ, सबने मिलकर षड़यंत्र किया और उसका जीवन एक चट्टान से आकर टकरा गया।

रेनुका अब इस तरह से स्रोत में बहती जा रही थी। उसे इसकी परवाह नहीं थी कि वह किस वेग से जा रही थी और कहाँ जा रही थी? जिसने सागर में शय्या बना ली उसे तरंगों से क्या डर था? उसने सोचा जब अपने मन का नहीं हुआ तब पिता के मन का ही हो। ऐसा सोचने में कहाँ तक हिन्दू नारी की पराधीनता ने उसे विवश किया और कहाँ तक उसने खुद सोचा यह सन्देह का विषय था। और केवल रेनुका के

ही सम्बन्ध में क्यों, परिमल के सम्बन्ध में भी यह शायद विचार्य है कि कहाँ तक उसमें एकाएक देशभक्ति जोर मार रही थी और कहाँ तक वह केवल पिता की आज्ञा का अनुसरण कर रहा था।

रूपवती को अन्त तक यह डर रहा कि शायद किसी सोपान में जाकर रेनुका बिगड़ खड़ी होगी और सुधांशु से शादी करने से इन्कार कर देगी। उसके मन में यह सन्देह बराबर रहा, पर वह भी अपनी परिस्थितियों विचारों तथा बन्धनों से बँधी हुई थी। बहुत धीमी आवाज में पति को एक चेतावनी-सी देने के अलावा वह इस सम्बन्ध में दशरथ बाबू से बात नहीं कर सकी। बचपन से वह सिखाई गई थी कि पति की इच्छा उसके लिये आज्ञा की हैसियत रखती है, केवल यही नहीं, सात साल से बिस्तरे पर पड़ी रहने के कारण उसमें सहज ही एक हीनता की भावना उत्पन्न हुई थी, इस कारण वह और भी कम बोलती थी।

अपनी बेटी से भी उन्होंने बहुत खुलकर बात इसलिये नहीं की कि वह डरती थी कि कहीं उसके बात करने के कारण ही जो भावना दबी हुई थी, वह ऊपर को न आ जाय और वह विवाह करने से इन्कार कर दे। इस प्रकार व्याह तोड़ने का अपयश उसी के मत्थे रहे।

इस प्रकार सभी अपने-अपने ढंग से बह रहे थे। दशरथ बाबू एक व्यावहारिक व्यक्ति की तरह आगे बढ़े चले जा रहे थे, पर वे भी बह रहे थे, क्योंकि वे भी इस चीज को गहराई तक नहीं सोच रहे थे। कुछ तो साम्प्रदायिक परिस्थिति के कारण जल्दी थी, कुछ पुरोहित जी के द्वारा ठुकराये जाने के कारण बदले की भावना थी, कुछ अकड़ और रोष था। इस तरह इस विवाह की तैयारी में सभी कुछ था, रुपये-पैसे तो खूब खर्च हो रहे थे, पर यदि कोई उपकरण नहीं था तो वर-बधू के भविष्य, मानसिक सुख की चिन्ता किसी को नहीं थी। अक्सर विवाहों में ऐसा ही होता है। सब अपनी-अपनी धुन में रहते हैं, केवल अपनी धुन में नहीं रह पाते तो वर और बधू। इसी प्रकार से इस समाज की रचना हुई है।

जमींदार के घर विवाह की तैयारी उसके किसानों के लिये विशेष सुख की बात नहीं होती। देखने को तो जमींदार ही सब खर्च करता है पर वह सारा खर्च किसानो की जेब से होता है। जमींदार की एक मात्र लड़की का व्याह था, इसलिये धूमधाम भी अधिक थी और खर्चा भी लम्बा था। यों तो मुसलमान-हिन्दू सब किसानों पर इस विवाह के खर्च का बोझ पड़ता, पर अबकी बार देश की साम्प्रदायिक स्थिति बहुत भयंकर हो जाने के कारण दशरथ बाबू को यह हिम्मत नहीं हुई कि मुसलमान किसानों पर इसका बोझ डालें, इसलिये बोझा केवल हिन्दू किसानों पर पड़ा और स्वाभाविक रूप से हल पीछे ज्यादा खर्च पड़ा। इस कारण हिन्दू किसान दशरथ बाबू पर पहले अधिक नाराज हो गये। यदि सब किसानों पर बराबर बोझ डाला जाता तो हिन्दू किसान शायद उतना नाराज न होते, पर इस व्यवस्था से वे बहुत नाराज हुए। दशरथ बाबू के प्रधान कारिन्दा शमीजान हिन्दुओं से रुपया, गल्ला, दूध आदि वसूल करने में यह नहीं देखता था कि जिससे जितना माँगा जा रहा है उतना देने की उसमें सामर्थ्य है या नहीं।

इस प्रकार इस विवाह की तैयारी ने दशरथ बाबू की अंतिम जड़ को भी काट दिया और उस नाटक की तैयारी हो गई जो बाद को होने वाली थी। शमीजान एक गरीब हिन्दू किसान के यहाँ पहुँचा और बोला—मंडल, तुम्हें चार सेर घी देना है और सिर्फ सात दिन रह गये हैं।

मंडल ने चौंककर मानो उसे किसी ने एक सुई कोंच दी हो, कहा—मैं इतना घी कहाँ से पाऊँगा, मेरे पास तो कोई गाय भी नहीं है।

शमीजान बोला—तुम्हारे पास गाय नहीं बकरियाँ तो हैं, गाय होती तो तुम पर दस सेर से कम न लगता।

मंडल बहुत रोया पीटा, बोला—खाँ साहब मर जाऊँगा, कुछ कम करो। सेर भर ले लो।

अन्त तक दो सेर पर तय हुआ, पर शमीजान के चले जाने पर

मंडल ने जमींदार को दो-हजार गालियाँ दीं। इसी प्रकार हर घर का हाल रहा। किसी-किसी ने तो कहा—हम कुछ नहीं देंगे।

शमीजान ने ऐसे लोगों को मुसलमान लठैतों से पिटवा दिया। दशरथ बाबू को अगर पता होता तो इतना कभी न होने देते। कुछ भी हो वे समय को कुछ पहचानते थे, पर शमीजान को क्या फिक्र थी। उसने तो खुलकर नंगा-नाच किया। जो चीज वसूल हुई उसका आधा अपने घर भेज दिया और आधा जमींदार के घर गया।

दशरथ बाबू ने वसूल तो जरूर किया पर यह भी एलान कर दिया कि शादी के दिन सारी रियाया चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान दावत रहेगी। इस समय ग्रह ऐसा बिगड़ा हुआ था कि इसका भी बुरा असर हुआ। हिन्दू किसानों को यह दावत इसलिये नहीं पसन्द आई कि उन्हें इसके लिये बहुत दाम देना पड़ा। दाम तो उन्हें हमेशा देना पड़ता था, पर अबकी बार इसलिये अखरा कि मुसलमान किसानों को तो करीब-करीब मुफ्त में दावत मिलने वाली थी। मुसलमान किसानों को यह दावत, दावत ही नहीं जँची, वे समझे और ऐसा उन्हें समझाया गया कि डर कर उन्हें घूस दिया जा रहा है।

दशरथ बाबू को इन विषयों में अधिकतर तो पता नहीं लगा और जो कुछ थोड़ा-बहुत पता भी लगा तो वे उसका कर ही क्या सकते थे। वे भी तो बह रहे थे।

इस प्रकार के वातावरण में सारी तैयारी हो रही थी। हजारों के गहने आये, कपड़े आये, सामान आये। पहाड़ की तरह मिठाइयाँ बनीं। शामियाने तन गये। गाने वाले तथा नाचने वाली के लिये बयाना गया हुआ था। इतनी तैयारी होने लगी कि सब लोग भूल ही गये कि रेनुका नाम से भी कोई है।

१७

शादी की लग्न शनिवार को पड़ती थो। आज शुक्रवार था। तैया-

रियां करीब-करीब सब पूरी हो चुकी थीं। बहुत से सजे हुये हाथी और घोड़े ड्योढ़ी पर इधर-उधर बँधे हुए थे। बाजे तो कई दिन से बज रहे थे।

रूपवती की अवस्था या उम्र में कोई सजावट उचित न होती। जो साढ़े सात साल से बिस्तरे पर पड़ी हुई थी, उसकी साज-सज्जा और बनाव-शृङ्गार कैसा ? पर नहीं, वहाँ भी जहाँ तक हो सके ऐश्वर्य बिछा दिया गया था। आखिर जमींदार की बीबी थी, कुछ नहीं तो सैकड़ों आदमी तरह-तरह के काम से इस कमरे में आने-जाने लगे थे।

रेनुका के कमरे का तथा सारे घर का तो कहना ही क्या है चारों तरफ सोना, मोती, चाँदी, मखमल, रेशम यही दिखलाई पड़ता था। एकमात्र लड़की की शादी थी, दशरथ बाबू ने कोई हौसला बाकी नहीं रखा था। स्वयं रेनुका अभी तक नहीं सजी थी, पर उसको सजाने के लिये विशेषाज्ञायें आ चुकी थीं और वे अपने काम में अभी से व्यस्त थीं। घर अन्य स्त्रियों तथा पुरुषों से भरा हुआ था। बहुत से लोगों की दावतें तो पहले से ही शुरू हो चुकी थीं। आज रात को कोई भी सोने वाला नहीं था। बात यह है कि तैयारी में जो थोड़ी-बहुत कमी रह गई थी। उसे पूरी जो करनी थी।

रेनुका इन सब तैयारियों को एक उदासीन दृष्टि से देखती जैसे फाँसी पाने वाला फाँसी की रस्सी आदि को ठीक किया जाना, उससे बांधकर बालू के बोरे का लटकाया जाना आदि देखता है। उसके चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी। लोग समझते थे कि यह थकावट है। एक सयानी बुढ़िया तो यहां तक बोली कि चेहरा अच्छा लगता है, आज-कल की लड़कियों की तरह अपनी शादी में खिलखिलाकर हँसना अच्छा नहीं लगता। पहले तो ऐसा नहीं था। रेनुका इन सब बातों को सुनती और वह न हँसती थी और न रोती थी। वह अपनी माँ से भी बढ़कर भाग्यवादिनी हो चुकी थी।

दिन के तीन बजे होंगे, या शायद अभी न बजे हों। एकाएक दूर से ऐसी आवाज मालूम पड़ी जैसे किसी बाँध पर सुनाई पड़ती है। बहुत अजीब आवाज थी। सबने कान खड़े कर सुना, पर किसी की समझ में नहीं आया कि क्या है। ये लोग फिर अपना-अपना काम करने लगे। लड़ाई के कारण लोग सब तरह की आवाज के आदी हो चुके थे। न मालूम कोई टैंकों का ही बटेलियन जाता हो या सौ-दो-सौ मोटरें एक साथ जाती हों।

पर यह आवाज बढ़ती ही गई और कुछ देर में यह सबकी समझ में आ गया कि यह अपार जनसमूह की आवाज है। सबके कान खड़े हो गये। ध्यान से देखा गया तो मालूम हुआ कि दो-तीन घंटा पहले तक जो मुसलमान नौकर या बेगारी मकान के अन्दर और बाहर तरह-तरह के काम कर रहे थे, उनमें से एक भी नहीं था।

दशरथ बाबू ने जो यह देखा तो वे लोगों को सान्त्वना देते हुए और शायद अपने को भी सान्त्वना देते हुए बोले—आज मुसलमानों के जुम्मा का नमाज है, शायद इसीलिए गये हुए हैं। अब आते ही होंगे, शायद वे ही शोर मचाते हुए आ रहे हैं।

इसके बाद पन्द्रह मिनट भी नहीं बीता था कि खासपुरवा की तरफ से मकानों का जलना दिखाई पड़ा। अब तो सब लोग सन्नाटे में आ गये। जहाँ कुछ मिनट पहले सबके चेहरे पर उत्सव का आनन्द था वहाँ अब आतंक दिखलाई पड़ा। विशेषकर बाहर से आई हुई स्त्रियों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

रेनुका अपने कमरे से बाहर नहीं आई थी, न उसने यह शोर ही सुना था। लोगों ने जाकर उसे बताया तो उसके चेहरे की मुर्दनी दूर हो गई। वह मन से यह चाहती थी कि किसी प्रकार इस विवाह में बाधा पहुँचे। इस आनेवाले हंगामे में उसने इसकी सम्भावना देखी। उसने बाहर निकलकर उत्साह के साथ दूर से आती हुई आवाज को सुना, पर

जब उसने यह देखा कि खासपुरवा के मकानों में आग लग रही है तब उसका चेहरा फक पड़ गया। वह किसी से कुछ कह न सकी, पर वह समझ गई कि क्या हो रहा है। वह समझ गई कि जरूर पुरोहित जी पर हमला है और शायद क्या जरूर परिमल पर भी है। इस प्रकार दो-तीन मिनटों के अन्दर रेनुका के कई भावान्तर हुए। उसकी ऐसी हालत हुई कि उसे भय लगने लगा कि वह बेहोश हो जायगी। उसने जल्दी से अपने पास की दीवार को पकड़ लिया और फिर सम्हल कर पास की एक कुर्सी पर बैठ गई।

कुछ देर में खासपुरवा के भागे हुए दो-एक हिन्दू आते दिखाई दिये, पर उनकी बात-चीत दशरथ बाबू तथा अन्य पुरुषों से हुई। क्या बात-चीत हुई यह दशरथ बाबू ने भीतर आकर नहीं बताया। स्त्रियाँ अनुमान करती रहीं।

थोड़ी ही देर में यह पता लग गया कि आफत सिर्फ खासपुरवा पर नहीं है। चारों तरफ के गाँव में बावेला मचा हुआ था। अक्सर आग भी दिखाई पड़ रही थी। थोड़ी देर में भयंकर शोर मचाती हुई और तरह-तरह के साम्प्रदायिक नारे देती हुई एक बहुत बड़ी भीड़ बड़ा गाँव भी आ पहुँची और करीब-करीब दौड़ती हुई दशरथ बाबू के मकान में घुस पड़ी। हजारों आदमियों ने एक साथ इधर हमला किया और उनके सम्मिलित कंठ से नारे निकले, इससे पहला काम तो यह हुआ कि घोड़े-हाथी जहाँ बँधे थे वे रस्सी तुड़ा-तुड़ा कर भाग गये। हाथी भागे तो कुछ लोग कुचल भी गये। इससे आई हुई जनता का रोष और भी बढ़ा और वे और भी क्रोध के साथ जमींदार के मकान के हाते में घुस पड़े।

जो लोग हाथी के पैरों तले कुचल गये या घोड़ों की टाप से गिर पड़े उनको भीड़ ने और भी कुचल दिया। सब लोगों को इस बात की जल्दी थी कि गहना-कपड़ा लूटें। सबको मालूम था कि शादी की तैयारी है और हजारों के वारे-न्यारे हो रहे थे। जिधर देखो उधर ही लोभनीय

पदार्थ थे। सामने ही एक शामियाने के नीचे मिठाइयाँ जमा थीं। जनता उन पर टूट पड़ी और खूब खाईं। कुछ लोग तो धक्के के मारे मिठाइयों के अन्दर घुस गये। बड़ी मुश्किलों से उनकी जान बची, यों न बचती पर भीड़ यह नहीं चाहती थी कि मिठाई खराब हो। दशरथ बाबू ने हजारों की तैयारी की थी पर फिर भी बात की बात में यह सब मिठाई कहाँ गई, पता नहीं लगा। यही हाल सब तरह की खाने की चीजों का हुआ।

जिस समय साधारण भीड़ खाने में व्यस्त थी उस समय जो पहले से तैयार थे, वे गहने-कपड़े लूटने पर लगे हुए थे। भीड़ में करीम और रहीम दोनों के दल भी थे। ये ही लोग गहनों के कमरे में पहुँचे थे। बात यह है कि ये लोग कई दिन से चोरी की फिक्र में थे, सब सुराग ले चुके थे, पर मौका नहीं लगा था। रहीम ने जो देखा कि करीम का दल और उसका दल दोनों वहाँ हैं, तो एक बार उसकी आँखों में खून आ गया। पर राजनीतिज्ञों की तरह चोर लोग भी मौका खूब पहचानते हैं फौरन रहीम ने करीम से हाथ मिलाया और कुछ बातें हो गयीं। इन लोगों ने चीजों का ऐसा संगठन किया कि इस कमरे में भीड़ का कोई और आदमी आ नहीं पाया। कहना न होगा कि ये लोग खूब चिल्ला-चिल्ला कर लीगी नारे लगाते जाते थे।

बाकी भीड़ में से जिसके हाथ जो कुछ लगा वह उसी को लेकर अपने घर चला गया। जो लोग कोई अच्छी चीज पा गये वे फौरन चले गये। बहुत से लोग जिनका मकान करीब था दो-दो खेप कर चुके। थोड़ी देर में भीड़ बहुत-कुछ छँट गई।

अब हम इस दुखद दृश्य का अधिक वर्णन न करेंगे। जमींदार के घोड़े, गाय, कुत्ते, संक्षेप में जो कुछ भी ले जाया जा सकता था सब ले जाया गया। घंटे भर बाद वहाँ जो परिस्थिति थी, वह यों थी।

दशरथ बाबू को एक पेड़ से पैर से कमर तक कसकर बाँध दिया

गया था। उसका सिर कुछ लटक रहा था। पता नहीं वे जीवित थे या मर चुके थे। उनके शरीर पर कई तरह के घाव थे। जगह-जगह खून टपक रहा था।

रूपवती की यह हालत हुई कि जो लोग पहले उसके कमरे में घुसे उन लोगों ने रूपवती के कीमती बिस्तरों को लेने के लिये उसको पलँग पर से ढकेल दिया। दो-एक ने शायद उस पर पैर भी रख दिये। फिर जब कमरा बिल्कुल खाली हो गया, यहाँ तक कि पलँग की लकड़ियाँ भी तोड़-तोड़ कर बँट गयीं, तब कुछ लोगों ने रूपवती की ओर ध्यान दिया। एक ने कहा—यह देखो कैसी मक्कर मार कर पड़ी है ?

नतीजा यह हुआ कि उसे वहाँ से निकाल कर बाहर लाया गया। उसकी साड़ी तो पहले ही जा चुकी थी। सिर्फ नीचे एक टुकड़ा-कपड़ा किसी तरह उसके लज्जास्थान को ढकता हुआ बाकी था। अब एक ने उसे भी उतार लिया, रूपवती को अब भी होश था, इसलिये उसने हाथ रख कर लज्जा ढँकने की कोशिश की। इस पर एक अधेड़ उम्र का मुसलमान उसको जबर्दस्ती चित कर उस पर ऐसे बैठ गया जो बहुत ही भद्दा था। दो-एक ने पीछे से उस आदमी के सर पर दो-एक थपड़ी लगाई, पर जब वह किसी तरह अपने दुष्कृत्य से बाज नहीं आया तब एक ने उसे चादर ओढ़ा दिया। इसी प्रकार रूपवती पर एक के बाद एक, कई ने बलात्कार किया और वह वहीं मर कर ढेर हो गई।

घर में जो अन्यान्य स्त्रियाँ थीं, उनमें से किसी का भी पता नहीं था। रेनुका का भी पता नहीं था।

१८

खासपुरवा में जो घटनायें हुई थीं, उनका विवरण यों है—

जब आक्रमणकारी भीड़ आई भी नहीं थी, अभी दूर ही थी, तब कुछ लोगों ने आकर पुरोहित जी को यह खबर दी कि विशेषकर उन्हीं को

मारने के लिये एक भीड़ आ रही है, इसलिये अच्छा हो कि वे भाग जायँ।

परिमल भी वहाँ पर खड़ा था, उसने भी यही सलाह दी पर पंडित जी ने किसी की नहीं सुनी। वे गीता के श्लोकों का पाठ करने लगे। इन दिनों उनका समय पूजा-पाठ में ही जाता था यद्यपि अब पूजा-पाठ में वे किसी मूर्त्ति का उपयोग नहीं करते थे। वे जिस जगह में रहते थे, उसमें कोई किवाड़ा भी नहीं था। एक तरह से चौपाल-सा था। वे उसी में एक स्थान पर बैठ कर अपना पाठ करने लगे। उन्होंने पहले यह श्लोक पढ़ा—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो नैनं वहति मारुतः॥
अशोष्योऽयम् अदाह्योऽयम्...

उनके चेहरे पर कोई भी उद्वेग या परेशानी का चिन्ह नहीं था। वे श्लोक पढ़ते जाते थे और उनका चेहरा एक दिव्य तेज से उज्वल होता जाता था।

किसी ने इसके बाद उनसे कुछ कहना बेकार समझा। फिर किसी को कुछ कहने का मौका भी नहीं मिला। भीड़ एक तूफान की तरह उमड़ती हुई बात की बात में वहाँ पहुँच गई। मालूम होता था कि ये लोग अपने सामने कुछ नहीं चलने देंगे। टिड्डी दल की तरह अपार भीड़ थी। गगनभेदी नारे थे।

परिमल पुरोहित जी के पास ही डटा रहा। उसके हाथ में कोई अस्त्र यहाँ तक कि एक डंडा भी नहीं था। होता भी तो इस भीड़ के सामने कुछ वश न चलता। भीड़ की पहली लहर जो आई तो पुरोहित जी के प्रशान्त चेहरे को देखकर और शायद उनके द्वारा गाये गये श्लोकों को सुनकर ठिठक कर खड़ी हो गई। भीड़ के लोग सभी कुसंस्कार-ग्रस्त थे। आज कुछ महीनों से लीग के प्रचार-कार्य के कारण वे चाहे हिन्दू पूजा-पाठ को दूसरी निगाह से देखने लगे हों, पर वे हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के पूजास्थानों और पूज्यों की श्रद्धा में पैदा हुए थे तथा पले थे। एक

साधारण मुसलमान के लिये दरगाह या दुर्गा या षष्टी उतनी ही पवित्र थी। दोनों पूज्य स्थानों के पास जाकर वे भय तथा श्रद्धा से और श्रद्धा से अधिक भय से पीड़ित हो जाते थे।

जो भीड़ के लोगों ने पुरोहित जी को मंत्र पढ़ते हुए देखा तो वे मंत्र से रुद्धवीर्य-सर्प की तरह खड़े हो गये। पर उनके साथ उनके नेता भी थे, जिनको निश्चित हिदायतें मिली हुई थीं। भीड़ हिचकिचाई, पर वे नहीं हिचकिचाये। उन लोगों में से एक ने जोर का नारा दिया—

अल्लाहो अकबर।

भीड़ ने गगनघोषी निनाद से इसकी आवृत्ति की। पुरोहित जी से भीड़ पाँच हाथ पर खड़ी थी, भीड़ ने जो कसकर नारा दिया तो पुरोहित जी का चेहरा जैसे एक मुहूर्त के दशमांश के लिये फक पड़ गया, पर वे फौरन सम्हल गये और फिर वे गीता के उन्हीं श्लोकों की आवृत्ति करने लगे—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्आपो नैनं वहति मारुतः॥

फिर नारा दिया गया—पाकिस्तान...

भीड़ ने बड़े जोर से कहा—जिन्दाबाद।

यह मानो एक सिगनल-सा था और लोग पुरोहित जी पर टूट पड़े। क्या से क्या हो गया पता नहीं लगा, पर देखा गया कि पुरोहित जी पड़े हुए हैं और फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ा। परिमल ने भी देखा कि पुरोहित जी पर हमला हो गया, पर इससे आगे वह भी न देख सका क्योंकि उस पर भी लोग टूट पड़े और वह गिर पड़ा। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसकी आँख के ही सामने शकूर था और वह इस भीड़ के नेताओं में मालूम होता था। इससे आगे उसे कुछ समझने-बूझने का मौका ही नहीं मिला। बस इतना ही मालूम हुआ कि वह गिर पड़ा है और उस पर न मालूम कितने लोग खड़े हैं।

एकाएक उस टिड्डी दल की तरह भीड़ में से नक्कारे की तरह आवाज से किसी ने कुछ कहा। भीड़ चुप हो गई और परिमल को ऐसा मालूम पड़ा कि भीड़ उस जगह से बाहर जा रही है। फिर परिमल को बेहोशी ने घेर लिया।

पछाँह से आये हुए उस लीगी नेता ने ही लोगों से कहा था कि वे हट जावें और नेताओं को अपना काम करने दें। दो आदमी फिर भी परिमल के ऊपर रह गये। परिमल को शायद कोई भयंकर चोट आई थी वह शायद यों भी उठ न पाता, पर उन दो आदमियों के कारण तो वह बिल्कुल ही न उठ सका। वह होश और बेहोशी के बीच की हालत में कुछ देर ठिठककर बेहोशी में पहुँच गया था।

पछाँह से आये हुए उस नेता ने कड़कती हुई आवाज में कहा—इसे यहाँ से ले जाओ, बस पुरोहित को रहने दो।

तदनुसार दो-तीन आदमी मिलकर परिमल को घसीटते हुए बाहर ले गये और उसे लेकर उस तरफ चले गये जिधर कभी रामदास के लोगों ने पड़ाव डाला था। इस समय इस प्रकार कितनी ही लाशें गिर चुकीं थीं और किसी ने आँख उठाकर न उसकी तरफ देखा, न उसको उठा कर ले जाने वालों की ओर देखा।

आश्चर्य यह है कि जिस चोट से परिमल शायद बेहोश था या पता नहीं मर गया हो, उसी चोट से पुरोहित जी को कुछ विशेष हानि नहीं हुई थी। पछाँह के उस लीगी नेता ने ज्योंही उनके ऊपर चढ़े हुए लोगों को हट जाने के लिये कहा, त्योंही वे उठकर बैठ गये और एक दफे भीड़ को देखकर फिर जोश के साथ कहने लगे—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो नैनं वहति मारुतः॥

भीड़ ने अब शोर मचाना बिल्कुल बन्द कर दिया था। सब लोग बिल्कुल ऐसी मानसिक स्थिति में हो गये थे, मानो वे एक नाटक देख

रहे हों। वे इस नाटक के एक भी शब्द या एक भी दृश्य को खोना नहीं चाहते थे।

पछाँह से आया हुआ वह नेता कुछ देर तक पुरोहित जी को किंकर्तव्य-विमूढ़ दृष्टि से देखता रहा, जैसे उसकी यह समझ ही में नहीं आ रहा हो कि वह क्या करे। इतने में ही किसी ने लाकर एक कुर्सी रख दी तो वह उस पर बैठ गया। फिर तो कई कुर्सियाँ आ गईं और कई गणमान्य लोग कुर्सी पर बैठ गये। पछांह के उस नेता ने पुरोहित जी से नाटकीय ढंग से कहा—ऐ काफिर चुप रह···

पुरोहित जी ने उसकी ओर देखा। एक बार जैसे उनके चेहरे पर एक सिकुड़न आई, पर फिर वे निर्भय होकर उसी श्लोक को दोहराने लगे।

उस नेता ने इस पर आँखें लाल-पीली करते हुए कहा—तुमने बहुत बदमाशियाँ कीं, अगर जान प्यारी है तो अब मान जाओ। इस्लाम कबूल कर लो, बस जान बख्श दी जायगी।

पुरोहित जी अपना काम करते रहे। वे और भी जल्दी-जल्दी उस श्लोक को दोहराते रहे।

तब उस नेता ने कहा—ऐसे काम नहीं चलेगा। बड़ा पुराना चंडूल है, इसे खूब मारो।

इतना कहना था कि सारी की सारी भीड़ पुरोहित जी की ओर बढ़ने लगी, पर उस नेता ने अत्यन्त कर्कश आवाज में कहा—नहीं सब लोग नहीं इस काम के लिये जो तैनात हैं, वे यहाँ पर आवें।—पर जो लोग इस काम के लिये तैनात थे वे पीछे रह गये थे, अब जो हुकुम मिला तो भीड़ ने उनको आगे आने दिया। चार आदमी आगे आये। इनमें से दो के पास देशी तलवारें थीं।

उस नेता ने इन लोगों से कहा—इस सुअर के बच्चे को लेटा कर खूब डंडे से मारो, पर इतना न मारो, कि मर जाय। शायद अल्लाह की ाह पर आ जाय।

तदनुसार वे लोग उस बूढ़े पर टूट पड़े और खूब धुनाई की। पर बूढ़े ने आह तक नहीं की। इशारा पाकर मारनेवाले अलग हो गये। इस मार के बाद पुरोहित जी में यह शक्ति नहीं थी कि वे पहले की तरह उठकर बैठ सकें, इसलिये वे लेटे ही लेटे शायद उस श्लोक को कह रहे थे, पर अब कुछ स्पष्ट सुनाई नहीं दे रहा था।

उस नेता के इशारे पर उन आदमियों ने पुरोहित जी को उठाकर बैठाया और जब वे गिरने लगे तो वे उन्हें पकड़े रहे, जिससे कि वे भीड़ के नेता की बात सुन सकें। कुर्सी पर बैठे हुए लोगों में से एक ने कहा—अहमद, ऐसे न होगा, पहले इन्हें कुछ खिलाओ-पिलाओ तब इन्हें ताकत पहुँचे तो ये कलमा पढ़ें।

सब लोग इसका मतलब समझ गये और हँस पड़े। पछांह के उस नेता का नाम ही अहमद था। उसने कहा—अरे यार मैं तो भूल ही गया था। कोई है, पंडित जी के लिये कुछ खाना तो लाओ।

मानो यह सब पहले से तैयार था। एक आदमी मंझली-सी डेकची लेकर सामने आया और उसमें से एक बड़ा सा हड्डा लेकर वह पुरोहित जी को खिलाने के लिये चला। पुरोहित जी ने जो उस हड्डे को देखा और समझ गये कि यह क्या है तो एक मिनट के लिये वे हतबुद्धि हो गये, पर फिर उनके चेहरे ने वही प्रशांत भाव धारण किया और वे अपनी शक्ति भर जोर के साथ उसी श्लोक को कहने लगे।

वह हड्डा वाला आदमी उनकी तरफ बढ़ा और उनके मुँह में उस हड्डे को देने की कोशिश करने लगा। पुरोहित जी ने मुँह बन्द कर लिया और मुँह दूसरी तरफ फेरने लगे। उन चार आदमियों ने उनको कस कर पकड़ लिया और फिर एक तरफ अकेले बूढ़े पुरोहित और दूसरी तरफ ये पाँच संडे जोर करने लगे। अन्त में यह हुआ कि पंडित जी का एक दांत टूट गया, मुँह से खून आने लगा। उनके मुँह पर उस हड्डी से लिपटा हुआ शोरवा, घी मसाला आदि पहले ही लग चुका था।

अब जो खून भी गिरा तो वे अजीब भयानक मालूम पड़ने लगे। भीड़ में से बहुत लोग हँस रहे थे मानो यह भाँड़ का नाच हो।

उस नेता ने कहा—जाने दो अब तो ये बेधरम हो गये। अब पूछा जाय।

पर कुर्सी पर बैठे हुए उस व्यक्ति ने कहा—अभी तो मुँह में कुछ गया ही नहीं। पहले पहल हड्डी थोड़े ही खाई जायगी, इन्हे कुछ शोरवा पिला दो।

फिर एक बार कहकहा हुआ। जनता को अब बहुत मजा आ रहा था। चार आदमी ने पुरोहित जी को पकड़ कर चित लेटा दिया और एक बँधना में कुछ शोरवा डाल कर उसकी टोंटी को जबर्दस्ती उनके मुँह में घुसा दिया।

पता नहीं कुछ शोरवा भीतर गया या नहीं, पर पुरोहित जी का सारा मुँह और गला शोरवे से नहा गया। जब बँधने का सारा शोरवा इस प्रकार बिखर गया या पुरोहित जी के पेट में चला गया, जो भी हो, तब ये दुष्ट माने; पुरोहित जी को छोड़कर ये अलग हो गये तो उनकी हालत ऐसी हो रही थी कि उनको पहचानना मुश्किल था। शोरवा, खून, पसीने से उनका चेहरा बिगड़ गया था। पर फिर भी न मालूम उनमें कितनी जीवनी-शक्ति थी, वे उठ बैठे और अपनी धोती के किनारे से मुँह साफ करने की कोशिश करने लगे।

पछाँह के उस नेता ने पुरोहित जी से कहा—देखो, अब तुम बच नहीं सकते। अगर अच्छा चाहते हो तो अब भी मान जाओ। हम कसम खाकर कहते हैं कि जैसा तुम हिन्दुओं में लीडर माने जाते थे अगर मुसलमान हो जाओगे तो वैसा ही हम तुम्हें सर आँखों पर रखेंगे।

पुरोहित जी ने अबकी बार उत्तर दिया—यह सब हिन्दू और मुसलमान, यह पार्टीबन्दी की बात है। हम जो हैं सो हैं। हमारे लिये जैसे हिन्दू हैं वैसे मुसलमान। हम भेद नहीं मानते।

अहमद ने कहा—भेद नहीं मानते तो तुम कलमा पढ़ लो।

पुरोहित जी बोले—नहीं, मैं जो हूं सो हूं।

अहमद ने अपने विकट चेहरे को विकटतर बनाते हुए कहा—अभी तो तुम्हारे साथ कुछ ज्यादती नहीं हुई है, हम तुम्हारी बोटी-बोटी काट डालेंगे। हम सिर्फ शेखी नहीं मारते हैं, हमें इस खित्ता को हिन्दुओं से पाक करना है।

पुरोहित जी बोले—मैं डरता नहीं हूं, तुम जो चाहे सो करो, पर मैं तुम्हारे डराने से कलमा नहीं पढूँगा।—उन्होंने टूटे हुए दाँत को थूक दिया और मुँह पर के खून को पोंछ कर फिर श्लोक दोहराना शुरू किया।

अहमद ने पूछा—यह क्या तुम गालियाँ-सी दे रहे हो?

पुरोहित जी बोले—मैं किसी को गालियाँ नहीं देता, सब मेरे भाई हैं। तुम मेरे ऊपर ज्यादतियाँ कर रहे हो पर मैं तुम्हारी भी भलाई चाहता हूँ। इस श्लोक में यह कहा गया है कि आत्मा को न तो शस्त्र ही काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न पानी भिंगा सकता है और न हवा ही सुखा सकती है।

—इसके माने यह है कि तुम मुसलमान नहीं बनोगे?

दृढ़ता के साथ पुरोहित जी बोले—नहीं, मेरे लिये मेरा रास्ता ठीक है तुम्हारे लिये तुम्हारा ..

अब अहमद का चेहरा कड़ा हो गया। उसने कहा—यह ऐसे नहीं मानेगा। इसका एक-एक करके हाथ-पैर काट लो तब यह मानेगा ऐसे ही सभा का लीडर थोड़े ही बना है।

उसने तलवार वाले आदमियों को इशारा किया। दोनों ने अपनी तलवारें निकाल लीं। तलवारों पर अभी तक खून लगा हुआ था यद्यपि तलवार वालों ने अपनी जान में उन्हें पोंछ कर ही म्यान में रखा था। बात यह है कि रास्ते में कुछ हिन्दू मिल गये थे, उन पर इन्होंने वार करके यह देख लिया था कि धार ठीक है या नहीं।

पुरोहित जी ने तलवारों की तरफ़ देखा और इन लोगों के चेहरों की तरफ देखा। ये लोग धमका नहीं रहे थे बल्कि सचमुच ही हत्या पर तुले हुए थे। पंडित जी को एक बार यह ख्याल आया कि न मालूम घर पर क्या बीत रहा है। चारों तरफ से शोर, मार-पीट आदि की आवाज आ रही थी! परिमल तो यहीं पर था पर न मालूम क्या हुआ, कहाँ गया। उन्होंने फिर खून थूका, एक बार बड़ी कमजोरी मालूम हुई, फिर प्रबल इच्छाशक्ति के प्रयोग से वे शान्त हो गये। वे अब उस श्लोक को चिल्लाकर नहीं बोले पर मन में उसके अर्थ को सोचते रहे। क्या वे डरकर इस श्लोक की आवृत्ति कर रहे थे?

अब देर हो रही थी। अहमद ने हुकुम दिया—जो तय था वह करो।

दोनों तलवार वाले उनकी तरफ बढ़े, एक पास खड़ा हो गया और दूसरे ने उनका एक हाथ काट डाला। लद्-से कटा हुआ हाथ गिरा और खून का फौवारा चल निकला। पहले ही कुर्सी वाले लोग तैयार थे, वे हट गये नहीं तो फौवारे से जो खून चला वह उन पर गिरता। जनता के चेहरे पर प्रबल उत्तेजना थी। अब यह स्पष्ट था कि नाटक अपने अन्तिम दृश्य की ओर जा रहा था। पुरोहित जी पीठ के बल गिरने लगे, उनकी आँखें विलट-सी गईं।

अहमद के इशारे पर पीछे से दो-तीन आदमियों ने उनको थाम लिया, जिससे वे गिर न सके और जनता तथा नेता वेदना से काँपते हुए उनके चेहरे को देख सके। अहमद ने पहले से कर्कशतर आवाज में कहा—मान जाओ अब भी वक्त है।

पर पुरोहित जी ने सिर हिला दिया। फिर इशारे पर उनका दूसरा हाथ भी काट लिया गया, यह हाथ एक बार में नहीं कटा तो दूसरे बार से काट डाला गया। इसी प्रकार पैर काट डाला गया, यहाँ तक कि हाथ-पैर हीन शरीर रह गया। खून की नदी बह चली। प्रत्येक बार

अहमद ने पूछा, दो हाथों के कटने तक पुरोहित जी ने सिर हिला कर न किया, फिर वे शायद बेहोश हो गये।

अन्त में उनका सिर भी काट डाला गया और उसे एक बर्छी की नोक पर रख कर भीड़ चली। पर भीड़ ने पता नहीं भ्रम से देखा या सचमुच देखा कि पंडित जी का मुँह खून से लथपथ है, बाल खून से भींगे हैं, पर जीभ कुछ हिल-सी रही थी, ओठ कुछ फड़क से रहे थे, वे शायद कह रहे थे—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेंदयन्त्यापो नैनं वहति मारुतः॥

जनता के सरल विश्वासी लोग एक क्षण के लिये डरे, वे घबड़ाये कि न मालूम कोई गलती तो नहीं हुई, पर जो जोर के नारे दिये गये, तो वह उन पैशाचिक कृत्यों के लिये चल पड़ी, जिनके लिये नेताओं ने उसे भड़काया था। उसने क्या किया, इसका क्या वर्णन किया जाय। उसने सभी कुछ कुकर्म किये जो किये जा सकते हैं।

धर्म भी कैसी चीज है कि मनुष्य को बिल्कुल पशु बना सकती है।

१६

हिन्दू किसान तथा गरीबों को यह धारणा न मालूम कैसे हो गई थी कि कुछ धनी हिन्दू भले ही लूटे तथा मारे-पीटे जायँ उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ेगा। फिर उनके पास था ही क्या जो कोई उनको लूटता ? डर तो उसे होता, जिसके पास कुछ मालमता होता।

पर उनकी यह धारणा गलत निकली। जिस समय लोग पुरोहित जी को मार रहे थे, उसी समय वहाँ के सब हिन्दू क्या गरीब और क्या अमीर सब लुट रहे थे। कोई भी नहीं बचा। इसी प्रकार बड़े गाँव में भी हुआ। जो मुसलमान पिछड़ जाने के कारण दशरथ बाबू के घर में घुस नहीं

पाये, वे लोग अन्य हिन्दुओं के घर घुस गये।

जैसे शराब का नशा होता है, उसी प्रकार लूट तथा हत्या का भी नशा होता है। जब एक बार लूट या हत्या चढ़ जाती है, तब लूटनेवाला या हत्यारा कहीं नहीं रुकता। फिर जब इतने लोग एक साथ हों, किसी तरफ से कोई बाधा न हो और ऐसे लोग कट्टरता के जाम पिये हुए हों, तो उन्हें क्या फिक्र रहेगी।

फिर भी दशरथ बाबू के घर में जो कांड हुआ, उसमें बदले का पुट होने के कारण उसका रूप कुछ दूसरा हुआ था, पर हिन्दू किसानों तथा गरीबों के घर लूट केवल इस कारण हुई कि वे अभागे हिन्दू थे। दशरथ-बाबू यदि मुसलमान होना स्वीकार भी कर लेते तो शायद नहीं बचते, पर हिन्दू किसान तथा गरीब ज्योंही शोरबा पीकर मुसलमान बनने के लियें राजी हो गये, त्योंही उनकी जान बख्श दी गई। हाँ, माल किसी का नहीं बचा। हल, बैल, गैंती, फरसा, खुरपी जो कुछ जहाँ मिला, सब लूट लिया गया। घरों में भी अक्सर बिना कारण आग लगा दी गई यद्यपि आग लगाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी।

इन लूटों के दौरान में एकाध जगह बहुत नाटकीय परिस्थितियाँ हुईं। रहमत और बलदेव नाई दोनों किसान सभा में आते-जाते थे, दोनों पास ही के गाँव के थे। जब बलदेव के घर रहमत अपने साथियों के साथ पहुँचा तो बलदेव ने कहा—रहमत, भाई मुझे भी मारोगे? हम तो कोई जमींदार नहीं हैं।

रहमत के चेहरे पर कुछ देर के लिये एक छाया-सी पड़ गई, पर वह जल्दी ही सम्हल कर मुँह फेरते हुए बोला—यह मजहबी लड़ाई है।

बलदेव ने किसान सभा के व्याख्यान खूब सुने थे, बोला—पर हम लोगों का मजहब क्या? हम तो गरीब हैं।

रहमत के साथी कुछ देर तक इनकी बात सुनकर ठिठककर खड़े हो गये थे, पर वहाँ तो लूट की जल्दी थी। यह डर था कि कहीं खाली हाथ

न रह जायँ, इसलिये इनकी बात खतम भी नहीं हुई और लोग लूट-पाट में लग गये। स्वयं रहमत को न मालूम क्यों कुछ लेने की हिम्मत नहीं हुई। वह ठिठककर वहीं खड़ा रह गया।

बलदेव भी समझ गया कि कहने-सुनने से कुछ न होगा। वह चुप-चाप खड़ा रुआंसा-सा होकर अपने घर की लूट देखने लगा; नाई होने के कारण उसके घर में कपड़े-लत्ते कुछ अच्छे थे, क्योंकि बाबुओं के सब पुराने-धुराने कपड़े उसे मिल जाया करते थे। कहीं से कोट मिला था तो कहीं से धोती। कपड़ों की कमी के इस युग में भी उसके यहाँ कपड़ों की कमी नहीं थी। इसलिये लूटनेवाले फौरन सबसे पहले कपड़ों की तरफ लपके थे और बात की बात में कमरा साफ हो गया था। कुछ ने तो वहीं पर लूटा हुआ कोट-कपड़ा पहन लिया और पास ही रखा हुआ नाई का आइना उठाकर उसमें चेहरा देखने लगे।

नाई का एक-एक अस्तुरा और नहनी तक जब लूट ली गई, यहाँ तक कि कुछ भी बाकी नहीं रहा तो लुटेरे उसकी औरतों को पकड़ने लगे। इस पर बलदेव रहमत के पैरों पर गिर पड़ा, बोला—सब तो ले लिया अब इज्जत क्यों लेते हो, हैं तो हम तुम्हारे किसान भाई ही।

रहमत योंही इस बात से मन ही मन बहुत असन्तुष्ट था कि वह यहाँ कुछ भी नहीं लूट पाया था। अब जो उसने यह सुना तो वह झल्ला गया। पैर छुड़ाकर बोला—किसान भाई हो तो क्या, हो तो हिन्दू ही।

बलदेव उसी प्रकार पैर के पास पड़ा हुआ, बोला—हम तो सबका जूठन खाते हैं, हम कौन बड़े भारी ब्राह्मण हैं। हिन्दुओं की भी डाढ़ी मूड़ता हूँ और मुसलमानों की भी कलम बनाता हूँ। हम धरम क्या जानें, हमें बचाओ।

इस समय तक भीड़ के लोगों ने बलदेव की बहन तथा स्त्री को पकड़ लिया था, वे बुरी तरह चिल्ला रहीं थीं। घर के छोटे बड़े लड़के भी जोर से रो रहे थे। शायद सबसे बड़ा लड़का भाग गया था।

रहमत को एक क्षण के लिये दया आई, पर उसने जो भीड़ की ओर देखा तो बोला—बेकार की बातें न करो। मुसलमान होते तो काहे को ये दिन देखने को मिलते।

बलदेव ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—लाओ तो यहाँ क्या है मुसलमान बना लो।

रहमत बोला—बन जाना ..

बलदेव ने खड़े होते हुए कहा—तो पहले इनको तो बचाओ।

रहमत इस अनुरोध के लिये तैयार नहीं था। बोला—किनको बचाऊँ?

इस समय तक खींचा-खींची में बलदेव की बहिन करीब नंगी हो गई थी। बलदेव की स्त्री जमीन पर गिर पड़ी थी, पर उसके कपड़े अभी उतर नहीं पाये थे। पागल की तरह बलदेव ने कहा—इनको बचाओ, देखत नहीं हो यह हमारी बीबी और बहिन हैं, दुहाई, बचाओ।

रहमत बड़ी आफत में फँस गया था। कल तक वह बहुत शरीफ किसान था। कभी उसने किसी की एक बाली भी नहीं चुराई थी। उसे औरतों की बेइज्जती पसन्द नहीं थी, फिर उसके विवेक ने उसे बताया कि जब बलदेव मुसलमान होने जा रहा है, तब कोई कारण नहीं कि अब उसे क्यों जलील किया जाय। यह तो मजहबी लड़ाई है और जब मजहब कबूल कर लिया तो फिर काहे की लड़ाई है। वह फिर भी क्या करे यह समझ में नहीं आ रहा था। उधर स्त्रियाँ और बच्चे कोहराम मचा रहे थे। यह एक ऐसा चीत्कार था जो और किसी का दिल दहलावे या न दहलावे, रहमत का दिल दहलाने के लिये यथेष्ट था।

वह आगे बढ़ा और जहाँ पर लोग उन औरतों पर टूटे हुए थे, वहाँ पर पहुँचकर बोला—ठहर जाओ जी ..

एक मिनट के लिये सन्नाटा छा गया। उन आदमियों ने हाथ रोक लिया। उन औरतों ने चिल्लाना बन्द कर दिया। इतना मौका पाते ही बलदेव की बहिन जो नंग-धड़ङ्ग जमीन पर पड़ी हुई थी, उठी और कोने

दिन के तीन बजे होंगे, या शायद अभी न बजे हों। एकाएक दूर से ऐसी आवाज मालूम पड़ी जैसे किसी बाँध पर सुनाई पड़ती है। बहुत अजीब आवाज थी। सबने कान खड़े कर सुना, पर किसी की समझ में नहीं आया कि क्या है। ये लोग फिर अपना-अपना काम करने लगे। लड़ाई के कारण लोग सब तरह की आवाज के आदी हो चुके थे। न मालूम कोई टैंकों का ही बटेलियन जाता हो या सौ-दो-सौ मोटरें एक साथ जाती हों।

पर यह आवाज बढ़ती ही गई और कुछ देर में यह सबकी समझ में आ गया कि यह अपार जनसमूह की आवाज है। सबके कान खड़े हो गये। ध्यान से देखा गया तो मालूम हुआ कि दो-तीन घंटा पहले तक जो मुसलमान नौकर या बेगारी मकान के अन्दर और बाहर तरह-तरह के काम कर रहे थे, उनमें से एक भी नहीं था।

दशरथ बाबू ने जो यह देखा तो वे लोगों को सान्त्वना देते हुए और शायद अपने को भी सान्त्वना देते हुए बोले—आज मुसलमानों के जुम्मा का नमाज है, शायद इसीलिए गये हुए हैं। अब आते ही होंगे, शायद वे ही शोर मचाते हुए आ रहे हैं।

इसके बाद पन्द्रह मिनट भी नहीं बीता था कि खासपुरवा की तरफ से मकानों का जलना दिखाई पड़ा। अब तो सब लोग सन्नाटे में आ गये। जहाँ कुछ मिनट पहले सबके चेहरे पर उत्सव का आनन्द था वहाँ अब आतंक दिखलाई पड़ा। विशेषकर बाहर से आई हुई स्त्रियों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

रेनुका अपने कमरे से बाहर नहीं आई थी, न उसने यह शोर ही सुना था। लोगों ने जाकर उसे बताया तो उसके चेहरे की मुर्दनी दूर हो गई। वह मन से यह चाहती थी कि किसी प्रकार इस विवाह में बाधा पहुँचे। इस आनेवाले हंगामे में उसने इसकी सम्भावना देखी। उसने बाहर निकलकर उत्साह के साथ दूर से आती हुई आवाज को सुना, पर

जब उसने यह देखा कि खासपुरवा के मकानों में आग लग रही है तब उसका चेहरा फक पड़ गया। वह किसी से कुछ कह न सकी, पर वह समझ गई कि क्या हो रहा है। वह समझ गई कि जरूर पुरोहित जी पर हमला है और शायद क्या जरूर परिमल पर भी है। इस प्रकार दो-तीन मिनटों के अन्दर रेनुका के कई भावान्तर हुए। उसकी ऐसी हालत हुई कि उसे भय लगने लगा कि वह बेहोश हो जायगी। उसने जल्दी से अपने पास की दीवार को पकड़ लिया और फिर सम्हल कर पास की एक कुर्सी पर बैठ गई।

कुछ देर में खासपुरवा के भागे हुए दो-एक हिन्दू आते दिखाई दिये, पर उनकी बात-चीत दशरथ बाबू तथा अन्य पुरुषों से हुई। क्या बात-चीत हुई यह दशरथ बाबू ने भीतर आकर नहीं बताया। स्त्रियाँ अनुमान करती रहीं।

थोड़ी ही देर में यह पता लग गया कि आफत सिर्फ खासपुरवा पर नहीं है। चारों तरफ के गाँव में बावेला मचा हुआ था। अक्सर आग भी दिखाई पड़ रही थी। थोड़ी देर में भयंकर शोर मचाती हुई और तरह-तरह के साम्प्रदायिक नारे देती हुई एक बहुत बड़ी भीड़ बड़ा गाँव भी आ पहुँची और करीब-करीब दौड़ती हुई दशरथ बाबू के मकान में घुस पड़ी। हजारों आदमियों ने एक साथ इधर हमला किया और उनके सम्मिलित कंठ से नारे निकले, इससे पहला काम तो यह हुआ कि घोड़े-हाथी जहाँ बँधे थे वे रस्सी तुड़ा-तुड़ा कर भाग गये। हाथी भागे तो कुछ लोग कुचल भी गये। इससे आई हुई जनता का रोष और भी बढ़ा और वे और भी क्रोध के साथ जमींदार के मकान के हाते में घुस पड़े।

जो लोग हाथी के पैरों तले कुचल गये या घोड़ों की टाप से गिर पड़े उनको भीड़ ने और भी कुचल दिया। सब लोगों को इस बात की जल्दी थी कि गहना-कपड़ा लूटें। सबको मालूम था कि शादी की तैयारी है और हजारों के वारेन्यारे हो रहे थे। जिधर देखो उधर ही लोभनीय

पदार्थ थे। सामने ही एक शामियाने के नीचे मिठाइयाँ जमा थीं। जनता उन पर टूट पड़ी और खूब खाई। कुछ लोग तो धक्के के मारे मिठाइयों के अन्दर घुस गये। बड़ी मुश्किलों से उनकी जान बची, यों न बचती पर भीड़ यह नहीं चाहती थी कि मिठाई खराब हो। दशरथ बाबू ने हजारों की तैयारी की थी पर फिर भी बात की बात में यह सब मिठाई कहाँ गई, पता नहीं लगा। यही हाल सब तरह की खाने की चीजों का हुआ।

जिस समय साधारण भीड़ खाने में व्यस्त थी उस समय जो पहले से तैयार थे, वे गहने-कपड़े लूटने पर लगे हुए थे। भीड़ में करीम और रहीम दोनों के दल भी थे। ये ही लोग गहनों के कमरे में पहुँचे थे। बात यह है कि ये लोग कई दिन से चोरी की फिक्र में थे, सब सुराग ले चुके थे, पर मौका नहीं लगा था। रहीम ने जो देखा कि करीम का दल और उसका दल दोनों वहाँ हैं, तो एक बार उसकी आँखों में खून आ गया। पर राजनीतिज्ञों की तरह चोर लोग भी मौका खूब पहचानते हैं फौरन रहीम ने करीम से हाथ मिलाया और कुछ बातें हो गयीं। इन लोगों ने चीजों का ऐसा संगठन किया कि इस कमरे में भीड़ का कोई और आदमी आ नहीं पाया। कहना न होगा कि ये लोग खूब चिल्ला-चिल्ला कर लीगी नारे लगाते जाते थे।

बाकी भीड़ में से जिसके हाथ जो कुछ लगा वह उसी को लेकर अपने घर चला गया। जो लोग कोई अच्छी चीज पा गये वे फौरन चले गये। बहुत से लोग जिनका मकान करीब था दो-दो खेप कर चुके। थोड़ी देर में भीड़ बहुत-कुछ छँट गई।

अब हम इस दुखद दृश्य का अधिक वर्णन न करेंगे। जमींदार के घोड़े, गाय, कुत्ते, संक्षेप में जो कुछ भी ले जाया जा सकता था सब ले जाया गया। घंटे भर बाद वहाँ जो परिस्थिति थी, वह यों थी।

दशरथ बाबू को एक पेड़ से पैर से कमर तक कसकर बाँध दिया

गया था। उनका सिर कुछ लटक रहा था। पता नहीं वे जीवित थे या मर चुके थे। उनके शरीर पर कई तरह के घाव थे। जगह-जगह खून टपक रहा था।

रूपवती की यह हालत हुई कि जो लोग पहले उसके कमरे में घुसे उन लोगों ने रूपवती के कीमती विस्तरों को लेने के लिये उसको पलँग पर से ढकेल दिया। दो-एक ने शायद उस पर पैर भी रख दिये। फिर जब कमरा बिल्कुल खाली हो गया, यहाँ तक कि पलँग की लकड़ियाँ भी तोड़-तोड़ कर बँट गयीं, तब कुछ लोगों ने रूपवती की ओर ध्यान दिया। एक ने कहा—यह देखो कैसी मक्कर मार कर पड़ी है ?

नतीजा यह हुआ कि उसे वहाँ से निकाल कर बाहर लाया गया। उसकी साड़ी तो पहले ही जा चुकी थी। सिर्फ नीचे एक टुकड़ा-कपड़ा किसी तरह उसके लज्जास्थान को ढकता हुआ बाकी था। अब एक ने उसे भी उतार लिया, रूपवती को अब भी होश था, इसलिये उसने हाथ रख कर लज्जा ढँकने की कोशिश की। इस पर एक अधेड़ उम्र का मुसलमान उसको जबर्दस्ती चित कर उस पर ऐसे बैठ गया जो बहुत ही भद्दा था। दो-एक ने पीछे से उस आदमी के सर पर दो-एक थपड़ी लगाई, पर जब वह किसी तरह अपने दुष्कृत्य से बाज नहीं आया तब एक ने उसे चादर ओढ़ा दिया। इसी प्रकार रूपवती पर एक के बाद एक, कई ने बलात्कार किया और वह वहीं मर कर ढेर हो गई।

घर में जो अन्यान्य स्त्रियाँ थीं, उनमें से किसी का भी पता नहीं था। रेनुका का भी पता नहीं था।

१८

खासपुरवा में जो घटनायें हुई थीं, उनका विवरण यों है—

जब आक्रमणकारी भीड़ आई भी नहीं थी, अभी दूर ही थी, तब कुछ लोगों ने आकर पुरोहित जी को यह खबर दी कि विशेषकर उन्हीं को

मारने के लिये एक भीड़ आ रही है, इसलिये अच्छा हो कि वे भाग जायँ।

परिमल भी वहाँ पर खड़ा था, उसने भी यही सलाह दी पर पंडित जी ने किसी की नहीं सुनी। वे गीता के श्लोकों का पाठ करने लगे। इन दिनों उनका समय पूजा-पाठ में ही जाता था यद्यपि अब पूजा-पाठ में वे किसी मूर्त्ति का उपयोग नहीं करते थे। वे जिस जगह में रहते थे, उसमें कोई किवाड़ा भी नहीं था। एक तरह से चौपाल-सा था। वे उसी में एक स्थान पर बैठ कर अपना पाठ करने लगे। उन्होंने पहले यह श्लोक पढ़ा—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्आपो नैनं वहति मारुतः॥
अशोष्योऽयम् अदाह्योऽयम्··

उनके चेहरे पर कोई भी उद्वेग या परेशानी का चिन्ह नहीं था। वे श्लोक पढ़ते जाते थे और उनका चेहरा एक दिव्य तेज से उज्वल होता जाता था।

किसी ने इसके बाद उनसे कुछ कहना बेकार समझा। फिर किसी को कुछ कहने का मौका भी नहीं मिला। भीड़ एक तूफान की तरह उमड़ती हुई बात की बात में वहाँ पहुँच गई। मालूम होता था कि ये लोग अपने सामने कुछ नहीं चलने देंगे। टिड्डी दल की तरह अपार भीड़ थी। गगनभेदी नारे थे।

परिमल पुरोहित जी के पास ही डटा रहा। उसके हाथ में कोई अस्त्र यहाँ तक कि एक डंडा भी नहीं था। होता भी तो इस भीड़ के सामने कुछ वश न चलता। भीड़ की पहली लहर जो आई तो पुरोहित जी के प्रशान्त चेहरे को देखकर और शायद उनके द्वारा गाये गये श्लोकों को सुनकर ठिठक कर खड़ी हो गई। भीड़ के लोग सभी कुसंस्कार-ग्रस्त थे। आज कुछ महीनों से लीग के प्रचार-कार्य के कारण वे चाहे हिन्दू पूजा-पाठ को दूसरी निगाह से देखने लगे हों, पर वे हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के पूजास्थानों और पूज्यों की श्रद्धा में पैदा हुए थे तथा पले थे। एक

साधारण मुसलमान के लिये दरगाह या दुर्गा या षष्ठी उतनी ही पवित्र थी। दोनों पूज्य स्थानों के पास जाकर वे भय तथा श्रद्धा से और श्रद्धा से अधिक भय से पीड़ित हो जाते थे।

जो भीड़ के लोगों ने पुरोहित जी को मंत्र पढ़ते हुए देखा तो वे मंत्र से रुद्धवीर्य-सर्प की तरह खड़े हो गये। पर उनके साथ उनके नेता भी थे, जिनको निश्चित हिदायतें मिली हुई थीं। भीड़ हिचकिचाई, पर वे नहीं हिचकिचाये। उन लोगों में से एक ने जोर का नारा दिया—

अल्लाहो अकबर।

भीड़ ने गगनघोषी निनाद से इसकी आवृत्ति की। पुरोहित जी से भीड़ पाँच हाथ पर खड़ी थी, भीड़ ने जो कसकर नारा दिया तो पुरोहित जी का चेहरा जैसे एक मुहूर्त के दशमांश के लिये फक पड़ गया, पर वे फौरन सम्हल गये और फिर वे गीता के उन्हीं श्लोकों की आवृत्ति करने लगे—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो नैनं वहति मारुतः॥

फिर नारा दिया गया—पाकिस्तान...

भीड़ ने बड़े जोर से कहा—जिन्दाबाद।

यह मानो एक सिगनल-सा था और लोग पुरोहित जी पर टूट पड़े। क्या से क्या हो गया पता नहीं लगा, पर देखा गया कि पुरोहित जी पड़े हुए हैं और फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ा। परिमल ने भी देखा कि पुरोहित जी पर हमला हो गया, पर इससे आगे वह भी न देख सका क्योंकि उस पर भी लोग टूट पड़े और वह गिर पड़ा। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसकी आँख के ही सामने शकूर था और वह इस भीड़ के नेताओं में मालूम होता था। इससे आगे उसे कुछ समझने-बूझने का मौका ही नहीं मिला। बस इतना ही मालूम हुआ कि वह गिर पड़ा है और उस पर न मालूम कितने लोग खड़े हैं।

एकाएक उस टिड्डी दल की तरह भीड़ में से नक्कारे की तरह आवाज़ से किसी ने कुछ कहा। भीड़ चुप हो गई और परिमल को ऐसा मालूम पड़ा कि भीड़ उस जगह से बाहर जा रही है। फिर परिमल को बेहोशी ने घेर लिया।

पछाँह से आये हुए उस लीगी नेता ने ही लोगों से कहा था कि वे हट जावें और नेताओं को अपना काम करने दें। दो आदमी फिर भी परिमल के ऊपर रह गये। परिमल को शायद कोई भयंकर चोट आई थी वह शायद यों भी उठ न पाता, पर उन दो आदमियों के कारण तो वह बिल्कुल ही न उठ सका। वह होश और बेहोशी के बीच की हालत में कुछ देर ठिठककर बेहोशी में पहुँच गया था।

पछाँह से आये हुए उस नेता ने कड़कती हुई आवाज में कहा—इसे यहाँ से ले जाओ, बस पुरोहित को रहने दो।

तदनुसार दो-तीन आदमी मिलकर परिमल को घसीटते हुए बाहर ले गये और उसे लेकर उस तरफ चले गये जिधर कभी रामदास के लोगों ने पड़ाव डाला था। इस समय इस प्रकार कितनी ही लाशें गिर चुकीं थीं और किसी ने आँख उठाकर न उसकी तरफ देखा, न उसको उठा कर ले जाने वालों की ओर देखा।

आश्चर्य यह है कि जिस चोट से परिमल शायद बेहोश था या पता नहीं मर गया हो, उसी चोट से पुरोहित जी को कुछ विशेष हानि नहीं हुई थी। पछाँह के उस लीगी नेता ने ज्योंही उनके ऊपर चढ़े हुए लोगों को हट जाने के लिये कहा, त्योंही वे उठकर बैठ गये और एक दफे भीड़ को देखकर फिर जोश के साथ कहने लगे—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो नैनं वहति मारुतः॥

भीड़ ने अब शोर मचाना बिल्कुल बन्द कर दिया था। सब लोग बिल्कुल ऐसी मानसिक स्थिति में हो गये थे, मानो वे एक नाटक देख

रहे हों। वे इस नाटक के एक भी शब्द या एक भी दृश्य को खोना नहीं चाहते थे।

पछाँह से आया हुआ वह नेता कुछ देर तक पुरोहित जी को किंकर्तव्य-विमूढ़ दृष्टि से देखता रहा, जैसे उसकी यह समझ ही में नहीं आ रहा हो कि वह क्या करे। इतने में ही किसी ने लाकर एक कुर्सी रख दी तो वह उस पर बैठ गया। फिर तो कई कुर्सियाँ आ गईं और कई गणमान्य लोग कुर्सी पर बैठ गये। पछाँह के उस नेता ने पुरोहित जी से नाटकीय ढंग से कहा—ऐ काफिर चुप रह···

पुरोहित जी ने उसकी ओर देखा। एक बार जैसे उनके चेहरे पर एक सिकुड़न आई, पर फिर वे निर्भय होकर उसी श्लोक को दोहराने लगे।

उस नेता ने इस पर आँखें लाल-पीली करते हुए कहा—तुमने बहुत बदमाशियाँ कीं, अगर जान प्यारी है तो अब मान जाओ। इस्लाम कबूल कर लो, बस जान बख्श दी जायगी।

पुरोहित जी अपना काम करते रहे। वे और भी जल्दी-जल्दी उस श्लोक को दोहराते रहे।

तब उस नेता ने कहा—ऐसे काम नहीं चलेगा। बड़ा पुराना चंडूल है, इसे खूब मारो।

इतना कहना था कि सारी की सारी भीड़ पुरोहित जी की ओर बढ़ने लगी, पर उस नेता ने अत्यन्त कर्कश आवाज में कहा—नहीं सब लोग नहीं इस काम के लिये जो तैनात हैं, वे यहाँ पर आवें।—पर जो लोग इस काम के लिये तैनात थे वे पीछे रह गये थे, अब जो हुकुम मिला तो भीड़ ने उनको आगे आने दिया। चार आदमी आगे आये। इनमें से दो के पास देशी तलवारें थीं।

उस नेता ने इन लोगों से कहा—इस सुअर के बच्चे को लेटा कर खूब डंडे से मारो, पर इतना न मारो, कि मर जाय। शायद अल्लाह की राह पर आ जाय।

तदनुसार वे लोग उस बूढ़े पर टूट पड़े और खूब धुनाई की। पर बूढ़े ने आह तक नहीं की। इशारा पाकर मारनेवाले अलग हो गये। इस मार के बाद पुरोहित जी में यह शक्ति नहीं थी कि वे पहले की तरह उठकर बैठ सकें, इसलिये वे लेटे ही लेटे शायद उस श्लोक को कह रहे थे, पर अब कुछ स्पष्ट सुनाई नहीं दे रहा था।

उस नेता के इशारे पर उन आदमियों ने पुरोहित जी को उठाकर बैठाया और जब वे गिरने लगे तो वे उन्हें पकड़े रहे, जिससे कि वे भीड़ के नेता की बात सुन सकें। कुर्सी पर बैठे हुए लोगों में से एक ने कहा—अहमद, ऐसे न होगा, पहले इन्हें कुछ खिलाओ-पिलाओ तब इन्हें ताकत पहुँचे तो ये कलमा पढ़ें।

सब लोग इसका मतलब समझ गये और हँस पड़े। पछांह के उस नेता का नाम ही अहमद था। उसने कहा—अरे यार मैं तो भूल ही गया था। कोई है, पंडित जी के लिये कुछ खाना तो लाओ।

मानो यह सब पहले से तैयार था। एक आदमी मंझली-सी डेकची लेकर सामने आया और उसमें से एक बड़ा सा हड्डा लेकर वह पुरोहित जी को खिलाने के लिये चला। पुरोहित जी ने जो उस हड्डे को देखा और समझ गये कि यह क्या है तो एक मिनट के लिये वे हतबुद्धि हो गये, पर फिर उनके चेहरे ने वही प्रशांत भाव धारण किया और वे अपनी शक्ति भर जोर के साथ उसी श्लोक को कहने लगे।

वह हड्डा वाला आदमी उनकी तरफ बढ़ा और उनके मुँह में उस हड्डे को देने की कोशिश करने लगा। पुरोहित जी ने मुँह बन्द कर लिया और मुँह दूसरी तरफ फेरने लगे। उन चार आदमियों ने उनको कस कर पकड़ लिया और फिर एक तरफ अकेले बूढ़े पुरोहित और दूसरी तरफ ये पाँच संडे जोर करने लगे। अन्त में यह हुआ कि पंडित जी का एक दांत टूट गया, मुँह से खून आने लगा। उनके मुँह पर उस हड्डी से लिपटा हुआ शोरवा, घी मसाला आदि पहले ही लग चुका था।

अब जो खून भी गिरा तो वे अजीब भयानक मालूम पड़ने लगे। भीड़ में से बहुत लोग हँस रहे थे मानो यह भाँड़ का नाच हो।

उस नेता ने कहा—जाने दो अब तो ये बेधरम हो गये। अब पूछा जाय।

पर कुर्सी पर बैठे हुए उस व्यक्ति ने कहा—अभी तो मुँह में कुछ गया ही नहीं। पहले पहल हड्डी थोड़े ही खाई जायगी, इन्हे कुछ शोरवा पिला दो।

फिर एक बार कहकहा हुआ। जनता को अब बहुत मजा आ रहा था। चार आदमी ने पुरोहित जी को पकड़ कर चित लेटा दिया और एक बँधना में कुछ शोरवा डाल कर उसकी टोंटी को जबर्दस्ती उनके मुँह में घुसा दिया।

पता नहीं कुछ शोरवा भीतर गया या नहीं, पर पुरोहित जी का सारा मुँह और गला शोरवे से नहा गया। जब बँधने का सारा शोरवा इस प्रकार बिखर गया या पुरोहित जी के पेट में चला गया, जो भी हो, तब ये दुष्ट माने; पुरोहित जी को छोड़कर ये अलग हो गये तो उनकी हालत ऐसी हो रही थी कि उनको पहचानना मुश्किल था। शोरवा, खून, पसीने से उनका चेहरा बिगड़ गया था। पर फिर भी न मालूम उनमें कितनी जीवनी-शक्ति थी, वे उठ बैठे और अपनी धोती के किनारे से मुँह साफ करने की कोशिश करने लगे।

पछाँह के उस नेता ने पुरोहित जी से कहा—देखो, अब तुम बच नहीं सकते। अगर अच्छा चाहते हो तो अब भी मान जाओ। हम कसम खाकर कहते हैं कि जैसा तुम हिन्दुओं में लीडर माने जाते थे अगर मुसलमान हो जाओगे तो वैसा ही हम तुम्हें सर आँखों पर रखेंगे।

पुरोहित जी ने अबकी बार उत्तर दिया—यह सब हिन्दू और मुसलमान, यह पार्टीबन्दी की बात है। हम जो हैं सो हैं। हमारे लिये जैसे हिन्दू हैं वैसे मुसलमान। हम भेद नहीं मानते।

अहमद ने कहा—भेद नहीं मानते तो तुम कलमा पढ़ लो।

पुरोहित जी बोले—नहीं, मैं जो हूं सो हूं।

अहमद ने अपने विकट चेहरे को विकटतर बनाते हुए कहा—अभी तो तुम्हारे साथ कुछ ज्यादती नहीं हुई है, हम तुम्हारी बोटी-बोटी काट डालेंगे। हम सिर्फ शेखी नहीं मारते हैं, हमें इस खित्ता को हिन्दुओं से पाक करना है।

पुरोहित जी बोले—मैं डरता नहीं हूं, तुम जो चाहे सो करो, पर मैं तुम्हारे डराने से कलमा नहीं पढ़ूँगा।—उन्होंने टूटे हुए दाँत को थूक दिया और मुँह पर के खून को पोंछ कर फिर श्लोक दोहराना शुरू किया।

अहमद ने पूछा—यह क्या तुम गालियाँ-सी दे रहे हो?

पुरोहित जी बोले—मैं किसी को गालियाँ नहीं देता, सब मेरे भाई हैं। तुम मेरे ऊपर ज्यादतियाँ कर रहे हो पर मैं तुम्हारी भी भलाई चाहता हूँ। इस श्लोक में यह कहा गया है कि आत्मा को न तो शस्त्र ही काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न पानी भिगा सकता है और न हवा ही सुखा सकती है।

—इसके माने यह है कि तुम मुसलमान नहीं बनोगे?

दृढ़ता के साथ पुरोहित जी बोले—नहीं, मेरे लिये मेरा रास्ता ठीक है तुम्हारे लिये तुम्हारा ..

अब अहमद का चेहरा कड़ा हो गया। उसने कहा—यह ऐसे नहीं मानेगा। इसका एक-एक करके हाथ-पैर काट लो तब यह मानेगा ऐसे ही सभा का लीडर थोड़े ही बना है।

उसने तलवार वाले आदमियों को इशारा किया। दोनों ने अपनी तलवारें निकाल लीं। तलवारों पर अभी तक खून लगा हुआ था यद्यपि तलवार वालों ने अपनी जान में उन्हें पोंछ कर ही म्यान में रखा था। बात यह है कि रास्ते में कुछ हिन्दू मिल गये थे, उन पर इन्होंने वार करके यह देख लिया था कि धार ठीक है या नहीं।

पुरोहित जी ने तलवारों की तरफ देखा और इन लोगों के चेहरों की तरफ देखा। ये लोग धमका नहीं रहे थे बल्कि सचमुच ही हत्या पर तुले हुए थे। पंडित जी को एक बार यह ख्याल आया कि न मालूम घर पर क्या बीत रहा है। चारों तरफ से शोर, मार-पीट आदि की आवाज आ रही थी! परिमल तो यहीं पर था पर न मालूम क्या हुआ, कहाँ गया। उन्होंने फिर खून थूका, एक बार बड़ी कमजोरी मालूम हुई, फिर प्रबल इच्छाशक्ति के प्रयोग से वे शान्त हो गये। वे अब उस श्लोक को चिल्लाकर नहीं बोले पर मन में उसके अर्थ को सोचते रहे। क्या वे डर-कर इस श्लोक की आवृत्ति कर रहे थे?

अब देर हो रही थी। अहमद ने हुकुम दिया—जो तय था वह करो।

दोनों तलवार वाले उनकी तरफ बढ़े, एक पास खड़ा हो गया और दूसरे ने उनका एक हाथ काट डाला। लद्-से कटा हुआ हाथ गिरा और खून का फौवारा चल निकला। पहले ही कुर्सी वाले लोग तैयार थे, वे हट गये नहीं तो फौवारे से जो खून चला वह उन पर गिरता। जनता के चेहरे पर प्रबल उत्तेजना थी। अब यह स्पष्ट था कि नाटक अपने अन्तिम दृश्य की ओर जा रहा था। पुरोहित जी पीठ के बल गिरने लगे, उनकी आँखें विलट-सी गईं।

अहमद के इशारे पर पीछे से दो-तीन आदमियों ने उनको थाम लिया, जिससे वे गिर न सके और जनता तथा नेता वेदना से काँपते हुए उनके चेहरे को देख सकें। अहमद ने पहले से कर्कशतर आवाज में कहा—मान जाओ अब भी वक्त है।

पर पुरोहित जी ने सिर हिला दिया। फिर इशारे पर उनका दूसरा हाथ भी काट लिया गया, यह हाथ एक बार में नहीं कटा तो दूसरे वार से काट डाला गया। इसी प्रकार पैर काट डाला गया, यहाँ तक कि हाथ-पैर हीन शरीर रह गया। खून की नदी बह चली। प्रत्येक बार

अहमद ने पूछा, दो हाथों के कटने तक पुरोहित जी ने सिर हिला कर न किया, फिर वे शायद बेहोश हो गये।

अन्त में उनका सिर भी काट डाला गया और उसे एक बर्छी की नोक पर रख कर भीड़ चली। पर भीड़ ने पता नहीं भ्रम से देखा या सचमुच देखा कि पंडित जी का मुँह खून से लथपथ है, बाल खून से भींगे हैं, पर जीभ कुछ हिल-सी रही थी, ओठ कुछ फड़क से रहे थे, वे शायद कह रहे थे—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो नैनं वहति मारुतः॥

जनता के सरल विश्वासी लोग एक क्षण के लिये डरे, वे घबड़ाये कि न मालूम कोई गलती तो नहीं हुई, पर जो जोर के नारे दिये गये, तो वह उन पैशाचिक कृत्यों के लिये चल पड़ी, जिनके लिये नेताओं ने उसे भड़काया था। उसने क्या किया, इसका क्या वर्णन किया जाय। उसने सभी कुछ कुकर्म किये जो किये जा सकते हैं।

धर्म भी कैसी चीज है कि मनुष्य को बिल्कुल पशु बना सकती है।

१९

हिन्दू किसान तथा गरीबों को यह धारणा न मालूम कैसे हो गई थी कि कुछ धनी हिन्दू भले ही लूटे तथा मारे-पीटे जायँ उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ेगा। फिर उनके पास था ही क्या जो कोई उनको लूटता ? डर तो उसे होता, जिसके पास कुछ मालमता होता।

पर उनकी यह धारणा गलत निकली। जिस समय लोग पुरोहित जी को मार रहे थे, उसी समय वहाँ के सब हिन्दू क्या गरीब और क्या अमीर सब लुट रहे थे। कोई भी नहीं बचा। इसी प्रकार बड़े गाँव में भी हुआ। जो मुसलमान पिछड़ जाने के कारण दशरथ बाबू के घर में घुस नहीं

पाये, वे लोग अन्य हिन्दुओं के घर घुस गये।

जैसे शराब का नशा होता है, उसी प्रकार लूट तथा हत्या का भी नशा होता है। जब एक बार लूट या हत्या चढ़ जाती है, तब लूटनेवाला या हत्यारा कहीं नहीं रुकता। फिर जब इतने लोग एक साथ हों, किसी तरफ से कोई बाधा न हो और ऐसे लोग कट्टरता के जाम पिये हुए हों, तो उन्हें क्या फिक्र रहेगी।

फिर भी दशरथ बाबू के घर में जो कांड हुआ, उसमें बदले का पुट होने के कारण उसका रूप कुछ दूसरा हुआ था, पर हिन्दू किसानों तथा गरीबों के घर लूट केवल इस कारण हुई कि वे अभागे हिन्दू थे। दशरथ-बाबू यदि मुसलमान होना स्वीकार भी कर लेते तो शायद नहीं बचते, पर हिन्दू किसान तथा गरीब ज्योंही शोरबा पीकर मुसलमान बनने के लिये राजी हो गये, त्योंही उनकी जान बख्श दी गई। हाँ, माल किसी का नहीं बचा। हल, बैल, गैंती, फरसा, खुरपी जो कुछ जहाँ मिला, सब लूट लिया गया। घरों में भी अक्सर बिना कारण आग लगा दी गई यद्यपि आग लगाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी।

इन लूटों के दौरान में एकाध जगह बहुत नाटकीय परिस्थितियाँ हुईं। रहमत और बलदेव नाई दोनों किसान सभा में आते-जाते थे, दोनों पास ही के गाँव के थे। जब बलदेव के घर रहमत अपने साथियों के साथ पहुँचा तो बलदेव ने कहा—रहमत, भाई मुझे भी मारोगे? हम तो कोई जमींदार नहीं हैं।

रहमत के चेहरे पर कुछ देर के लिये एक छाया-सी पड़ गई, पर वह जल्दी ही सम्हल कर मुँह फेरते हुए बोला—यह मजहबी लड़ाई है।

बलदेव ने किसान सभा के व्याख्यान खूब सुने थे, बोला—पर हम लोगों का मजहब क्या? हम तो गरीब हैं।

रहमत के साथी कुछ देर तक इनकी बात सुनकर ठिठककर खड़े हो गये थे, पर वहाँ तो लूट की जल्दी थी। यह डर था कि कहीं खाली हाथ

न रह जायँ, इसलिये इनकी बात खतम भी नहीं हुई और लोग लूट-पाट में लग गये। स्वयं रहमत को न मालूम क्यों कुछ लेने की हिम्मत नहीं हुई। वह ठिठककर वहीं खड़ा रह गया।

बलदेव भी समझ गया कि कहने-सुनने से कुछ न होगा। वह चुप-चाप खड़ा रुआँसा-सा होकर अपने घर की लूट देखने लगा; नाई होने के कारण उसके घर में कपड़े-लत्ते कुछ अच्छे थे, क्योंकि बाबुओं के सब पुराने-धुराने कपड़े उसे मिल जाया करते थे। कहीं से कोट मिला था तो कहीं से धोती। कपड़ों की कमी के इस युग में भी उसके यहाँ कपड़ों की कमी नहीं थी। इसलिये लूटनेवाले फौरन सबसे पहले कपड़ों की तरफ लपके थे और बात की बात में कमरा साफ हो गया था। कुछ ने तो वहीं पर लूटा हुआ कोट-कपड़ा पहन लिया और पास ही रखा हुआ नाई का आइना उठाकर उसमें चेहरा देखने लगे।

नाई का एक-एक अस्तुरा और नहनी तक जब लूट ली गई, यहाँ तक कि कुछ भी बाकी नहीं रहा तो लुटेरे उसकी औरतों को पकड़ने लगे। इस पर बलदेव रहमत के पैरों पर गिर पड़ा, बोला—सब तो ले लिया अब इज्जत क्यों लेते हो, हैं तो हम तुम्हारे किसान भाई ही।

रहमत यों ही इस बात से मन ही मन बहुत असन्तुष्ट था कि वह यहाँ कुछ भी नहीं लूट पाया था। अब जो उसने यह सुना तो वह झल्ला गया। पैर छुड़ाकर बोला—किसान भाई हो तो क्या, हो तो हिन्दू ही।

बलदेव उसी प्रकार पैर के पास पड़ा हुआ, बोला—हम तो सबका जूठन खाते हैं, हम कौन बड़े भारी ब्राह्मण हैं। हिन्दुओं की भी डाढ़ी मूड़ता हूँ और मुसलमानों की भी कलम बनाता हूँ। हम धरम क्या जानें, हमें बचाओ।

इस समय तक भीड़ के लोगों ने बलदेव की बहन तथा स्त्री को पकड़ लिया था, वे बुरी तरह चिल्ला रहीं थीं। घर के छोटे बड़े लड़के भी जोर से रो रहे थे। शायद सबसे बड़ा लड़का भाग गया था।

रहमत को एक क्षण के लिये दया आई, पर उसने जो भीड़ की ओर देखा तो बोला—बेकार की बातें न करो। मुसलमान होते तो काहे को ये दिन देखने को मिलते।

बलदेव ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—लाओ तो यहाँ क्या है मुसलमान बना लो।

रहमत बोला—बन जाना ..

बलदेव ने खड़े होते हुए कहा—तो पहले इनको तो बचाओ।

रहमत इस अनुरोध के लिये तैयार नहीं था। बोला—किनको बचाऊँ?

इस समय तक खींचा-खींची में बलदेव की बहिन करीब नंगी हो गई थी। बलदेव की स्त्री जमीन पर गिर पड़ी थी, पर उसके कपड़े अभी उतर नहीं पाये थे। पागल की तरह बलदेव ने कहा—इनको बचाओ, देखत नहीं हो यह हमारी बीबी और बहिन हैं, दुहाई, बचाओ।

रहमत बड़ी आफत में फँस गया था। कल तक वह बहुत शरीफ किसान था। कभी उसने किसी की एक बाली भी नहीं चुराई थी। उसे औरतों की बेइज्जती पसन्द नहीं थी, फिर उसके विवेक ने उसे बताया कि जब बलदेव मुसलमान होने जा रहा है, तब कोई कारण नहीं कि अब उसे क्यों जलील किया जाय। यह तो मजहबी लड़ाई है और जब मजहब कबूल कर लिया तो फिर काहे की लड़ाई है। वह फिर भी क्या करे यह समझ में नहीं आ रहा था। उधर स्त्रियाँ और बच्चे कोहराम मचा रहे थे। यह एक ऐसा चीत्कार था जो और किसी का दिल दहलावे या न दहलावे, रहमत का दिल दहलाने के लिये यथेष्ट था।

वह आगे बढ़ा और जहाँ पर लोग उन औरतों पर टूटे हुए थे, वहाँ पर पहुँचकर बोला—ठहर जाओ जी ..

एक मिनट के लिये सन्नाटा छा गया। उन आदमियों ने हाथ रोक लिया। उन औरतों ने चिल्लाना बन्द कर दिया। इतना मौका पाते ही बलदेव की बहिन जो नंग-धड़ङ्ग जमीन पर पड़ी हुई थी, उठी और कोने

में जाकर खड़ी हो गई। वह आँख से किसी कपड़े के टुकड़े को खोज रही थी, पर वहाँ कुछ होता तो मिलता। वहाँ तो सब लुट चुका था। उसने अपने हाथों से लज्जा की रक्षा की और जब उसे सामने एक थैले का फटा हुआ कोई एक हाथ बड़ा टुकड़ा सामने ही मिला तो उसने पीठ दीवार से लगाकर सामने उस थैले के टुकड़े को लगा लिया।

बलदेव की स्त्री भी उठ खड़ी हुई और वह भी जाकर उसी कोने में पहुँची जहाँ उसकी ननद उस अजीब परिस्थिति में खड़ी थी। अभी तक उसके शरीर पर धोती थी। जब वह उस कोने में पहुँच गई तब उसकी ननद ने उस थैले के टुकड़े को फेंक दिया और उसी से इस प्रकार लिपट कर और शायद उसके कपड़े के कुछ अंश को खींचकर अपने को ढँक लिया कि उसका केवल सिर ही दिखाई देने लगा।

यह सब एक मुहूर्त्त के अन्दर हो गया।

सारी भीड़ इन दो स्त्रियों की तरफ देख रही थी, पर जो लोग इससे पहले इन स्त्रियों को पकड़े हुए थे, वे रहमत की तरफ अग्नि नेत्रों से देख रहे थे। वह व्यक्ति जिसने बलदेव की बहिन को गिरा लिया था, बहुत रुखाई के साथ बोला—क्यों ठहर जायँ, क्या है—शिकार छूट जाने के कारण वह गुस्से से थर-थर काँप रहा था।

रहमत एक मामूली किसान था, सामाजिक हैसियत से वह हमेशा दबाया तथा सताया हुआ था। उसने इसके पहले किसी को ऐसे हुकुम नहीं दिया था। वह कुछ सकपका गया। एक तरह से माफी माँगने के तौर पर बोला—बलदेव तो मुसलमान हो रहे हैं।

उस आदमी ने कहा—मुसलमान हो रहे हैं तो क्या? हम कोई काजी या मुल्ला थोड़े ही हैं, इन्हें किसी मुल्ला के पास ले जाओ।

यह कहकर वह फिर औरतों की ओर लपका। औरतें फिर जोर से चिल्लाईं, साथ-साथ बलदेव ने भी कहा—बचाओ, बचाओ, हम मुसलमान हो रहे हैं। लाओ कहाँ है शोरबा, मैं पी लूँ। पर इन औरतों

को बचाओ।

वह आदमी फिर रुक गया, बोला—तुम मुसलमान हो गये, जाओ, तुमसे कोई नहीं बोलेगा, पर हमें मत रोको।

बलदेव उसी प्रकार पागल की तरह आधा रोता आधा चिल्लाता बोला—ये औरतें भी मुसलमान होंगी, इन्हें बचाओ।

इन औरतों ने मानो बलदेव की प्रतिध्वनि करते हुए रहमत से कहा—हम मुसलमान हो जायँगी, हमें बचाओ।

उनका यह कहना एक भयंकर विलाप की तरह दिगन्त में व्याप्त हो गया।

उस आदमी का चेहरा एक क्षण के लिये परेशान हो गया, पर उसने औरतों को सम्बोधित करते हुए कहा—ठीक तो है, तुम मुसलमान हो, हम भी मुसलमान हैं, हमसे डर क्या है?

बलदेव की बहिन थर-थर काँपती हुई सिर्फ इतना ही बोली—नहीं, नहीं, नहीं।

इस नहीं, नहीं शब्द में मानो दुनिया का सब विलाप, सारी शिकायत पुँजीभूत थी। वह नहीं, लहरों की तरह फैलकर फिर विलीन हो गया।

रहमत ने कहा—जाने दो मियाँ, खुदा से डरो।

अब वह आदमी खिसिया गया, बोला—यह कोई किसान सभा नहीं है, जब मुसलमान हो जायँगे तो देखा जायगा, अभी तो काफिर हैं।

यह कहकर वह आगे बढ़ने लगा तो रहमत ने उसका हाथ पकड़ लिया। अब रहमत के लिये यह बात केवल एक मनुष्यता की बात नहीं थी, अब इतने आदमियों के सामने उसकी इज्जत की बात थी।

उस आदमी ने रहमत के हाथ से अपने हाथ को छुड़ा लिया, और बिजली की तरह तेजी से न मालूम कहाँ से एक बड़ी-सी छुरी निकाल कर रहमत पर टूट पड़ा और उसे बात की बात में गिरा दिया। रहमत

बेचारा समझ भी नहीं पाया था कि क्या हो रहा है, वह हमले के लिये बिल्कुल तैयार न था। पर उसको जो चोटें लगी थीं वे बहुत भयंकर थीं और वह तड़पने लगा। आँखें बन्द हो गईं और वह मर गया।

जिसने रहमत की हत्या की थी; उसने एक बार भीड़ की तरफ देखा, भीड़ की आँखों में उसने पढ़ लिया कि उसने कितना बड़ा अपराध किया है। कामुकता के कारण जो अन्धापन उस पर सवार हुआ था, अब वह दूर हुआ और वह इस घटना को उसके सही अर्थ में देखने में समर्थ हुआ। एक क्षण के लिये भय के कारण उसका चेहरा पीला पड़ गया, पर अब पीछे हटने का मौका नहीं था। वह फौरन ही उस खूनी छुरे को लेकर बलदेव पर टूट पड़ा, बोला—साले तुमने किसान सभा का नाम लेकर उस बूढ़े को बहकाया। लो . कहकर उसने छुरे से वार किया।

पर जनता में से किसी ने या किन्हीं लोगों ने उसके उठे हुए छुरे-वाले हाथ को पकड़ लिया और उसे जमीन पर गिरा दिया। अभी थोड़ी देर पहले जब वह बलदेव की बहिन को पकड़े हुए था, उस समय जो व्यक्ति उसके बगल में इसलिये खड़ा था कि उससे वह औरत छूटे तो उसकी बारी आये, उसी ने उस पर पहला हाथ फेंका था, फिर तो जनता में से लोगों ने उसे गिरा लिया। जो लोग आसानी से आज कई खून कर चुके थे, वे रहमत की हत्या पर बहुत नाराज हुए थे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। उनके धर्म की शिक्षा के अनुसार औरों का खून-खून ही नहीं था। जैसे एक साधारण व्यक्ति किसी मनुष्य को मरते देखकर दुखी होता है, पर पशु को मरते देखकर कुछ भी नहीं सोचता, उसी प्रकार ये इस समय धर्मान्धता के कारण हिन्दुओं को पशु से कुछ घटिया ही समझ रहे थे।

पर रहमत की हत्या को देखकर ये तिलमिला गये थे। एक ने जिसने नाई का एक अस्तूरा ले लिया था, झुककर उस अस्तूरे से उस गिरे हुए आदमी का गला चाक कर दिया। चारों तरफ खून ही खून हो गया।

बलदेव की बहिन पहले ही थर-थर काँप रही थी अब जो उसने यह डबल-खून देखा तो वह बेहोश होकर गिर पड़ी। इस स्त्री के नंगे शरीर ने उस हत्याकाण्ड को एक अजीब ही रूप दिया।

बलदेव खड़ा-खड़ा बूचड़खाने में लाई गई गाय की तरह डर रहा था। उसे इतनी भी हिम्मत नहीं थी कि वह काँपे जिसके लिये उसके अन्दर से बहुत जोर से प्रेरणा हो रही थी। वह चाहता था कि कोई उसे न देखे। न मालूम किसके दिमाग में आ जावे और वह ढेर हो जावे। वह अपने विषय में इतना चिन्तित था कि उसने बहिन को बेहोश होकर गिरते हुए देखा तो भी उस ओर ध्यान नहीं दिया। उसकी स्त्री में बल्कि अधिक साहस बना हुआ था, उसने अपनी ननद को अपने कपड़े से जहाँ तक हो सके ढँक दिया।

इस समय बलदेव की ओर किसी का ध्यान भी नहीं था। कुछ लोग तो अधिक गड़बड़ी देखकर चले गये, पर कुछ लोग यह समझते हुए भी कि अब यहाँ से चल देना अच्छा है इसलिये डटे हुए थे कि वे देखना चाहते थे कि तमाशे का अन्त कहाँ होता है।

अन्त में भीड़ में से एक ने कहा—ये मुसलमान हैं, इनकी लाशों को तो उठाकर ले जाना चाहिये।

तदनुसार लोग उसी में जुट गये और बलदेव का घर खाली हो गया।

बलदेव ने सबसे पहले तो अपनी धोती का एक टुकड़ा बहिन को दिया। इस समय तक उसे भी कुछ होश आ गया था। थोड़ा पानी पीकर वह उठ बैठी। जाते समय मुसलमानों में से एक जो गाँव का ही था बलदेव से यह कह गया था कि तुम फौरन भाग जाओ।

बलदेव ने अपनी स्त्री से यह बात कही, पर स्त्री आनाकानी करने लगी, बोली—अब तो विपदा टल गई, अब भागने से क्या फायदा ?

नतीजा यह हुआ कि वे रह गये। बलदेव अपने घर में जिधर भी जाता उसे रोना आता। कहीं कोई भी जरूरी चीज नहीं रह गई थी,

यहाँ तक कि लुटेरों ने मिट्टी के थैलों को भी फोड़ दिया था। फिर भी जान बच गई और इज्जत बच गई, यह सोचकर सब लोग कुछ खुश ही हो रहे थे। जो फाँसीवाला है उसकी सजा कालेपानी की हो जाती है तो वह उसी में खुश हो जाता है।

उस मुसलमान ने बलदेव को जो भागने के लिये कहा था, वह बहुत ठीक सलाह थी। यह शाम तक मालूम हो गया। संध्या समय एक दूसरी भीड़ आई। इसमें शायद रहमत के घरवाले और उस आदमी ने जिसने रहमत को मारा था, उसके घरवाले भी थे। ये लोग समझते थे कि बलदेव की चालाकी के ही कारण वे मारे गये थे।

संक्षेप में यह है कि इन नये आक्रमणकारियों के हाथ न बलदेव की जान ही बची और न उसकी इज्जत ही बची। वे बलदेव को मारकर उसके घर की दोनों स्त्रियों को बाँधकर लेते गये और जाते समय उन्होंने उस घर में आग भी लगा दी।

२०

जिस समय दशरथ बाबू के घर की लूट हो रही थी, उस समय ही रेनुका को कुछ लोग पकड़ कर ले गये थे। जब भीड़ घुसी तो दशरथ बाबू मकान के बाहर थे। घटनाचक्र ऐसा हुआ था कि यद्यपि वे मकान के दरवाजे के करीब-करीब सामने ही खड़े थे, फिर भी किसी ने उनको पहचाना नहीं और वे भीड़ में समा गये। यदि वे चाहते तो वहाँ से भाग सकते थे। पर वे भागे नहीं।

यदि उन्हें रेनुका की फिक्र न होती तो वे भाग जाते। रूपवती के सम्बन्ध में उन्हें यह स्वप्न में भी सन्देह नहीं था कि एक अधेड़ स्त्री जो करीब आठ वर्ष से बिस्तरे पर पड़ी हुई थी, उस पर कोई बलात्कार भी कर सकता है।

जब उन्होंने देखा कि भीड़ रेनुका के कमरे के दरवाजे को तोड़कर

भीतर घुस गई, तब वे सामने आये और लोगों से कहने लगे कि वे उनकी लड़की को छोड़ दें और इसके लिये वे जो माँगें वही देंगे। कुछ लोग मानो उन्हीं की तलाश में थे, वे उन पर टूट पड़े, बोले—अब भी रुपये की शेखी दिखलाता है, हम रुपये भी लेंगे और लड़की भी लेंगे और तुम्हें भी मारेंगे।

इधर तो लोग उन पर टूट पड़े उधर लोग रेनुका के कमरे में घुस पड़े।

दशरथ बाबू ने केवल एक ही मुहूर्त्त के लिये उस आदमी को देख पाया था, पर वे पहचान गये। अभी एक साल हुआ, उन्होंने इस आदमी की जमीन छीन ली थी। यह आदमी आकर बहुत रोया था, गिड़गिड़ाया था, पर दशरथ बाबू ने शमीजान से कहकर इसे निकलवा दिया था। फिर यह देश छोड़कर कहीं चला गया था। शायद किसी खान में जाकर नौकर हो गया था। घटनाचक्र से वह इस समय यहाँ मौजूद था।

ऐसे ही कितने लोग थे। जमींदार दशरथ बाबू के विरुद्ध सबको कुछ न कुछ शिकायत थी, कुछ वास्तविक और कुछ अवास्तविक। जब लोगों को मालूम हो गया कि दशरथ बाबू मिल गये हैं, तो सैकड़ों लोग उधर ही दौड़ पड़े। सब लोग एक साथ दशरथ बाबू से अपना हिसाब निपटाना चाहते थे। सब लोग चाहते थे कि दशरथ बाबू को मारने में हाथ बंटावें।

इसलिये यह तय हुआ कि दशरथ बाबू को एक पेड़ के तने से ऊँचा करके बाँध दिया जाय। फिर तो उन पर लाठी, जूता, ढेला तथा जिनको यह सब कुछ न मिला उन्होंने थूक फेंका। थोड़ी ही देर में वे बेहोश हो गये। जब लोगों ने समझ लिया कि वे मर गये हैं, तभी लोग उधर से अलग हुए। एक आदमी तो आग लेकर उन्हें जलाने जा रहा था, पर किसी ने कहा कि मरने के बाद जलना यह तो हिन्दुओं में होता ही है। इसलिये वे जलाये नहीं गये, नहीं तो यह भी होता।

इस प्रकार बड़े गाँव के प्रबल प्रतापशाली जमींदार का अन्त हुआ।

अब हम देखें कि उनकी बेटी का क्या हुआ ?

जिस समय भीड़ बहुत मजबूत लकड़ी का दरवाजा तोड़कर उसके कमरे में घुस गयी उस समय रेनुका ने एक बड़ी-सी छुरी निकालकर आत्महत्या करने की कोशिश की पर वह पकड़ ली गई। एक गाँव के छैले ने आगे बढ़कर कहा—यह तुम्हारे लिये थोड़े ही है, तुम्हें तो अभी जिन्दगी के मजे लेने हैं। तुम क्यों मरोगी, तुम्हारे दुश्मन मरें।

ये बातें ऐसे लहजे में कही गईं कि रेनुका का होश बाख्ता हो गया। इस कथन में जो अभद्र इंगित था, उससे वह डर गई। एक क्षण के लिये उसे बाबू जी, परिमल, माता जी की याद आई। योंही भीड़ के कारण कमरे में साँस लेना मुश्किल हो रहा था, फिर इस बीच में कमरे की लूट शुरू हो गई थी। लोग नीचे से लेकर ऊपर तक जो भी चीज पाते जाते थे उसे हथियाते जाते थे। दीवार पर टँगी हुई तस्वीरों को खड़खड़ाकर उतारा जा रहा था, उसमें तो कई गिरते-गिरते चूर हो गयीं। तकिया, गद्दा, किताबें जो जिसे मिला, वह उसे दबाकर बाहर जाने की चेष्टा कर रहा था। चूँकि लोग एक साथ भीतर घुसने और भीतर वाले बाहर जाने की कोशिश कर रहे थे, इसलिये बड़ा शोर मचा हुआ था। नीचे बिछी हुई चीजों के उठा लेने के कारण कुछ धूल भी उड़ रही थी, यद्यपि अभी हाल ही में शादी के कारण मूँज फर्श, कालीन आदि उठाकर अच्छी तरह सफाई की गई थी।

इस प्रकार धूल, शोर, अभद्र दृष्टि, पिता, माता तथा प्रियजन के सम्बन्ध में चिन्ता, अपने सम्बन्ध में भय के कारण रेनुका अधमरी-सी हो चुकी थी। फिर कुछ लोग उसको पकड़ने की कोशिश कर रहे थे। कोशिश इस माने में नहीं कि वह कोई भाग रही थी, भागने का तो कोई रास्ता ही नहीं था, कोशिश इस माने में कि कई व्यक्ति एक साथ उसे पकड़ना चाहते थे, इसलिये कोई भी उसे कई मुहूर्त तक पकड़ नहीं सका।

फिर वह पकड़ ली गई।

जिस तरह बंशी से मछली पकड़ी जाती है उस तरह नहीं, बल्कि जिस तरह वह जाल में पकड़ी जाती है उस तरह। याने चारों तरफ से पकड़ी गई। कहीं उसे भागने का क्या हिलने का भी रास्ता नहीं रहा। उसके गले तक एक चीत्कार आकर रह गया, निकल नहीं पाया।

फिर वह बेहोश हो गई।

जब उसकी आँख खुली तो उसने अपने को आकाश के नीचे एक खेत में पाया। उसने समझा कि वह अकेली है, पर नहीं ज्योंही वह हिली, त्योंही कई आदमी उसके पास आ गये। वह फिर चुप हो गई। उसने कनखी से देखा तो तारों की रोशनी में यह मालूम हो गया कि ये लोग किसान हैं। उसे यह भी समझने में देर नहीं लगी कि रात बहुत अधिक हो चुकी है।

वह लेटे-लेटे सोचने लगी कि क्या अजीब घटना-चक्र है कि कहाँ तो उसकी शादी होने जा रही थी और कहाँ भाग्य के देवता बैठकर कुछ और ही फैसला कर रहे थे। जहाँ तक वह शादी न हो सका, वहाँ तक तो वह अपने को मुक्त समझ रही थी। पर कैसी मुक्ति थी ? बाबूजी, परिमल, माता जी शायद सभी मर चुके हैं। अब मुक्ति हुई तो क्या हुई ?

उसने किसी को भी मरते नहीं देखा था पर उसे शंका तो थी ही। यदि वह बेहोश न होती तो जिस समय वह लायी जा रही थी उस समय वह देख सकती थी कि बगल के उस विशाल कटहल के पेड़ में बाबूजी की लाश बँधी हुई है और माता जी की लाश रास्ते में पड़ी हुई है। पर वह तो बेहोश थी। वह यह सब कुछ भी नहीं देख पायी थी।

एकाएक उसे यह ख्याल आया कि जैसे वह जीवित है, सम्भव है वे लोग भी कहीं इसी तरह जीवित पड़े हों। किसी तरह जीते हुए तो काम बन जायगा। फिर इस बीच में पुलिस आयेगी और सम्भव है कि लोग बच जायँ। जब तक मनुष्य जीता है तब तक वह अच्छी घटना परम्परा की आशा रखता है।

रेनुका ने एक बार तारों से भरे आकाश को देखा, कितना परिचित था। इसी आकाश के नीचे वह कितनी बार बाबू जी तथा दो-एक बार परिमल के साथ घूमने निकली थी। हाँ, यही आकाश था, ये ही तारे थे। ऐसी ही जीवनदायिनी वायु थी।

उसने सोचा कि आखिर मक्कर किये कब तक पड़ी रहूँगी। भूख लग रही है, कुछ जाड़ा भी लग रही है और सबसे बड़ी जो तकलीफ थी वह यह थी कि जिस बिस्तरे पर वह लेटाई गई थी वह गुदागुदा होने पर भी कुछ मैली-सी थी और उसमें कुछ बदबू-सी आ रही थी। उसने सोचा क्यों न इन आदमियों से पूछा जाय कि वह कहाँ है।

उसने ऐसा ही करने का विचार किया। वह पहले हिली पर फिर भी उन आदमियों ने उस पर ध्यान नहीं दिया। फिर उसने जमुहाई ली। इतने पर भी जब किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया तो उसने कहा—अजी हम कहाँ हैं ?

उन तीनों ने आपस में धीरे-धीरे सलाह की फिर एक ने कहा—चुप रहो।···

यह आज्ञा सुनसान रात में एक झिड़की-सी फैल गयी। मानो ऊपर के तारों ने, नीचे की हवा ने, समस्त प्रकृति ने रेनुका से कहा—चुप रहो, चुप रहो। और क्या ? अब क्या रह गया ? केवल चुप रहना रह गया। न मालूम ये लोग कौन थे, क्या करने वाले थे, उसे यहाँ क्यों ले आये थे, यदि उसे कैद करना था। अब वह समझ चुकी थी कि उसको बन्द करनेवाले असली लोग और थे, ये तीन आदमी केवल पहरेदार थे, हाँ, यदि उसे कैद करना था तो इस तरह खेत में क्यों डाल रखा था ? किसी मकान में क्यों न रखा ? फिर इस तरह कैद करने के क्या माने होते हैं ?

उसको कुछ जाड़ा-सा लगने लगा। शायद कुछ ओस गिर रही थी। क्या करती वह उसी बदबूदार बिछौने को ओढ़कर पड़ी रही फिर वह

सोचती रही और सोचते-सोचते सो गयी।

अभी अच्छी तरह सबेरा नहीं हुआ था कि उसने सुना कि उसके पास ही कुछ लोग बातचीत कर रहे थे। बातचीत इधर की भाषा में ही हो रही थी। उसे कौतूहल हुआ कि वे क्या बात कर रहे थे। उसे ऐसा मालूम पड़ा कि लोग उसी के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं, जब उसने सुना तो यह अनुमान सत्य निकला।

आवाज कुछ शहरातू मालूम हो रही थी। ये लोग वे लोग नहीं थे जो उसके पहरे में थे और जिन्होंने उसे चुप रहने का हुकुम दिया था।

एक कह रहा था—बड़ा ही अफसोस है कि इस लड़की को लेकर हम लोगों में झगड़ा होने की नौबत आ गई। कहा भी है कि जर और जन के लिये ही सारे झगड़े होते हैं।

दूसरा बोला—हाँ यार अच्छे फसाद में जान फँस गई। मालूम होता है कि सभी इस पर आँख गड़ाये हुए थे। जो देखो वही अपना दावा पेश कर रहा है और यार कोई ऐसी खूबसूरत भी तो है नहीं।

पहला आदमी बोला—हाँ एक औरत है, उसके दस टुकड़े तो होंगे नहीं, अब जो हो सो हो। इतनी छोटी-सी बात पर लोग लड़ गये, अजीब बात है।

दूसरे ने कहा—पर है लड़की तकदीर की सिकन्दर। इसी आपसी झगड़े की वजह से वह अब तक बची हुई है, नहीं तो न मालूम अब तक क्या गत बनाई जाती और हम लोगों से कहा कि तुम लोग इसे अपने कब्जे में रखो, जब फैसला होगा तो देखा जायगा।

—कौन फैसला करेगा? किसी का दिमाग भी ठीक है जो फैसला करेंगे वे ही तो लड़ रहे हैं। मुझे तो ऐसा मालूम दे रहा है कि इस वक्त हमारे एका को बचाने का एक ही तरीका है और वह यह है कि हम लोग इस लड़की को मार डालें।

—हाँ अच्छी कही। यह बात तो हमें सूझी ही नहीं थी।

खेत में पड़ी हुई रेनुका एक बार सिहर उठी। ये लोग मारने की बात कितनी आसानी से कह रहे थे मानो कोई आलू-गोभी काटने की समस्या हो।

वे लोग बात करते जाते थे। पहले वाले व्यक्ति ने कहा—मान लो हम दोनों इस काम को कर डालें तो कैसा रहे। इससे दीन की भलाई ही होगी।

—ना बाबा, मैं इसमें राय नहीं देता। न मालूम लोग इस पर क्या कर बैठें। शायद हमीं लोगों के मारे जाने की नौबत आवे। मेरी तो अक्ल ही नहीं काम देती।

रेनुका सुन रही थी और उसके मन में अजीब भावनाएँ उत्पन्न हो रही थीं। सबसे बढ़कर जो भावना उसके मन में उठ रही थी वह थी आतंक की भावना। तो उसे इसलिये बचा रखा गया है कि उस पर और अधिक अत्याचार हो सके। उस अत्याचार की क्या प्रकृति थी, इसकी वह कल्पना नहीं कर सकती थी, पर वह इतना समझ रही थी कि उस अत्याचार को सहने के बजाय मर जाना ही अच्छा है। उसे बड़ा अफसोस हो रहा था कि वह आत्महत्या में सफल क्यों न हुई। वह ध्यान से इन लोगों की बात सुनने लगी। यदि ये अपना प्रस्ताव कार्यरूप में परिणत कर दें तो बड़ा अच्छा हो। वह इन हत्यारे लोगों की बात इस प्रकार सुनने लगी मानो ये उसके उद्धारक हों।

पर इन लोगों की बात अधिक दूर अग्रसर न हो सकी कि ऐसा मालूम हुआ कि कुछ लोग और आ गये। जो नये लोग आये, वे आते ही यह पूछने लगे—सब ठीक है न?

पहले जो लोग बातचीत कर रहे थे उनमें से एक ने कहा—हाँ, सब ठीक है।

आये हुए व्यक्ति ने पूछा—कहाँ है?

पहले व्यक्ति ने कहा—यह क्या पड़ी है?

आए हुए व्यक्ति के स्वर में परेशानी मालूम हुई, बोला—पड़ी है ? मैंने तो तुमसे कहा था कि अच्छी तरह रखना, अगर यहाँ से भाग जाती तो ? फिर कुछ ओस खा गई हो तो क्या पता ?

पहले व्यक्ति ने कुछ झुँझलाहट के साथ कहा—कोई हमारी पीर नहीं है जो सिर पर लिये-लिये फिरता ? गाँव में रखना ठीक इसलिये नहीं समझा गया कि न मालूम कौन पुलिस को इत्तला कर दे। गाँव में हैं तो सब मुसलमान, पर हर तरीके के लोग हैं।

आए हुए व्यक्ति ने घृणा के साथ कहा—यह क्या कहते हो मियाँ, आज सब मुसलमान एक हैं। कोई मुसलमान किसी मुसलमान के खिलाफ नहीं जा सकता। तुम्हारा दिमाग अभी उसी पुराने जमाने में पड़ा हुआ है और पुलिस की बात कह रहे हो, सो वह भी अपनी है।

पहले वाले व्यक्ति ने और भी झुँझला कर कहा—कोई बड़ा काम हो तो उसके लिये कोई तकलीफ भी झेली जाय। मैं तुम लोगों के नफ़्स के मजे के लिये कोई तकलीफ उठाने के लिये तैयार नहीं हूँ। तुम अपनी इस धरोहर को ले जाओ, मैं अब इसे न रक्खूँगा।

वह आदमी बहुत खुश होते हुए बोला—दो न, मैं तो तैयार हूँ। कहो अभी ले जाऊँ ?

उस व्यक्ति को यह याद आई कि इसी औरत के पीछे जिन लोगों का झगड़ा है उनमें से यह केवल एक दावेदार है, उसे सबकी तरफ से यह औरत रखने के लिये मिली थी, बिना किसी फैसले पर पहुँचे हुए इसे औरत दे देना दूसरों के साथ विश्वासघात होगा। यह सोचकर वह बोला—बस पंचों का फैसला हो जाय, उसके बाद ले जाओ।

अब वह आया हुआ आदमी बिगड़ा, बोला—बड़े पंच आये हैं। जान लड़ाने के बाद मैं इसे बचाकर ले आया, अब सब इसके दावेदार बने हैं।

अब तक पहले से खड़े व्यक्तियों में से केवल एक ही बोल रहा था,

अब दूसरे ने बातचीत में कूदते हुए कहा—तुम लोगों को एक औरत पर इस तरह कुत्तों की तरह लड़ते हुए शर्म नहीं आती ? क्या मुसलमानों में औरतें नहीं हैं, या अच्छी खूबसूरत औरतें नहीं हैं ?

अब वह आया हुआ आदमी बिगड़कर बोला—तुम खुद इस औरत को अपने लिये चाहते होगे, तभी ऐसी नसीहत की बातें कह रहे हो। क्या मैं तुम्हें नहीं जानता हूँ ? तुम बड़े दूध के धुले हो।

—दूध के धुले नहीं तो क्या तुम्हारी तरह कुत्ते हैं ? दिखाते हो कि दीन का काम कर रहे हो और यहाँ यह सब हवस लिये फिर रहे हो ?

वह आया हुआ आदमी शायद हाथा-पाई पर उतारू हो गया, पर और लोगों ने उसे रोक लिया।

इस आदमी के आने के पहले जो दो आदमी बातें कर रहे थे, उनमें से वह आदमी जो झगड़ा निबटाने के लिये आगे बढ़ा था बोला—कहा न कि जन सारे झगड़े की जड़ है। अब मैं तुम लोगों से कहता हूँ कि तुम लोग यहाँ से चले जाओ। जब तक पंच का फैसला न होगा तब तक कोई इर्द-गिर्द मत आओ।

जिस आदमी ने आए हुए आदमी को कुत्ता कहकर दुतकारा था, बोला—अब आप यहाँ से तशरीफ ले जाइए। आपका यहाँ आने का कोई मिजाज नहीं था। चोरी तिस पर सीनाजोरी।

वह आदमी अब भी क्रोध में था, बोला—मुझे यहाँ आने का सौ बार हक है। मैं उस औरत को ले नहीं जा सकता, पर मुझे उसे देखने का हक है। मुझे यह हक है कि मैं देखूँ कि हम लोगों ने जो चीज तुम्हारे पास जमा रखी है वह ठीक से रखी है या नहीं।

यह कहकर वह रेनुका की तरफ बढ़ा और उसका ओढ़ना हटाकर देखने को उद्यत हो गया। सचमुच उसने ओढ़ना हटा भी लिया। पर कुछ समझ कर उसने ओढ़ना फिर ढक दिया।

रेनुका जाग रही थी। उसने जो किसी को पास आते हुए सुना था

तो चौकन्नी हो गई थी। जब उसका ओढ़ना हटाया गया तो वह ऐसे सिमट गई जैसे छुईमुई को छू देने से वह सिकुड़ जाती है। वह चिल्लाने ही वाली थी कि फिर ओढ़ना ढक दिया गया।

शायद जिसने ओढ़ना खोला था और जिसने उसे कुत्ता कहा था वे दोनों फिर झगड़ रहे थे। उन दोनों के झगड़ने का विषय यह था। कि उस व्यक्ति को ओढ़ना हटाकर देखने का हक था या नहीं था।

इतने में शायद और लोग आ गये। अब दिन भी चढ़ चुका था। रेनुका उसी प्रकार मुँह ओढ़े पड़ी थी। वह अपने को सम्पूर्ण रूप से उस तिनके की तरह पा रही थी जिसे पानी बहाये लिये जा रहा है। उसके तरुण-मन में कितनी उमंगें थीं, कितना उत्साह था, कितनी उच्चाकांक्षाएँ थीं, पर अब क्या रहा था? उसके हाथ में तो कुछ भी नहीं था।

थोड़ी देर में किसी ने उसकी चादर फिर से खिसकाई। वह फिर सिमिट गई। धूप अच्छी तरह निकल चुकी थी। किसी ने कहा—उटो।

रेनुका ने सुना, यह तो किसी औरत की आवाज थी। उसने आँख खोल दी और जो उसने सामने एक मुसलमान बुढ़िया को खड़ा देखा तो वह एक मुहूर्त के लिये इतनी खुश हुई जैसे उसकी माँ उसके सामने आ गई हो। इतनी देर बाद एक औरत तो मिली।

यह औरत एक साधारण गाँव की औरत थी। चेहरे पर दो-चार चेचक के दाग थे, इसलिये उसका चेहरा जितना भद्दा था, उससे भी भद्दा मालूम पड़ता था। उसके दाँत ऊँचे-ऊँचे थे। कपड़ा मैला-कुचैला था।

पर फिर भी वह थी तो स्त्री, रेनुका को यह ख्याल हुआ कि वह एक स्त्री की बातों को कुछ तो समझेगी।

उस औरत ने फिर कहा—उटो?

रेनुका उठ बैठी। दूर से कुछ लोग उसकी गतिविधि को ध्यान से देख रहे थे, इसकी उसने परवाह नहीं की।

बुढ़िया बोली—चलो।

रेनुका उठ खड़ी होती हुई बोली—कहाँ ?

उस बुढ़िया ने कहा—पता नहीं, बैलगाड़ी में चलना है।

रेनुका में जो एकाएक आशा का संचार हुआ था वह बुझ गई। वह चारों तरफ देखकर मृतक की भाँति बोली—अच्छा चलो।

खेतों से होती हुई वह बुढ़िया चली और उसके पीछे-पीछे रेनुका। किसान अपने काम में जुटे हुए थे। जब वह उनके पास से गुजरती थी तो वे काम छोड़कर उसकी तरफ देखते थे। फिर आपस में कुछ काना-फूसी करते थे। रेनुका प्रत्येक चेहरे की तरफ देखती और न मालूम क्यों यह आशा करती कि यह व्यक्ति मेरा उद्धार करेगा, पर प्रत्येक क्षेत्र में उसे निराशा होती थी।

रेनुका यह जानने की कोशिश कर रही थी कि वह कहाँ है ? पर उसकी जान-पहिचान जो थोड़ी-बहुत थी वह सड़कों से थी, वह खेतों तथा पगडंडियों को क्या पहचानती ?

एक पोखरे के पास पहुँच कर उस बुढ़िया ने कहा—यहाँ पर मुँह-हाथ धोलो। फिर थोड़ी देर में बैलगाड़ी पर चलना है।

पोखरे पर बहुत से आदमी आते-जाते थे। ये सभी उसे ध्यान से देखते पर कोई न तो उसके पास आने की कोशिश करता और न उससे बात करता। इनमें से अधिकतर तो मुसलमान थे पर कुछ हिन्दू भी मालूम पड़ते थे। रेनुका एक डूबते हुए मनुष्य की तरह विशेषकर चुप-चाप इनकी दृष्टि आकर्षित करने की चेष्टा करती। वे लोग भी एक बार उसे बड़े ध्यान से देखते, फिर मानो डर जाते और उसकी तरफ फिर नहीं देखते।

रेनुका को हिन्दुओं के इस डरपोक आचरण से बड़ा दुख हुआ। वह जानती थी कि ये सब लोग जबरदस्ती मुसलमान बनाये जा चुके थे। ये अपना उद्धार तो करने में असमर्थ थे, दूसरे का उद्धार क्या करते ?

यदि रेनुका कुछ ध्यान से इनको देखती तो उसे यह मालूम हो जाता कि ये सब लोग बहुत डरे हुए थे और इनमें से कुछ पर मार-पीट के चिन्ह भी थे। मनुष्य को मनुष्यता से गिराकर उन पर जबर्दस्ती कर उनकी आत्मा का अपमान कर इधर से पाकिस्तान का रथ निकल गया था। पाकिस्तान के लिये क्या अच्छी नींव थी!

यों तो देखने में रेनुका के साथ इस समय केवल वह बुढ़िया ही थी, पर कुछ लोग और भी दूर से उसके साथ थे।

जब रेनुका पोखरे में मुँह-हाथ खूब धो चुकी और बुढ़िया के दिये हुये दांतवन से दांत साफ कर चुकी तो बुढ़िया ने उससे पूछा कि वह कुछ खायगी या नहीं।

खाने के नाम पर उसके मन में अजीब विचार उठे। वह तो पोखरे के किनारे बैठी-बैठी यही सोच रही थी कि पोखरे में डूबना सम्भव है या नहीं। शायद उसके विचारों को समझ कर, या कम से कम सावधानी के तौर पर बुढ़िया पास ही खड़ी थी। फिर पोखरा भी कुछ गहरा नहीं मालूम देता था। इन्हीं सब कारणों से उसने दाँतवन कर लिया था। अब जो इस पर खाने की बात आई तो उसे वह बहुत बुरी मालूम हुई। जिसका मर जाना ही अच्छा है, उसे खाने से क्या फायदा?

उसने मना कर दिया। तब बुढ़िया ने उसे ले जाकर एक पेड़ के नीचे बैठा दिया और जो लोग पीछे थे बुढ़िया जाकर उनसे कुछ बात-चीत करने लगी। क्या बातचीत हुई यह पता नहीं, पर जब बुढ़िया थोड़ी देर में लौटी तो उसके हाथ में फलों की एक पोटली थी।

रेनुका ने जो उसको पोटली के साथ आते देखा तो उसे बहुत क्रोध आया, उसके अन्दर जो जमींदार की बेटी थी, वह एक बार फिर उभरी पर उसने सोचा कि जब यह कुछ कहे तो कहूँगी यों तो इसके वश में ही हूँ।

उस बुढ़िया ने आकर उसके सामने उन फलों को रखते हुए कहा—यह लो!

रेनुका बोली—तुमको मैंने मना किया था फिर क्यों ले आई ?—उसने सामने से पोटली को उठाकर फेंक दिया। कुछ फल बिखर गये, कुछ पोटली में रह गये।

बुढ़िया ने पहले तो फलों को बटोरा, फिर बोली—देखो तुम अब यह न समझो कि घर पर हो। न मालूम लोग तुम्हारा क्या ख्याल करते हैं कि तुम्हारे खाने के लिये फल भेजा है। अगर तुम इन्हें न खाओगी तो तुम्हें जबर्दस्ती शोरवा वगैरह पिलायेंगे। जब तक बची हुई हो तब तक अच्छा ही समझो।

शोरवा से क्या मतलब था, रेनुका उसे समझ गई। परिस्थिति की वास्तविकता उसकी समझ में आ गई। उसके कानों में वे बातें कि जब तक बची हुई हो तब तक अच्छा ही समझो। एकमात्र व्यावहारिक नीति के रूप में गूँजने लगी। उसे सबसे बड़ा आश्चर्य इस बात का हुआ कि उसकी माँ का भी यही दर्शन-शास्त्र था।

बोली—पर भूख जो नहीं है।

उसका लहजा बदल चुका था। बुढ़िया ने भी इसको महसूस किया। बुढ़िया बोली—भूख लगे या न लगे एकाध खा लो, तब लोगों को कुछ इतमीनान होगा। नहीं तो ये लोग न मालूम क्या करें।

रेनुका ने फलों से कुछ उठा लिया। भूख तो लगी ही थी, एक बार जो मुँह में रखा तो खाती ही गई। बुढ़िया सामने बैठी ही रही। रेनुका ने उससे पूछा—क्यों बूढ़ी अम्मा, ये लोग कौन हैं ?

किसी ने इस बुढ़िया को इतने प्यार से बूढ़ी अम्मा नहीं कहा था। पर प्रश्न सुनकर वह कुछ डरती हुई इधर-उधर देखती हुई बोली—ये लोग बड़े सरकश हैं।—कहकर उसने फिर पीछे की ओर उस तरफ देखा जहाँ वे लोग बैठे हुए थे।

रेनुका दो-एक फल खाकर खाना बन्द कर देना चाहती थी, उसने ऐसा ही किया, पर बुढ़िया बोली—बेटी खा लो, खाओगी तो तगड़ी

बनी रहोगी, अभी न मालूम क्या-क्या मुसीबत भोगनी पड़े।

पता नहीं इस युक्ति से परिचालित होकर या और किसी युक्ति से परिचालित होकर रेनुका ने जो थोड़े से फल थे उन सबको खा लिया। फिर बोली—तुम लोग इन्हें समझाती क्यों नहीं ?

उस बुढ़िया ने सावधानी से पीछे की तरफ देखकर कहा—मेरे समझाने की भली चलाई। हम गरीबों की कौन सुनता है ? जो लोग मुझसे काबिल हैं और अच्छे घर की हैं वे सब समझा रही हैं पर कौन मानता है ?

रेनुका पोखरे की तरफ मुँह धोने के लिये चली तो साथ में बुढ़िया भी चली। अब उसका मुँह खुद ही खुल चुका था, बोली—क्या तुम समझ रही हो कि मुसलमान औरतें हिन्दुओं की औरतों का भगाया जाना पसन्द कर रही हैं ? आज घर-घर में रोना मचा हुआ है। एक न एक औरत हर घर में लाई गई है और उसकी वजह से सब मर्दों का इखलाक बिगड़ गया है। पर कौन अपने भाइयों और शौहरों के खिलाफ कुछ कहे ? मैं कहती हूँ इससे मुसलमानों का भला कभी न होगा। बुढ़िया की दृष्टि जैसे दूर भविष्य में पहुँच गई।

जो लोग दूर से खड़े होकर पहरा दे रहे थे, उनको शायद कुछ शक हुआ कि बुढ़िया कुछ कह रही है वे आगे बढ़ आये। बुढ़िया अब कह रही थी—मेरे समझाने से फल खा लिया, अच्छा किया, पर अब शोरवा भी पी लो। आखिर पीना ही है...

रेनुका समझ गई कि बुढ़िया ने बात क्यों बदल दी। वह यह भी समझी कि इस बुढ़िया पर भी इन लोगों का प्रबल आतंक छाया हुआ है। वह बिना कुछ जवाब दिये जल्दी मुँह धोने लगी।

इसके बाद उसे एक बैलगाड़ी पर चढ़ाया गया। इस गाड़ी में वह और बुढ़िया थी और गाड़ीवान। थोड़ी देर तक तो रेनुका बैठी रही, फिर वह गाड़ी पर सो गई। नींद भी कैसी अच्छी चीज है कि फाँसीवाला भी सोता है तो भूल जाता है कि कहाँ है।

२१

परिमल के घर में जब भीड़वाले पहुँचे तो वहाँ औरतों में परिमल की माँ, तथा दो बहिनें थीं। बुढ़िया कुछ दिनों से यह समझ रही थी कि पुरोहित जी मारे जायँगे ही इसलिये उसने यह तय कर रखा था कि ऐसी नौबत आते ही वह आत्महत्या कर लेगी। सच कहा जाय तो वह पति के हठ से प्रसन्न नहीं थी। वह चाहती थी कि कुछ दिनों के लिये सारा परिवार काशी जी चले, पर जब उसकी बात नहीं मानी गई तो उसने यही तय कर रखा था। उसे अपने पति की अहिंसा में बिलकुल विश्वास नहीं था, पर वह पति को छोड़ नहीं सकती थी।

ज्योंही भीड़ पास आई; त्योंही उसने अपनी साड़ी पर मिट्टी का तेल डाल लिया और आग लगाकर मर गई। उनकी दो लड़कियों ने भी इसी का अनुकरण किया। परिमल के भाइयों में एक तो गड़बड़ में भाग गया, एक मारा गया। सबसे छोटा था जिसकी उम्र तेरह साल थी वह पकड़ लिया गया। उसको भीड़ वालों ने ले जाकर यथाविधि शोरवा पिलाकर मुसलमान बना लिया।

रहा परिमल। सो वह पिता के पीछे खड़ा-खड़ा गिरा लिया गया था। उसी हालत में उसे उठाकर एक बाग में ले जाया गया था। वह मरा नहीं था, बल्कि बेहोश हुआ था। थोड़ी ही देर में उसे होश आया तो उसने अपने सामने हँसते हुए शकूर को देखा। परिमल को इस पर बड़ा क्रोध आया कि यह क्या क्या बनता था, अब लीगियों के साथ हिन्दुओं का मकान लूटने चला है।

उसने घृणा के साथ उसकी तरफ से मुँह फेर लिया और सोचा कि सब मुसलमान एक ही से हैं। इनमें कोई फर्क नहीं है। शकूर ने उसे क्या क्या सब्ज बाग दिखलाया कि मैंने मुसलमान-नौजवानों की सोसाइटी बनाई है उसका उद्देश्य यह है और वह है और यहाँ यह हालत है। यों

तो जो कुछ हुआ था उससे उसे बहुत निराशा थी। उसने अपनी आँखों के सामने यह देखा था कि जो आन्दोलन मजे में एक किसान क्रांति में परिणत हो सकता था, वह साम्राज्यवाद की कूटनीति तथा लीग की मूर्खता के कारण एक भयंकर प्रतिक्रियावादी धारा में परिणत हो गया था। न मालूम यह जाकर कहाँ रुकेगी। इस समय तो इसका कोई ओर-छोर नहीं ज्ञात होता था। जब शकूर ऐसा आदमी जिसके भाई को लीगियों ने मारा था इन लोगों में शरीक हो गया और एक साधारण उचक्के की तरह लूट के लिये तैयार हो गया, तो फिर क्या आशा है?

शकूर ने मानो परिमल के विचारों को पढ़ते हुए कहा—डरो मत, तुम दोस्तों में हो।

परिमल ने शकूर को ध्यान से देखते हुए कहा—बनो मत, मैंने तुमको अपनी आँख से उस हत्यारी भीड़ में देखा था और तुम शायद हमारे ऊपर लपके भी थे।

शकूर हँसा, बोला—हाँ जो कुछ तुमने देखा सब ठीक देखा, पर तुमने उसका मतलब नहीं समझा। देखना और बात है और समझना और। मुझ पर लोगों को योंही शक था अगर आज जब कि सब मुसलमान एक हो रहे थे, मैं उनसे अलग रहता तो वे मुझ पर शक करते और शायद मेरी भी मौत उसी तरह होती जिस तरह भाई साहब की हुई। लाश का भी पता न लगता। इस तरह हमने तय किया कि हमें दिखाना है कि हम भी उन्हीं में हैं और फिर भीतर-भीतर अपना काम जारी रखना है। मैंने इसीलिये तय किया कि तुम्हें बचाऊँ, उसका यही तरीका था।

अब परिमल को सब बातें समझ में आ गईं, उसने कहा—तो मुझे क्यों बचाया? पुरोहित जी को क्यों नहीं बचाया? फिर एकाएक उसे स्मरण आया कि शायद पुरोहित जी भी बच गये हों। उसने तो

उन्हें मारे जाते नहीं देखा था। वह प्रसंग से बाहर जाकर पूछ बैठा—वे बच गये न ?

शकूर का चेहरा थोड़ी देर के लिये फक पड़ गया। वह जानता था कि पुरोहितजी किस तरह मारे गये हैं। उसे उनकी स्त्री तथा लड़कियों के जल जाने का भी पता था, उसे सब पता था, पर उसने समझा कि अभी एकाएक सब बातें बताना ठीक न होगा। तदनुसार उसने कहा—पुरोहित जी की बात और थी। उन पर लीग के नेता खार खाए हुए थे। जैसे मैं तुमको उठाकर ले आया और किसी ने इधर ध्यान भी नहीं दिया, वैसे उनको उठाना मुमकिन न था। इसीलिये मैंने तुम्हीं पर अपनी निगाह रखी।

परिमल ने एकाएक बेचैनी से पूछा—तो क्या वे मर गये ?

शकूर ने झूठ बोलते हुए कहा—मैं तो तुम्हें लेकर आया, मुझे कुछ नहीं मालूम—उसने परिमल की तीक्ष्ण दृष्टि के सामने मुँह फेर लिया।

परिमल ने जो भी समझा हो उसने फिर अपने घर के विषय में कुछ नहीं पूछा, पर उसने चारो तरफ की खबरें पूछीं तो शकूर को जहाँ तक मालूम था वहाँ तक ठीक-ठीक बताया। एकाएक परिमल ने जमींदार दशरथ बाबू की बात पूछी, तो शकूर को जहाँ तक मालूम था पूरा पूरा बता दिया। जब परिमल को यह मालूम हुआ कि रेनुका को दुष्ट उद्देश्य से भगाया गया तो उसे बहुत दुख हुआ। न मालूम क्यों वह एक हद तक अपने को रेनुका के दुर्भाग्य के लिये जिम्मेदार समझ रहा था। मनुष्य का मन बड़ा विचित्र होता है। इस भावना के साथ ही जब उसने यह सोचा कि इन दुर्घटनाओं के कारण रेनुका का सुधांशु के साथ विवाह नहीं हो सका, तो उसे एक क्षण के लिये जैसे खुशी-सी हुई। यदि वह विवाह हो जाता तो रेनुका और उसके अन्दर एक ऐसी खाई पैदा हो जाती जो कभी पाटी नहीं जा सकती थी।

पर यह खुशी की भावना अधिक देर तक स्थायी नहीं रही। उसने

जब फिर से यह सोचा कि रेनुका को मार डालने के बजाय भगाने का क्या उद्देश्य है तो उसे जितनी खुशी हुई थी उससे अधिक दुख हुआ।

परिमल ने जो दंगे का सारा किस्सा सुना तो उसे सबसे अधिक जो दुख हुआ, वह यह था कि उसे समाजवाद पर सन्देह हो गया। समाजवाद वर्ग-संग्राम में विश्वास करता है, पर यह जो कुछ हुआ यह तो धर्म-संग्राम था। इसमें एक तरफ एक धर्म वाले सब वर्ग थे और दूसरी तरफ दूसरे धर्म वाले थे। नहीं यह कोई संग्राम भी नहीं था। संग्राम में तो दोनों तरफ वाले कुछ न कुछ लड़ते हैं, भले ही एक तरफ वाला कुछ कमजोर पड़ जाय पर यह तो एकतरफा मार हुई थी। दूसरी तरफ वाले तो सिर्फ पिटे थे, लूटे गये थे, बलात्कृत हुए थे, मारे गये थे। और यह सब किसान सभा तथा समाजवादी दलों के प्रचार-कार्य के बावजूद हुआ था।

परिमल को सचमुच समाजवाद पर घोर सन्देह हुआ। उसे राष्ट्रीयता पर भी सन्देह हुआ। एक भाषा बोलने वाले, एक इलाके में रहनेवाले बिना कारण कैसे इस बुरी तरह लड़ गये और उन्होंने हिटलरी तरीके इस्तेमाल किये, यह परिमल की समझ में नहीं आया।

पर परिमल के आदर्श का आदर्श जब इस प्रकार डूब रहा था, जब उसके सामने सारा आदर्श ही नहीं बल्कि जीवन भी अर्थहीन प्रतीत हो रहा था तो उसने अपने सामने शकूर को खड़ा देखा। यह शकूर, शकूर के अपने बताये हुए किस्से के अनुसार वह स्वयं तब तक लीगी था जब तक उसका भाई नहीं मारा गया था फिर वह लीग के खिलाफ चला गया था और अब वह इस हालत में था कि वह लीगियों की आँखों में धूल झोंककर एक हिन्दू को बचा चुका था और आगे भी इस प्रकार के कार्य करने की सोच रहा था।

परिमल ने पहिली बार शकूर को ध्यान से देखा। तरुण चेहरा बड़ी बड़ी आँखें, भौंहें कुछ जुड़ती-सी, ओंठ पर सरल हँसी, पर यह नहीं कि बेवकूफ हो।

आज यह शकूर उसे एक अजीब नये रूप में दिखाई पड़ा। पर हजारों धार्मिक पागलों के सामने इस एक बेचारे नन्हें से शकूर की क्या बिसात थी ? वह तो सागर के सामने गोष्पद की तरह था। पर जो कुछ था सो वही था। परिमल को वह अपने बुझते हुए टिमटिमाते हुए आदर्श के प्रतीक के रूप में ज्ञात हुआ। न हो उसकी कोई बिसात, पर जो कुछ है सो वही है। भविष्य की कोई आशा है तो वही है। यदि वह भी नहीं होता तो परिमल के सामने केवल सोलहो-आने निर्विछिन्न अँधेरा होता।

इन बातों को सोचते हुए परिमल उठा और शकूर से लिपट गया। शकूर भी उससे खूब चिपट कर मिला।

फिर दोनों वहीं मिलकर बैठे। शकूर ने कहा—अब हम लोगों को यहाँ से चल देना चाहिए। यहाँ ज्यादा देर रहना खतरे से खाली नहीं है।

परिमल बोला—अब तो ओखली में सर डाल ही चुके हैं अब धमाके से क्या डर है ? जब इतनी जानें जा चुकीं, तो एक और मेरी जान चली गई तो क्या हर्ज है ? मैं तो भाई एक बार घर जाकर देखना चाहता हूँ कि क्या हुआ।

शकूर बहुत असमंजस में पड़ गया। वह अभी बता चुका था कि उसे उसके घर के सम्बन्ध में कुछ नहीं मालूम। अब वह कैसे यह बताता कि उसे सब कुछ मालूम है और वहाँ जाने में कोई फायदा नहीं।

शकूर ने केवल इतना ही कहा—पर उस तरफ तुम्हारा जाना ठीक न होगा। अभी हमारे साथ चलो, रात में चलेंगे।

परिमल ने यह भी कहा—एक दफे बड़े गाँव भी चलना है।

शकूर ने कहा—क्यों ?

परिमल थोड़ी देर तक सोचता रहा फिर उसने थोड़े में शकूर से अपनी और रेनुका की कहानी का उतना हिस्सा कहा जितना उससे कह सकता था। शकूर ने कहा—ओह बड़ी गलती हुई, अगर मुझे पहले

से यह किस्सा मालूम होता तो कुछ न कुछ करता कि यह नौबत ही नहीं आती खैर जो चूक गये सो चूक गये, अब तलाश करवायेंगे।

—तलाश कराओगे? कैसे तलाश कराओगे?

—सो मैं करवा लूँगा, पर बहुत मुश्किल है।—फिर मानो एक दुखकर विचार को जोर से हटाते हुए बोला—देखा जायगा। बात यह है कि उसे स्वयं बहुत सन्देह था कि कहाँ तक वह तलाश करवा पायेगा।

शकूर ने फिर कहा—चलो।

दोनों चलने लगे। शकूर आगे-आगे रास्ता दिखाता हुआ जा रहा था और परिमल उसके पीछे चला जा रहा था। दोनों के मन में अलग-अलग विचार थे। शकूर के सामने कोई विशेष लक्ष्य नहीं था। न वह कोई समाजवादी था न राष्ट्रेवादी। वह तो सिर्फ यह चाहता था कि हिन्दू और मुसलमान आपस में न लड़ें। दूसरों ने इस बात को सिद्धान्त तथा पुस्तकों से पढ़कर सीखा था पर उसने इसे अपने तजर्बे से, साधारण तरीके से समझा था।

परिमल उससे बहुत ऊँचे जगत में था, पर उसका वह जगत टूट चुका था। वह हृदय में अपने आदर्शों के खँड़हर को लेकर चला जा रहा था।

जहाँ हजारों आदमी ठीक इसी समय पागलपन पर उतारू थे, वहाँ ये दो सही-दिमाग क्या करते? पर ये दो उस जगत का प्रतिनिधित्व करते थे जो आनेवाला है और जिसे कोई भी षड़यंत्र तथा पागलपन नष्ट नहीं कर सकता।

२२

रेनुका को कुछ थोड़ी ही दूर जाना था। थोड़ी ही देर में बुढ़िया ने उसे जगाया। सच तो यह है कि वह नाममात्र के लिये सो रही थी।

थकावट के मारे उस पर एक बेहोशी-सी सवार हो गई थी। वह उठ बैठी और निकल आई।

उसे जिस गाँव में लाया गया था वह उसके अपने गाँव से सात मील के अन्दर था, पर रेनुका कभी इस तरफ नहीं आई थी। इसलिये वह समझी कि न मालूम कितनी दूर ले जाई गई है।

इतने ही घंटों के अन्दर वह एक जड़पिंड-सी हो चुकी थी। वह अब सम्पूर्ण रूप से अपनी पराजय मान चुकी थी। जो बुढ़िया कहती थी वही करती जाती थी। जब वह सबेरे उठी थी तो वह जैसे प्रत्येक सामने आने-जाने वाले व्यक्ति के चेहरे की तरफ देखती थी कि शायद इसी में उसका उद्धारक छिपा हुआ हो, पर अब वह सबके सम्बन्ध में निराश हो चुकी थी। अब वह समझ चुकी थी कि कोई उसका उद्धार नहीं करेगा। कल तक जो चेहरा बुद्धि तथा प्रतिभा से उज्ज्वल था, अवश्य उस विवाह के कारण उसकी बुद्धि पर कुछ आँच आई थी, पर वह बहुत थोड़ी थी, आज वही चेहरा बिलकुल जड़ तथा इच्छाशक्ति से हीन ज्ञात होता था।

आज की अद्भुत परिस्थिति में और जो कुछ उसने सुना था, उसके बाद से वह कल तक जिस विवाह को दुर्भाग्य की पराकाष्ठा समझ रही थी, आज वह उसे सौभाग्य ही मालूम हो रहा था।

अबकी बार वह एक मकान में ले जायी गई। मकान को देखने से ज्ञात होता था कि किसी भले आदमी का मकान है। हा! कैसा भला आदमी है, रेनुका ने सोचा कि आज इस इलाके में कोई भला आदमी रह भी गया है? कुछ तो डरानेवाले अत्याचारी हैं और कुछ डरे हुए लोग हैं जिनकी मनुष्यता बिल्कुल समाप्त हो चुकी है।

रेनुका उस मकान में गई तो उसके लिये एक कमरा तैयार था थोड़ी देर बाद ही वह बुढ़िया एक स्त्री को लाती हुई बोली—यह ब्राह्मणी है, यह तुम्हारे खाना पकाने के लिये तैनात हुई है।

रेनुका ने कथित ब्राह्मणी की ओर निगाह डाली तो देखा कि उसका

चेहरा उतरा हुआ है। मुँह पर एक चोट का दाग भी था। रेनुका ने उससे पूछा—तुम्हारा क्या नाम है ?

उस कथित ब्राह्मणी ने चारों तरफ देखते हुए कुछ हिचकते हुए कहा—मेरा नाम कुलसुम है।

एक ब्राह्मणी का कुलसुम नाम है इस पर रेनुका को बहुत आश्चर्य हुआ। शायद अविश्वास भी हुआ। उसके चेहरे पर उन भावों को प्रतिफलित देखकर बुढ़िया ने कहा--कल तक यह कुछ और थी, पर कल से कुलसुम है।

रेनुका समझ गई। पर उसे इस असहाय स्त्री के साथ सहानुभूति से कहीं अधिक चिन्ता अपने विषय में हुई। कुलसुम में मानो वह अपना भाग्य पढ़ चुकी थी। कुलसुम उसकी तरफ बहुत अजीब दृष्टि से देख रही थी। वह शायद रेनुका की परिस्थिति भी जानती थी।

कुछ देर तक सब लोग चुप रहे। रेनुका विशेषकर कुलसुम के चेहरे के दाग की तरफ देख रही थी। यह दाग और कुलसुम नाम दोनों मिलकर उसे कोई बात बहुत स्पष्ट बता रहे थे। बुढ़िया ने कहा—तुम इसे बता दो क्या खाओगी।

रेनुका ने जिद के साथ कहा—मुझे कुछ भूख नहीं है।

वह बुढ़िया बोली—आखिर कब तक ऐसा करोगी ? खाना तो पड़ेगा ही। फिर न खाने पर शायद ज्यादती जल्दी शुरू होगी, इसलिये जितनी जल्दी खालो उतना ही अच्छा है। कम से कम इससे कुछ बची तो रहोगी।

फिर वही बात। रेनुका योंही जड़-पदार्थ की तरह हो रही थी वह और भी उदासीन होकर बोली—अच्छा तो जो कुछ पकाये पका ले।

—तो भी एक बात तो बता दो।

रेनुका ने एकाएक जैसे कोई फैसला कर लिया, बोली—अच्छा कुलसुम सब चीज ला दे मैं चावल उबाल लूँगी ?

बुढ़िया ने सोचकर कहा—अच्छा—फिर रुककर कुछ लहजा तेज

कर बोली—तुम शायद कुलसुम का छुआ खाने से हिचक रही हो।

—नहीं,—रेनुका ने कहा, पर उसके मन ने गवाही नहीं दी। वह यों तो विशेष छुआछूत नहीं मानती थी पर फिर भी न मालूम क्यों कुलसुम के हाथ के खाने से उसे अपने हाथ से खाना खाना ही अधिक अच्छा मालूम हो रहा था। पर जब बुढ़िया ने उसे सुझा दिया तो वह कुछ आत्मपरीक्षा के बाद बोल उठी—नहीं, वह पकावे तो भी कुछ हर्ज नहीं है।

तदनुसार यह भी समस्या हल हो गई। बुढ़िया पर यह हुकुम था कि कुलसुम और रेनुका में बातचीत न होने दे, पर बुढ़िया इस हिदायत को वहीं तक निभाती थी जहाँ तक कि खतरे में न पड़ जाये। इसलिये उसी दिन शाम तक रेनुका को कुलसुम का पूरा हाल मालूम हो गया।

कुलसुम का कल से पहले श्यामा नाम था। उसका पति एक बहुत मामूली काश्तकार था, पर साथ ही में कुछ पुरोहिती कर लेने के कारण उनका हाल यों अच्छा था, अर्थात् आस-पास वालों से अच्छा था। उसका पति अक्सर पुरोहिती के कारण बाहर जाया करता था। जिस समय जुमा के नमाज के बाद भीड़ उसके घर पर आई, उस समय पति यजमानी से बाहर गये हुए थे, वह और उसकी सास घर पर थी। सास मार डाली गई। उसे लोग घर से उठा लाये। रेनुका के प्रश्न के उत्तर में उसने बताया कि उस पर कई लोगों ने बलात्कार किया। नहीं, उसके कोई बच्चे नहीं हैं, कई हुए मर गये। पति का उसे कुछ पता नहीं।

रेनुका ने जब श्यामा के साथ अपने भाग्य की तुलना की तो उसने अपने को बहुत सौभाग्यवती पाया। पर वह जो कुछ सुन चुकी थी तथा जिस प्रकार उस पर पहरा रखा जा रहा था, उससे यह सौभाग्य बहुत देर तक स्थायी होगा ऐसा तो नहीं मालूम होता था। कौन जाने उसे अब तक इसलिये छोड़ रखा गया था कि उस पर और ज्यादा ज्यादती हो। वह बहुत चिन्तित हो गई।

उसने मौका पाकर श्यामा से यह पूछा—क्या यहाँ से किसी तरह भागने का मौका नहीं लग सकता ?

श्यामा ने चारों तरफ देखकर कहा—मुश्किल है। फिर अगर इस मकान से निकल भी गई तो चारों तरफ मुसलमानों का ही गाँव है, फौरन पकड़ ली जायगी।—फिर कुछ उदास होती हुई बोली—भागकर कोई जायगी तो कहाँ जायगी ? वहाँ तो सब गाँव के गाँव उजाड़ दिये गये हैं। मैंने तो अपनी आँख से देखा कि मेरी झोपड़ी में आग लगा दी गयी। सभी हिन्दू-घर उजाड़ दिये गये। भागूँ तो जाऊँ कहाँ ? सब तो मुसलमान हो चुके, केवल मुर्दे मुसलमान होने से बच गये।

रेनुका ने सोचकर देखा कि बात सही है। उसने अपने घर को जलते हुए तो नहीं देखा, सच तो यह है कि उसने कुछ भी नहीं देखा, पर उसे विश्वास था कि जरूर कुछ न कुछ बहुत भारी अमंगल हुआ होगा। पता नहीं उसके पिता-माता भी जीवित हैं या नहीं। इस प्रकार भागने की योजना तो योंही असिद्ध रही। भागना मुश्किल है और यदि भाग भी गई तो जाने की कोई जगह नहीं है। कितनी भयंकर परिस्थिति है ? अवश्य राजधानी में रिश्तेदारियों में जा सकती है, पर उसके लिये खर्चा कहाँ ? उसके गहने, यहाँ तक कि एक-एक अँगूठी तक कल ही उतार ली गयी थी।

रेनुका ने पूछा—कहीं कुछ जहर मिल सकता है ?

श्यामा हँसी, बोली—जो जहर ही मिल जाता तो क्या मैं नहीं खाती। गाँव-गँवई में जहर कहाँ धरा है। ..

रेनुका को फिर भी इस श्यामा का साथ हो जाने के कारण कुछ खुशी हुई। श्यामा अपनी ही धुन में कहती जा रही थी—अब मेरी जिन्दगी में जहर खाकर मर जाने के अलावा क्या रह गया ? अब तो मैं किसी भी लायक न रही। उनसे मिलने की इच्छा तो है, पर क्या वे मुझे लेंगे ?—वह सिसकने लगी।

हाँ, यह भी तो एक प्रश्न था। सभी समाजों में स्त्री तो लकड़ी की हाँड़ी की तरह समझी जाती है, हिन्दू समाज में तो विशेषकर। पुरुष के लिये कोई बाधा नहीं है, पर स्त्री का यदि किसी भी तरह पैर फिसले, या फिसले भी नहीं, उसके साथ कोई जबर्दस्ती करे, तो फिर उसका भद्र-जीवन तो समाप्त हो गया। सबसे अधिक तो स्त्री ही उस पर हाथ उठायेगी।

रेनुका ने अपने ढंग से इस प्रश्न को अपने ऊपर घटाकर सोचा, तो उसके हृदय में भय समा गया। यदि वह जीती लौटी तो परिमल उसे ग्रहण करेगा ? ओह, वह तो भूल ही गई थी कि परिमल ने शादी न कर आजीवन देशसेवा करने का विचार किया है। अच्छा तो क्या उसे सुधांशु लेगा ? हाः हाः, वह भी उसे न लेगा। नहीं वह कभी नहीं लेगा। कोई न ले, वह अकेली रहेगी। एक बार छुटकारा तो हो।

दिन भर कुलसुम के साथ बातचीत करने का मौका ढूँढ़ते-ढूँढ़ते किसी तरह समय बीत गया। पर ४ बजे से कुलसुम भी नहीं आई। क्या किसी ने सुन लिया ? वह बड़े असमंजस में थी, पूछ भी नहीं सकती थी। क्यों कोई उसे बतावे ? उसे बड़ी दुश्चिन्ता हुई। रात को उसे बुढ़िया से मालूम हुआ कि कुलसुम चली गई।

रेनुका समझी कि वह भाग गयी, पर बुढ़िया ने कहा—आज उसकी शादी हो गयी, वह अपने शौहर के साथ चली गई।

सुनकर रेनुका की फूँक सरक गई, जैसे कटे हुये बकरे को सिसकते देखकर बूचड़खाने के बकरे के मन में होता है।

बुढ़िया ने उसे रात के लिये कुछ फल दिये, पर उसने कुछ नहीं खाया। आँख बचाकर उसने फलों को मकान से बाहर दूर फेंक दिया।

वह बस इसी बात पर सोचती रही कि श्यामा की शादी हो गई। उसका असली पति शायद अभी जीवित था, फिर न मालूम किससे शादी हुई। वह सोचने लगी कि क्या उसकी भी इस तरह किसी से शादी होने

वाली थी। वह जितना ही इस बात पर सोचती, उतना ही उसे ऐसा मालूम होता कि उसके हृदय की धड़कन बन्द हो जायगी।

२३

आधी रात के समय परिमल और शकूर खासपुरवा देखने निकले थे।

शकूर ने परिमल से बहुत मना किया था कि मत चलो, पर उसने जब कहा कि नहीं जरूर देखना है कि किसका क्या हुआ और यदि हो सका तो लोगों को मदद देना है, तब शकूर स्वयं खासपुरवा गया और वहाँ देख आया कि क्या परिस्थिति है। वह दो कारणों से परिस्थिति देखने के लिये गया था। एक तो इस कारण कि उसे यह देखना था कि परिमल को ले आना खतरनाक तो नहीं है, दूसरा वह यह देखना चाहता था कि कहीं बहुत भद्दे दृश्य तो नहीं हैं कि परिमल देखे तो उसका बुरा हाल हो।

उसने जाकर देखा कि परिमल का घर जल गया है। परिमल की माँ तथा बहिनों के जल मरने से जो आग पैदा हुई थी, उसी से घर जल गया था। देहाती घर था, जल्दी जल गया। पर पुरोहित जी वाला बिना दरवाजे का झोपड़ा ज्यों का त्यों बना हुआ था। उसने उसके अन्दर देखा तो पुरोहित जी के सिर के अलावा सारा शरीर पाँच टुकड़ों में बिखरा हुआ पड़ा था। अब तो उसमें से कुछ बदबू भी निकल रही थी या भ्रम था। शकूर को यह दृश्य इतना वीभत्स मालूम हुआ कि उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि वह बेहोश हो जायगा। उसे अपने मृत भाई की याद आयी। आज तक यह पता नहीं लगा कि वह कैसे मारा गया। कुछ अफवाह भर सुनने को मिली थी। पता नहीं दुष्टों ने उसे भी ऐसे ही मारा हो।

शकूर ने सोचा कि परिमल को यह दृश्य दिखाना कभी भी उचित नहीं होगा। साथ ही वह यह जानता था कि परिमल को इस सम्बन्ध में

मना करना बिल्कुल बेकार है। तब वह चिन्ता में पड़ गया कि कैसे इस परिस्थिति को बचाया जाय। कुछ याद आने के कारण उसने जेब में हाथ डाला, देखा कि है, फिर चारों तरफ ताका, पर कहीं कोई नहीं था। तब उसने जेब से झट से दियासलाई निकालकर फूस की छत में लगा दिया। एक मिनट में ही आग जल उठी और चड़चड़ आवाज होने लगी।

शकूर ने उसी जगह पर आग लगाया था जहाँ उन तीन लीगी नौजवानों में से एक ने लगाना चाहा था, पर दियासलाई भूल आने के कारण यह आग लगाई नहीं जा सकी थी। पर दोनों कृत्यों में कितना फर्क था?

जब आधी रात को शकूर के साथ परिमल वहाँ पहुँचा तो उसने देखा कि जिस जगह पर उसका मकान था तथा जिस जगह पर पुरोहित-जी रहते थे वहाँ राख ही राख तथा कुछ अधजली चीजें दिखाई दे रही हैं। परिमल ने पहले जो राख के इस ढेर को देखा तो उसका हृदय धक से हो गया। उसके अन्दर से एक रोना-सा उठा जिसे वह मुश्किल से रोक सका। उसे ऐसा मालूम पड़ा कि इस रांख के ढेर में उसका सारा भूतकाल जला पड़ा है। और पता नहीं, उसका कोई भविष्य है या नहीं।

जगह-जगह अभी आग जल रही थी। पहले तो उसका घर पड़ता था, वह वहाँ पर गया तो थोड़ी देर तक इधर-उधर ताककर उसने शकूर से पूछा—क्या ये लोग सब के सब जला दिये गये?

शकूर को पूरा हाल मालूम था, पर मित्र के हृदय में चोट न पहुँचे इसलिये उसने कहा—कुछ पता नहीं।

इसके बाद परिमल उस जगह पहुँचा जहाँ पुरोहित जी रहते थे। वहाँ अभी तक राख गरम मालूम होती थी। परिमल ने एकाएक कुछ सूँघना प्रारम्भ किया। उसे कोई बदबू मालूम हो रही थी। हाँ, यह वैसी ही बदबू थी जैसी श्मशान में पाई जाती है। बहुत तेज बदबू थी। शकूर को भी यह बदबू मालूम हो रही थी, पर वह चुप था।

परिमल ने शकूर से कहा—मुझे कुछ बदबू मालूम हो रही है।…

शकूर बोला—हाँ, कुछ गोबर सड़ने की सी बदबू है। उसने परिमल का हाथ पकड़ लिया, बोला—चलो चलें।

परिमल ने शकूर से हाथ छुड़ाकर बदबू को कई दफे जोर-जोर से सूँघा, फिर बोला—नहीं यह तो गोश्त जलने की बदबू है।

शकूर कुछ बोला नहीं, चुप रहा, पर कुछ सोचकर बोला—चलो चलें, कोई शायद आ न जाय।

परिमल ने जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं। वह अब भी उस बदबू को सूँघ रहा था। एकाएक वह राख के अन्दर से होते हुए आगे बढ़ा। वह कुछ टटोलता-सा जाता था। शकूर चुप था, वह राख के इधर ही खड़ा रहा।

परिमल टटोलता हुआ, ढूँढ़ता हुआ उस जगह पर पहुँचा जहाँ पुरोहित जी का अधजला शरीर राखों से ढँका हुआ पड़ा था। ज्योंही यह अध-जला शरीर परिमल के पैरों से लगा, त्योंही उसने पुकारा—शकूर—उसके स्वर में कुछ शायद आश्चर्य था, पर भय ही अधिक था।

शकूर तो सब कुछ समझ गया था, वह फौरन पास आ गया पर वह सम्मानवश राख में कुछ दूर आकर ही ठहर गया। बोला—क्या ? मैं तो तुम्हारे पास ही खड़ा हूँ।

—बाबू जी का शरीर है—अजीब स्वर में परिमल ने कहा। फिर उसने टटोल-टटोलकर शरीर के सब हिस्सों को जमा किया। उसने यही समझा कि आग के कारण शरीर के हिस्से बिखर गये थे और सिर जल गया था। वह धम-से उसी राख पर इन अध-जले टुकड़ों को आलिंगन करता बैठ गया। उससे कुछ दूर पर खड़ा शकूर बड़े असमंजस में पड़ गया कि क्या कहे और क्या न कहे। इतने बड़े दुर्भाग्य के सामने वह क्या कहता ? फिर शकूर एक मुसलमान होने के नाते अपने को इन दुर्घटनाओं के लिये जिम्मेदार समझता था। वह लज्जा से सिकुड़ा जा

रेनुका बोली—तुमको मैंने मना किया था फिर क्यों ले आई ?—उसने सामने से पोटली को उठाकर फेंक दिया। कुछ फल बिखर गये, कुछ पोटली में रह गये।

बुढ़िया ने पहले तो फलों को बटोरा, फिर बोली—देखो तुम अब यह न समझो कि घर पर हो। न मालूम लोग तुम्हारा क्या ख्याल करते हैं कि तुम्हारे खाने के लिये फल भेजा है। अगर तुम इन्हें न खाओगी तो तुम्हें जबर्दस्ती शोरवा वगैरह पिलायेंगे। जब तक बची हुई हो तब तक अच्छा ही समझो।

शोरवा से क्या मतलब था, रेनुका उसे समझ गई। परिस्थिति की वास्तविकता उसकी समझ में आ गई। उसके कानों में वे बातें कि जब तक बची हुई हो तब तक अच्छा ही समझो। एकमात्र व्यावहारिक नीति के रूप में गूँजने लगी। उसे सबसे बड़ा आश्चर्य इस बात का हुआ कि उसकी माँ का भी यही दर्शन-शास्त्र था।

बोली—पर भूख जो नहीं है।

उसका लहजा बदल चुका था। बुढ़िया ने भी इसको महसूस किया। बुढ़िया बोली—भूख लगे या न लगे एकाध खा लो, तब लोगों को कुछ इतमीनान होगा। नहीं तो ये लोग न मालूम क्या करें।

रेनुका ने फलों से कुछ उठा लिया। भूख तो लगी ही थी, एक बार जो मुँह में रखा तो खाती ही गई। बुढ़िया सामने बैठी ही रही। रेनुका ने उससे पूछा—क्यों बूढ़ी अम्मा, ये लोग कौन हैं ?

किसी ने इस बुढ़िया को इतने प्यार से बूढ़ी अम्मा नहीं कहा था। पर प्रश्न सुनकर वह कुछ डरती हुई इधर-उधर देखती हुई बोली—ये लोग बड़े सरकश हैं।—कहकर उसने फिर पीछे की ओर उस तरफ देखा जहाँ वे लोग बैठे हुए थे।

रेनुका दो-एक फल खाकर खाना बन्द कर देना चाहती थी, उसने ऐसा ही किया, पर बुढ़िया बोली—बेटी खा लो, खाओगी तो तगड़ी

बनी रहोगी, अभी न मालूम क्या-क्या मुसीबत भोगनी पड़े।

पता नहीं इस युक्ति से परिचालित होकर या और किसी युक्ति से परिचालित होकर रेनुका ने जो थोड़े से फल थे उन सबको खा लिया। फिर बोली—तुम लोग इन्हें समझाती क्यों नहीं?

उस बुढ़िया ने सावधानी से पीछे की तरफ देखकर कहा—मेरे समझाने की भली चलाई। हम गरीबों की कौन सुनता है? जो लोग मुझसे काबिल हैं और अच्छे घर की हैं वे सब समझा रही हैं पर कौन मानता है?

रेनुका पोखरे की तरफ मुँह धोने के लिये चली तो साथ में बुढ़िया भी चली। अब उसका मुँह खुद ही खुल चुका था, बोली—क्या तुम समझ रही हो कि मुसलमान औरतें हिन्दुओं की औरतों का भगाया जाना पसन्द कर रही हैं? आज घर-घर में रोना मचा हुआ है। एक न एक औरत हर घर में लाई गई है और उसकी वजह से सब मर्दों का इखलाक बिगड़ गया है। पर कौन अपने भाइयों और शौहरों के खिलाफ कुछ कहे? मैं कहती हूँ इससे मुसलमानों का भला कभी न होगा। बुढ़िया की दृष्टि जैसे दूर भविष्य में पहुँच गई।

जो लोग दूर से खड़े होकर पहरा दे रहे थे, उनको शायद कुछ शक हुआ कि बुढ़िया कुछ कह रही है वे आगे बढ़ आये। बुढ़िया अब कह रही थी—मेरे समझाने से फल खा लिया, अच्छा किया, पर अब शोरवा भी पी लो। आखिर पीना ही है...

रेनुका समझ गई कि बुढ़िया ने बात क्यों बदल दी। वह यह भी समझी कि इस बुढ़िया पर भी इन लोगों का प्रबल आतंक छाया हुआ है। वह बिना कुछ जवाब दिये जल्दी मुँह धोने लगी।

इसके बाद उसे एक बैलगाड़ी पर चढ़ाया गया। इस गाड़ी में वह और बुढ़िया थी और गाड़ीवान। थोड़ी देर तक तो रेनुका बैठी रही, फिर वह गाड़ी पर सो गई। नींद भी कैसी अच्छी चीज है कि फाँसीवाला भी सोता है तो भूल जाता है कि कहाँ है।

२१

परिमल के घर में जब भीड़वाले पहुँचे तो वहाँ औरतों में परिमल की माँ, तथा दो बहिनें थीं। बुढ़िया कुछ दिनों से यह समझ रही थी कि पुरोहित जी मारे जायँगे ही इसलिये उसने यह तय कर रखा था कि ऐसी नौबत आते ही वह आत्महत्या कर लेगी। सच कहा जाय तो वह पति के हठ से प्रसन्न नहीं थी। वह चाहती थी कि कुछ दिनों के लिये सारा परिवार काशी जी चले, पर जब उसकी बात नहीं मानी गई तो उसने यही तय कर रखा था। उसे अपने पति की अहिंसा में बिलकुल विश्वास नहीं था, पर वह पति को छोड़ नहीं सकती थी।

ज्योंही भीड़ पास आई; त्योंही उसने अपनी साड़ी पर मिट्टी का तेल डाल लिया और आग लगाकर मर गई। उनकी दो लड़कियों ने भी इसी का अनुकरण किया। परिमल के भाइयों में एक तो गड़बड़ में भाग गया, एक मारा गया। सबसे छोटा था जिसकी उम्र तेरह साल थी वह पकड़ लिया गया। उसको भीड़ वालों ने ले जाकर यथाविधि शोरवा पिलाकर मुसलमान बना लिया।

रहा परिमल। सो वह पिता के पीछे खड़ा-खड़ा गिरा लिया गया था। उसी हालत में उसे उठाकर एक बाग में ले जाया गया था। वह मरा नहीं था, बल्कि बेहोश हुआ था। थोड़ी ही देर में उसे होश आया तो उसने अपने सामने हँसते हुए शकूर को देखा। परिमल को इस पर बड़ा क्रोध आया कि यह क्या क्या बनता था, अब लीगियों के साथ हिन्दुओं का मकान लूटने चला है।

उसने घृणा के साथ उसकी तरफ से मुँह फेर लिया और सोचा कि सब मुसलमान एक ही से हैं। इनमें कोई फर्क नहीं है। शकूर ने उसे क्या क्या सब्ज बाग दिखलाया कि मैंने मुसलमान-नौजवानों की सोसाइटी बनाई है उसका उद्देश्य यह है और वह है और यहाँ यह हालत है। यों

तो जो कुछ हुआ था उससे उसे बहुत निराशा थी। उसने अपनी आँखों के सामने यह देखा था कि जो आन्दोलन मजे में एक किसान क्रांति में परिणत हो सकता था, वह साम्राज्यवाद की कूटनीति तथा लीग की मूर्खता के कारण एक भयंकर प्रतिक्रियावादी धारा में परिणत हो गया था। न मालूम यह जाकर कहाँ रुकेगी। इस समय तो इसका कोई ओर-छोर नहीं ज्ञात होता था। जब शकूर ऐसा आदमी जिसके भाई को लीगियों ने मारा था इन लोगों में शरीक हो गया और एक साधारण उचक्के की तरह लूट के लिये तैयार हो गया, तो फिर क्या आशा है ?

शकूर ने मानो परिमल के विचारों को पढ़ते हुए कहा—डरो मत, तुम दोस्तों में हो।

परिमल ने शकूर को ध्यान से देखते हुए कहा—बनो मत, मैंने तुमको अपनी आँख से उस हत्यारी भीड़ में देखा था और तुम शायद हमारे ऊपर लपके भी थे।

शकूर हँसा, बोला—हाँ जो कुछ तुमने देखा सब ठीक देखा, पर तुमने उसका मतलब नहीं समझा। देखना और बात है और समझना और। मुझ पर लोगों को योंही शक था अगर आज जब कि सब मुसलमान एक हो रहे थे, मैं उनसे अलग रहता तो वे मुझ पर शक करते और शायद मेरी भी मौत उसी तरह होती जिस तरह भाई साहब की हुई। लाश का भी पता न लगता। इस तरह हमने तय किया कि हमें दिखाना है कि हम भी उन्हीं में हैं और फिर भीतर-भीतर अपना काम जारी रखना है। मैंने इसीलिये तय किया कि तुम्हें बचाऊँ, उसका यही तरीका था।

अब परिमल को सब बातें समझ में आ गईं, उसने कहा—तो मुझे क्यों बचाया ? पुरोहित जी को क्यों नहीं बचाया ? फिर एकाएक उसे स्मरण आया कि शायद पुरोहित जी भी बच गये हों। उसने तो

उन्हें मारे जाते नहीं देखा था। वह प्रसंग से बाहर जाकर पूछ बैठा—वे बच गये न ?

शकूर का चेहरा थोड़ी देर के लिये फक पड़ गया। वह जानता था कि पुरोहितजी किस तरह मारे गये हैं। उसे उनकी स्त्री तथा लड़कियों के जल जाने का भी पता था, उसे सब पता था, पर उसने समझा कि अभी एकाएक सब बातें बताना ठीक न होगा। तदनुसार उसने कहा—पुरोहित जी की बात और थी। उन पर लीग के नेता खार खाए हुए थे। जैसे मैं तुमको उठाकर ले आया और किसी ने इधर ध्यान भी नहीं दिया, वैसे उनको उठाना मुमकिन न था। इसीलिये मैंने तुम्हीं पर अपनी निगाह रखी।

परिमल ने एकाएक बेचैनी से पूछा—तो क्या वे मर गये ?

शकूर ने झूठ बोलते हुए कहा—मैं तो तुम्हें लेकर आया, मुझे कुछ नहीं मालूम—उसने परिमल की तीक्ष्ण दृष्टि के सामने मुँह फेर लिया।

परिमल ने जो भी समझा हो उसने फिर अपने घर के विषय में कुछ नहीं पूछा, पर उसने चारो तरफ की खबरें पूछीं तो शकूर को जहाँ तक मालूम था वहाँ तक ठीक-ठीक बताया। एकाएक परिमल ने जमींदार दशरथ बाबू की बात पूछी, तो शकूर को जहाँ तक मालूम था पूरा पूरा बता दिया। जब परिमल को यह मालूम हुआ कि रेनुका को दुष्ट उद्देश्य से भगाया गया तो उसे बहुत दुख हुआ। न मालूम क्यों वह एक हद तक अपने को रेनुका के दुर्भाग्य के लिये जिम्मेदार समझ रहा था। मनुष्य का मन बड़ा विचित्र होता है। इस भावना के साथ ही जब उसने यह सोचा कि इन दुर्घटनाओं के कारण रेनुका का सुधांशु के साथ विवाह नहीं हो सका, तो उसे एक क्षण के लिये जैसे खुशी-सी हुई। यदि वह विवाह हो जाता तो रेनुका और उसके अन्दर एक ऐसी खाई पैदा हो जाती जो कभी पाटी नहीं जा सकती थी।

पर यह खुशी की भावना अधिक देर तक स्थायी नहीं रही। उसने

जब फिर से यह सोचा कि रेनुका को मार डालने के बजाय भगाने का क्या उद्देश्य है तो उसे जितनी खुशी हुई थी उससे अधिक दुख हुआ।

परिमल ने जो दंगे का सारा किस्सा सुना तो उसे सबसे अधिक जो दुख हुआ, वह यह था कि उसे समाजवाद पर सन्देह हो गया। समाजवाद वर्ग-संग्राम में विश्वास करता है, पर यह जो कुछ हुआ यह तो धर्म-संग्राम था। इसमें एक तरफ एक धर्म वाले सब वर्ग थे और दूसरी तरफ दूसरे धर्म वाले थे। नहीं यह कोई संग्राम भी नहीं था। संग्राम में तो दोनों तरफ वाले कुछ न कुछ लड़ते हैं, भले ही एक तरफ वाला कुछ कमजोर पड़ जाय पर यह तो एकतरफा मार हुई थी। दूसरी तरफ वाले तो सिर्फ पिटे थे, लूटे गये थे, बलात्कृत हुए थे, मारे गये थे। और यह सब किसान सभा तथा समाजवादी दलों के प्रचार-कार्य के बावजूद हुआ था।

परिमल को सचमुच समाजवाद पर घोर सन्देह हुआ। उसे राष्ट्रीयता पर भी सन्देह हुआ। एक भाषा बोलने वाले, एक इलाके में रहनेवाले बिना कारण कैसे इस बुरी तरह लड़ गये और उन्होंने हिटलरी तरीके इस्तेमाल किये, यह परिमल की समझ में नहीं आया।

पर परिमल के आदर्श का आदर्श जब इस प्रकार डूब रहा था, जब उसके सामने सारा आदर्श ही नहीं बल्कि जीवन भी अर्थहीन प्रतीत हो रहा था तो उसने अपने सामने शकूर को खड़ा देखा। यह शकूर, शकूर के अपने बताये हुए किस्से के अनुसार वह स्वयं तब तक लीगी था जब तक उसका भाई नहीं मारा गया था फिर वह लीग के खिलाफ चला गया था और अब वह इस हालत में था कि वह लीगियों की आँखों में धूल झोंककर एक हिन्दू को बचा चुका था और आगे भी इस प्रकार के कार्य करने की सोच रहा था।

परिमल ने पहिली बार शकूर को ध्यान से देखा। तरुण चेहरा बड़ी बड़ी आँखें, भौंहें कुछ जुड़ती-सी, ओंठ पर सरल हँसी, पर यह नहीं कि बेवकूफ हो।

आज यह शकूर उसे एक अजीब नये रूप में दिखाई पड़ा। पर हजारों धार्मिक पागलों के सामने इस एक बेचारे नन्हें से शकूर की क्या बिसात थी? वह तो सागर के सामने गोष्पद की तरह था। पर जो कुछ था सो वही था। परिमल को वह अपने बुझते हुए टिमटिमाते हुए आदर्श के प्रतीक के रूप में ज्ञात हुआ। न हो उसकी कोई बिसात, पर जो कुछ है सो वही है। भविष्य की कोई आशा है तो वही है। यदि वह भी नहीं होता तो परिमल के सामने केवल सोलहो-आने निर्विछिन्न अँधेरा होता।

इन बातों को सोचते हुए परिमल उठा और शकूर से लिपट गया। शकूर भी उससे खूब चिपट कर मिला।

फिर दोनों वहीं मिलकर बैठे। शकूर ने कहा—अब हम लोगों को यहाँ से चल देना चाहिए। यहाँ ज्यादा देर रहना खतरे से खाली नहीं है।

परिमल बोला—अब तो ओखली में सर डाल ही चुके हैं, अब धमाके से क्या डर है? जब इतनी जानें जा चुकीं, तो एक और मेरी जान चली गई तो क्या हर्ज है? मैं तो भाई एक बार घर जाकर देखना चाहता हूँ कि क्या हुआ।

शकूर बहुत असमंजस में पड़ गया। वह अभी बता चुका था कि उसे उसके घर के सम्बन्ध में कुछ नहीं मालूम। अब वह कैसे यह बताता कि उसे सब कुछ मालूम है और वहाँ जाने में कोई फायदा नहीं।

शकूर ने केवल इतना ही कहा—पर उस तरफ तुम्हारा जाना ठीक न होगा। अभी हमारे साथ चलो, रात में चलेंगे।

परिमल ने यह भी कहा—एक दफे बड़े गाँव भी चलना है।

शकूर ने कहा—क्यों?

परिमल थोड़ी देर तक सोचता रहा फिर उसने थोड़े में शकूर से अपनी और रेनुका की कहानी का उतना हिस्सा कहा जितना उससे कह सकता था। शकूर ने कहा—ओह बड़ी गलती हुई, अगर मुझे पहले

से यह किस्सा मालूम होता तो कुछ न कुछ करता कि यह नौबत ही नहीं आती खैर जो चूक गये सो चूक गये, अब तलाश करवायेंगे।

—तलाश कराओगे ? कैसे तलाश कराओगे ?

—सो मैं करवा लूँगा, पर बहुत मुश्किल है।—फिर मानो एक दुखकर विचार को जोर से हटाते हुए बोला—देखा जायगा। बात यह है कि उसे स्वयं बहुत सन्देह था कि कहाँ तक वह तलाश करवा पायेगा।

शकूर ने फिर कहा—चलो।

दोनों चलने लगे। शकूर आगे-आगे रास्ता दिखाता हुआ जा रहा था और परिमल उसके पीछे चला जा रहा था। दोनों के मन में अलग-अलग विचार थे। शकूर के सामने कोई विशेष लक्ष्य नहीं था। न वह कोई समाजवादी था न राष्ट्रवादी। वह तो सिर्फ यह चाहता था कि हिन्दू और मुसलमान आपस में न लड़ें। दूसरों ने इस बात को सिद्धान्त तथा पुस्तकों से पढ़कर सीखा था पर उसने इसे अपने तजर्बे से, साधारण तरीके से समझा था।

परिमल उससे बहुत ऊँचे जगत में था, पर उसका वह जगत टूट चुका था। वह हृदय में अपने आदर्शों के खँड़हर को लेकर चला जा रहा था।

जहाँ हजारों आदमी ठीक इसी समय पागलपन पर उतारू थे, वहाँ ये दो सही-दिमाग क्या करते ? पर ये दो उस जगत का प्रतिनिधित्व करते थे जो आनेवाला है और जिसे कोई भी षड्यंत्र तथा पागलपन नष्ट नहीं कर सकता।

२२

रेनुका को कुछ थोड़ी ही दूर जाना था। थोड़ी ही देर में बुढ़िया ने उसे जगाया। सच तो यह है कि वह नाममात्र के लिये सो रही थी।

थकावट के मारे उस पर एक बेहोशी-सी सवार हो गई थी। वह उठ बैठी और निकल आई।

उसे जिस गाँव में लाया गया था वह उसके अपने गाँव से सात मील के अन्दर था, पर रेनुका कभी इस तरफ नहीं आई थी। इसलिये वह समझी कि न मालूम कितनी दूर ले जाई गई है।

इतने ही घंटों के अन्दर वह एक जड़पिंड-सी हो चुकी थी। वह अब सम्पूर्ण रूप से अपनी पराजय मान चुकी थी। जो बुढ़िया कहती थी वही करती जाती थी। जब वह सबेरे उठी थी तो वह जैसे प्रत्येक सामने आने-जाने वाले व्यक्ति के चेहरे की तरफ देखती थी कि शायद इसी में उसका उद्धारक छिपा हुआ हो, पर अब वह सबके सम्बन्ध में निराश हो चुकी थी। अब वह समझ चुकी थी कि कोई उसका उद्धार नहीं करेगा। कल तक जो चेहरा बुद्धि तथा प्रतिभा से उज्ज्वल था, अवश्य उस विवाह के कारण उसकी बुद्धि पर कुछ आँच आई थी, पर वह बहुत थोड़ी थी, आज वही चेहरा बिलकुल जड़ तथा इच्छाशक्ति से हीन ज्ञात होता था।

आज की अद्‌भुत परिस्थिति में और जो कुछ उसने सुना था, उसके बाद से वह कल तक जिस विवाह को दुर्भाग्य की पराकाष्ठा समझ रही थी, आज वह उसे सौभाग्य ही मालूम हो रहा था।

अबकी बार वह एक मकान में ले जायी गई। मकान को देखने से ज्ञात होता था कि किसी भले आदमी का मकान है। हा! कैसा भला आदमी है, रेनुका ने सोचा कि आज इस इलाके में कोई भला आदमी रह भी गया है? कुछ तो डरानेवाले अत्याचारी हैं और कुछ डरे हुए लोग हैं जिनकी मनुष्यता बिल्कुल समाप्त हो चुकी है।

रेनुका उस मकान में गई तो उसके लिये एक कमरा तैयार था थोड़ी देर बाद ही वह बुढ़िया एक स्त्री को लाती हुई बोली—यह ब्राह्मणी है, यह तुम्हारे खाना पकाने के लिये तैनात हुई है।

रेनुका ने कथित ब्राह्मणी की ओर निगाह डाली तो देखा कि उसका

चेहरा उतरा हुआ है। मुँह पर एक चोट का दाग भी था। रेनुका ने उससे पूछा—तुम्हारा क्या नाम है ?

उस कथित ब्राह्मणी ने चारों तरफ देखते हुए कुछ हिचकते हुए कहा—मेरा नाम कुलसुम है।

एक ब्राह्मणी का कुलसुम नाम है इस पर रेनुका को बहुत आश्चर्य हुआ। शायद अविश्वास भी हुआ। उसके चेहरे पर उन भावों को प्रतिफलित देखकर बुढ़िया ने कहा--कल तक यह कुछ और थी, पर कल से कुलसुम है।

रेनुका समझ गई। पर उसे इस असहाय स्त्री के साथ सहानुभूति से कहीं अधिक चिन्ता अपने विषय में हुई। कुलसुम में मानो वह अपना भाग्य पढ़ चुकी थी। कुलसुम उसकी तरफ बहुत अजीब दृष्टि से देख रही थी। वह शायद रेनुका की परिस्थिति भी जानती थी।

कुछ देर तक सब लोग चुप रहे। रेनुका विशेषकर कुलसुम के चेहरे के दाग की तरफ देख रही थी। यह दाग और कुलसुम नाम दोनों मिलकर उसे कोई बात बहुत स्पष्ट बता रहे थे। बुढ़िया ने कहा—तुम इसे बता दो क्या खाओगी।

रेनुका ने जिद के साथ कहा—मुझे कुछ भूख नहीं है।

वह बुढ़िया बोली—आखिर कब तक ऐसा करोगी ? खाना तो पड़ेगा ही। फिर न खाने पर शायद ज्यादती जल्दी शुरू होगी, इसलिये जितनी जल्दी खालो उतना ही अच्छा है। कम से कम इससे कुछ बची तो रहोगी।

फिर वही बात। रेनुका योंही जड़-पदार्थ की तरह हो रही थी वह और भी उदासीन होकर बोली—अच्छा तो जो कुछ पकाये पका ले।

—तो भी एक बात तो बता दो।

रेनुका ने एकाएक जैसे कोई फैसला कर लिया, बोली—अच्छा कुलसुम सब चीज ला दे मैं चावल उबाल लूँगी ?

बुढ़िया ने सोचकर कहा—अच्छा—फिर रुककर कुछ लहजा तेज

कर बोली—तुम शायद कुलसुम का छुआ खाने से हिचक रही हो।

—नहीं,—रेनुका ने कहा, पर उसके मन ने गवाही नहीं दी। वह यों तो विशेष छुआछूत नहीं मानती थी पर फिर भी न मालूम क्यों कुलसुम के हाथ के खाने से उसे अपने हाथ से खाना खाना ही अधिक अच्छा मालूम हो रहा था। पर जब बुढ़िया ने उसे सुझा दिया तो वह कुछ आत्मपरीक्षा के बाद बोल उठी—नहीं, वह पकावे तो भी कुछ हर्ज नहीं है।

तदनुसार यह भी समस्या हल हो गई। बुढ़िया पर यह हुकुम था कि कुलसुम और रेनुका में बातचीत न होने दे, पर बुढ़िया इस हिदायत को वहीं तक निभाती थी जहाँ तक कि खतरे में न पड़ जाये। इसलिये उसी दिन शाम तक रेनुका को कुलसुम का पूरा हाल मालूम हो गया।

कुलसुम का कल से पहले श्यामा नाम था। उसका पति एक बहुत मामूली काश्तकार था, पर साथ ही में कुछ पुरोहिती कर लेने के कारण उनका हाल यों अच्छा था, अर्थात् आस-पास वालों से अच्छा था। उसका पति अक्सर पुरोहिती के कारण बाहर जाया करता था। जिस समय जुमा के नमाज के बाद भीड़ उसके घर पर आई, उस समय पति यजमानी से बाहर गये हुए थे, वह और उसकी सास घर पर थी। सास मार डाली गई। उसे लोग घर से उठा लाये। रेनुका के प्रश्न के उत्तर में उसने बताया कि उस पर कई लोगों ने बलात्कार किया। नहीं, उसके कोई बच्चे नहीं हैं, कई हुए मर गये। पति का उसे कुछ पता नहीं।

रेनुका ने जब श्यामा के साथ अपने भाग्य की तुलना की तो उसने अपने को बहुत सौभाग्यवती पाया। पर वह जो कुछ सुन चुकी थी तथा जिस प्रकार उस पर पहरा रखा जा रहा था, उससे यह सौभाग्य बहुत देर तक स्थायी होगा ऐसा तो नहीं मालूम होता था। कौन जाने उसे अब तक इसलिये छोड़ रखा गया था कि उस पर और ज्यादा ज्यादती हो। वह बहुत चिन्तित हो गई।

उसने मौका पाकर श्यामा से यह पूछा—क्या यहाँ से किसी तरह भागने का मौका नहीं लग सकता ?

श्यामा ने चारों तरफ देखकर कहा—मुश्किल है। फिर अगर इस मकान से निकल भी गई तो चारों तरफ मुसलमानों का ही गाँव है, फौरन पकड़ ली जायगी।—फिर कुछ उदास होती हुई बोली—भागकर कोई जायगी तो कहाँ जायगी ? वहाँ तो सब गाँव के गाँव उजाड़ दिये गये हैं। मैंने तो अपनी आँख से देखा कि मेरी झोपड़ी में आग लगा दी गयी। सभी हिन्दू-घर उजाड़ दिये गये। भागूँ तो जाऊँ कहाँ ! सब तो मुसलमान हो चुके, केवल मुर्दे मुसलमान होने से बच गये।

रेनुका ने सोचकर देखा कि बात सही है। उसने अपने घर को जलते हुए तो नहीं देखा, सच तो यह है कि उसने कुछ भी नहीं देखा, पर उसे विश्वास था कि जरूर कुछ न कुछ बहुत भारी अमंगल हुआ होगा। पता नहीं उसके पिता-माता भी जीवित हैं या नहीं। इस प्रकार भागने की योजना तो योंही असिद्ध रही। भागना मुश्किल है और यदि भाग भी गई तो जाने की कोई जगह नहीं है। कितनी भयंकर परिस्थिति है ! अवश्य राजधानी में रिश्तेदारियों में जा सकती है, पर उसके लिये खर्चा कहाँ ? उसके गहने, यहाँ तक कि एक-एक अँगूठी तक कल ही उतार ली गयी थी।

रेनुका ने पूछा—कहीं कुछ जहर मिल सकता है ?

श्यामा हँसी, बोली—जो जहर ही मिल जाता तो क्या मैं नहीं खाती। गाँव-गँवई में जहर कहाँ धरा है। ..

रेनुका को फिर भी इस श्यामा का साथ हो जाने के कारण कुछ खुशी हुई। श्यामा अपनी ही धुन में कहती जा रही थी—अब मेरी जिन्दगी में जहर खाकर मर जाने के अलावा क्या रह गया ? अब तो मैं किसी भी लायक न रही। उनसे मिलने की इच्छा तो है, पर क्या वे मुझे लेंगे ?—वह सिसकने लगी।

हाँ, यह भी तो एक प्रश्न था। सभी समाजों में स्त्री तो लकड़ी की हाँड़ी की तरह समझी जाती है, हिन्दू समाज में तो विशेषकर। पुरुष के लिये कोई बाधा नहीं है, पर स्त्री का यदि किसी भी तरह पैर फिसले, या फिसले भी नहीं, उसके साथ कोई जबर्दस्ती करे, तो फिर उसका भद्र-जीवन तो समाप्त हो गया। सबसे अधिक तो स्त्री ही उस पर हाथ उठायेगी।

रेनुका ने अपने ढंग से इस प्रश्न को अपने ऊपर घटाकर सोचा, तो उसके हृदय में भय समा गया। यदि वह जीती लौटी तो परिमल उसे ग्रहण करेगा? ओह, वह तो भूल ही गई थी कि परिमल ने शादी न कर आजीवन देशसेवा करने का विचार किया है। अच्छा तो क्या उसे सुधांशु लेगा? हाः हाः, वह भी उसे न लेगा। नहीं वह कभी नहीं लेगा। कोई न ले, वह अकेली रहेगी। एक बार छुटकारा तो हो।

दिन भर कुलसुम के साथ बातचीत करने का मौका ढूँढ़ते-ढूँढ़ते किसी तरह समय बीत गया। पर ४ बजे से कुलसुम भी नहीं आई। क्या किसी ने सुन लिया? वह बड़े असमंजस में थी, पूछ भी नहीं सकती थी। क्यों कोई उसे बतावे? उसे बड़ी दुश्चिन्ता हुई। रात को उसे बुढ़िया से मालूम हुआ कि कुलसुम चली गई।

रेनुका समझी कि वह भाग गयी, पर बुढ़िया ने कहा—आज उसकी शादी हो गयी, वह अपने शौहर के साथ चली गई।

सुनकर रेनुका की फूँक सरक गई, जैसे कटे हुये बकरे को सिसकते देखकर बूचड़खाने के बकरे के मन में होता है।

बुढ़िया ने उसे रात के लिये कुछ फल दिये, पर उसने कुछ नहीं खाया। आँख बचाकर उसने फलों को मकान से बाहर दूर फेंक दिया।

वह बस इसी बात पर सोचती रही कि श्यामा की शादी हो गई। उसका असली पति शायद अभी जीवित था, फिर न मालूम किससे शादी हुई। वह सोचने लगी कि क्या उसकी भी इस तरह किसी से शादी होने

वाली थी। वह जितना ही इस बात पर सोचती, उतना ही उसे ऐसा मालूम होता कि उसके हृदय की धड़कन बन्द हो जायगी।

२३

आधी रात के समय परिमल और शकूर खासपुरवा देखने निकले थे।

शकूर ने परिमल से बहुत मना किया था कि मत चलो, पर उसने जब कहा कि नहीं जरूर देखना है कि किसका क्या हुआ और यदि हो सका तो लोगों को मदद देना है, तब शकूर स्वयं खासपुरवा गया और वहाँ देख आया कि क्या परिस्थिति है। वह दो कारणों से परिस्थिति देखने के लिये गया था। एक तो इस कारण कि उसे यह देखना था कि परिमल को ले आना खतरनाक तो नहीं है, दूसरा वह यह देखना चाहता था कि कहीं बहुत भद्दे दृश्य तो नहीं हैं कि परिमल देखे तो उसका बुरा हाल हो।

उसने जाकर देखा कि परिमल का घर जल गया है। परिमल की माँ तथा बहिनों के जल मरने से जो आग पैदा हुई थी, उसी से घर जल गया था। देहाती घर था, जल्दी जल गया। पर पुरोहित जी वाला बिना दरवाजे का झोपड़ा ज्यों का त्यों बना हुआ था। उसने उसके अन्दर देखा तो पुरोहित जी के सिर के अलावा सारा शरीर पाँच टुकड़ों में बिखरा हुआ पड़ा था। अब तो उसमें से कुछ बदबू भी निकल रही थी या भ्रम था। शकूर को यह दृश्य इतना वीभत्स मालूम हुआ कि उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि वह बेहोश हो जायगा। उसे अपने मृत भाई की याद आयी। आज तक यह पता नहीं लगा कि वह कैसे मारा गया। कुछ अफवाह भर सुनने को मिली थी। पता नहीं दुष्टों ने उसे भी ऐसे ही मारा हो।

शकूर ने सोचा कि परिमल को यह दृश्य दिखाना कभी भी उचित नहीं होगा। साथ ही वह यह जानता था कि परिमल को इस सम्बन्ध में

मना करना बिल्कुल बेकार है। तब वह चिन्ता में पड़ गया कि कैसे इस परिस्थिति को बचाया जाय। कुछ याद आने के कारण उसने जेब में हाथ डाला, देखा कि है, फिर चारों तरफ ताका, पर कहीं कोई नहीं था। तब उसने जेब से झट से दियासलाई निकालकर फूस की छत में लगा दिया। एक मिनट में ही आग जल उठी और चड़चड़ आवाज होने लगी।

शकूर ने उसी जगह पर आग लगाया था जहाँ उन तीन लीगी नौजवानों में से एक ने लगाना चाहा था, पर दियासलाई भूल आने के कारण यह आग लगाई नहीं जा सकी थी। पर दोनों कृत्यों में कितना फर्क था?

जब आधी रात को शकूर के साथ परिमल वहाँ पहुँचा तो उसने देखा कि जिस जगह पर उसका मकान था तथा जिस जगह पर पुरोहित-जी रहते थे वहाँ राख ही राख तथा कुछ अधजली चीजें दिखाई दे रही हैं। परिमल ने पहले जो राख के इस ढेर को देखा तो उसका हृदय धक से हो गया। उसके अन्दर से एक रोना-सा उठा जिसे वह मुश्किल से रोक सका। उसे ऐसा मालूम पड़ा कि इस राख के ढेर में उसका सारा भूतकाल जला पड़ा है। और पता नहीं, उसका कोई भविष्य है या नहीं।

जगह-जगह अभी आग जल रही थी। पहले तो उसका घर पड़ता था, वह वहाँ पर गया तो थोड़ी देर तक इधर-उधर ताककर उसने शकूर से पूछा—क्या ये लोग सब के सब जला दिये गये?

शकूर को पूरा हाल मालूम था, पर मित्र के हृदय में चोट न पहुँचे इसलिये उसने कहा—कुछ पता नहीं।

इसके बाद परिमल उस जगह पहुँचा जहाँ पुरोहित जी रहते थे। वहाँ अभी तक राख गरम मालूम होती थी। परिमल ने एकाएक कुछ सूँघना प्रारम्भ किया। उसे कोई बदबू मालूम हो रही थी। हाँ, यह वैसी ही बदबू थी जैसी श्मशान में पाई जाती है। बहुत तेज बदबू थी। शकूर को भी यह बदबू मालूम हो रही थी, पर वह चुप था।

परिमल ने शकूर से कहा—मुझे कुछ बदबू मालूम हो रही है।...

शकूर बोला—हाँ, कुछ गोबर सड़ने की सी बदबू है। उसने परिमल का हाथ पकड़ लिया, बोला—चलो चलें।

परिमल ने शकूर से हाथ छुड़ाकर बदबू को कई दफे जोर-जोर से सूँघा, फिर बोला—नहीं यह तो गोश्त जलने की बदबू है।

शकूर कुछ बोला नहीं, चुप रहा, पर कुछ सोचकर बोला—चलो चलें, कोई शायद आ न जाय।

परिमल ने जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं। वह अब भी उस बदबू को सूँघ रहा था। एकाएक वह राख के अन्दर से होते हुए आगे बढ़ा। वह कुछ टटोलता-सा जाता था। शकूर चुप था, वह राख के इधर ही खड़ा रहा।

परिमल टटोलता हुआ, ढूँढ़ता हुआ उस जगह पर पहुँचा जहाँ पुरोहित जी का अधजला शरीर राखों से ढँका हुआ पड़ा था। ज्योंही यह अध-जला शरीर परिमल के पैरों से लगा, त्योंही उसने पुकारा—शकूर—उसके स्वर में कुछ शायद आश्चर्य था, पर भय ही अधिक था।

शकूर तो सब कुछ समझ गया था, वह फौरन पास आ गया पर वह सम्मानवश राख में कुछ दूर आकर ही ठहर गया। बोला—क्या? मैं तो तुम्हारे पास ही खड़ा हूँ।

—बाबू जी का शरीर है—अजीब स्वर में परिमल ने कहा। फिर उसने टटोल-टटोलकर शरीर के सब हिस्सों को जमा किया। उसने यही समझा कि आग के कारण शरीर के हिस्से बिखर गये थे और सिर जल गया था। वह धम-से उसी राख पर इन अध-जले टुकड़ों को आलिंगन करता बैठ गया। उससे कुछ दूर पर खड़ा शकूर बड़े असमंजस में पड़ गया कि क्या कहे और क्या न कहे। इतने बड़े दुर्भाग्य के सामने वह क्या कहता? फिर शकूर एक मुसलमान होने के नाते अपने को इन दुर्घटनाओं के लिये जिम्मेदार समझता था। वह लज्जा से सिकुड़ा जा

रहा था। फिर अभी तो परिमल को अपने सारे दुर्भाग्य का पता नहीं था। वह इतने ही से पस्त होकर राख पर बैठ गया था। पता नहीं उसे अपने सारे दुर्भाग्य का पता लग जाय तो क्या हो ?

परिमल धीरे-धीरे रो रहा था। शकूर चुप रहा, पर जब काफी देर हो गई तो उसने अपने स्वर को जहाँ तक हो सका कोमल करते हुए कहा—भाई उठो।

परिमल उसी प्रकार आधा रोते हुये बोला—इस आदमी ने जीवन में कभी किसी का नुकसान नहीं किया था और मुझे विश्वास है कि वे अन्त तक अपने आदर्श के लिये अहिंसात्मक रूप से लड़ते हुये मारे गये शायद जिन्दा जला दिये गये। ऐसे आदमियों को मारकर किसी समूह की भलाई हो सकती है, मैं तो ऐसा नहीं समझता।

शकूर बोला—ठीक है, मैं समझता हूँ कि ऐसे लोग इस्लाम की ही नहीं, दुनिया में हर मजहब की कब्र खोद रहे हैं। यों तो इस्लाम की कब्र कोई खोद न सका, पर जब सब मजहबों की कब्र खुद रही है तो इस्लाम की भी कब्र खुद जायगी।—कुछ रुककर बोला—पर यहाँ तो रातभर नहीं रह सकते।

—नहीं—कहकर परिमल उठ खड़ा हुआ फिर बोला, देखो शकूर जब तक ये जिन्दा थे तब तक मैं इनसे और नौजवानों की तरह इस बात पर लड़ा करता था कि अहिंसा से गुण्डों का सामना किया जा सकता है या नहीं, मैं अब भी समझता हूँ कि अहिंसा से इनका सामना नहीं किया जा सकता, पर साथ ही मैं समझता हूँ कि ऐसे मौकों पर हिंसा भी बेकार है। हिंसा से हिंसा पैदा होती जायगी जैसा बाबूजी कहते थे और फिर हम कहीं रुक नहीं सकेंगे। ये जो हड्डियाँ पड़ी हैं उनसे कोई भी ऐसी भावना पैदा न होगी जिससे हमारी जाति का कल्याण खटाई में पड़ जाय, पर हिंसा से तो एक दुष्ट-चक्र ही चल निकलेगा जिसका कहीं अन्त नहीं। क्या पिता जी के मरने से किसी समाज को नुकसान हुआ ? मैं तो सम-

झता हूँ इनसे जाति मात्र की भलाई ही होगी। अवश्य यदि लोग उनके सन्देश के प्रति सच्चे रहें और इधर उधर बदल न जायँ। ··

शकूर को आश्चर्य हो रहा था कि यह अहिंसा के गीत गा रहा है, उसने परिमल का हाथ पकड़कर कहा—जरूर, पर अब चल देना चाहिये।

परिमल स्वप्नचालित की तरह उस ओर बढ़ा, जिस ओर कल तक उसका घर था। वह उसी घर में पैदा हुआ था, उसी में बचपन के खेल खेले थे। यह उसके लिये शान्ति तथा आराम का दूसरा नाम था। घर, मीठा घर!

वह यहाँ भी राख में घुस गया और उसी प्रकार टटोल-टटोलकर चलने लगा। कहीं कोई कड़ी चीज मिलती तो वह उसे सावधानी से देखता कि क्या है; पर शायद वह जिस चीज को ढूँढ़ रहा था वही नहीं मिल रही थी। शकूर समझ गया कि परिमल क्या ढूँढ़ रहा है। वह पहले की तरह फिर राख के बाहर खड़ा रहा। उसका हृदय भी धड़क रहा था। वह सोच रहा था परिमल इसे सह सकेगा?

परिमल ढूँढ़ता रहा।

थोड़ी देर में ही वह शायद जो खोज रहा था, उसे वह मिल गया। वह ठिठक कर खड़ा हो गया। उसने झुककर देखा तो यह एक पूरा कंकाल था। उस बिना दरवाजे के झोपड़े में मिले हुए कंकाल की तरह यह कंकाल अधजला नहीं था। कम से कम इसमें कोई गोश्त मालूम नहीं दे रहा था और दूसरी बात यह थी कि यह टुकड़े टुकड़े नहीं था बल्कि पूरा एक कंकाल था।

उसने उस कंकाल को टटोल-टटोलकर देखा, मानो वह इस प्रकार यह जानने की चेष्टा कर रहा था कि यह कौन है। पर कंकाल अपने रहस्य किसी से नहीं बताया करते। वह किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सका। उसने केवल इतना ही कहा—ओह···

अब वह रो नहीं रहा था। रोने की भी तो हद होती है।

इसके बाद इस कंकाल को वह वहीं छोड़कर आगे बढ़ा और पहले से अधिक ध्यान से राख ढूँढ़ने लगा। पास ही उसे और भी दो कंकाल मिले। परिमल अब आपे में नहीं था। वह एक पागल की तरह हँसा, बोला—अच्छा, सबको जला दिया, एक को भी नहीं छोड़ा। ··

फिर वह पागल की तरह जल्दी-जल्दी राख भी ढूँढ़ने लगा। उसे बड़ी देर में एक कंकाल और मिला।

अब सब राख उलटी जा चुकी थी। कहीं कोई राख नहीं बची थी। कुछ देर तक राख के ढेर में खड़े होकर परिमल ने कुछ जैसे सोचा, फिर उसने शकूर को बुलाया—शकूर

शकूर फिर एक बार उसके पास आकर खड़ा हो गया। बोला—क्या?

परिमल ने कहा—इन हड्डियों को इकट्ठा कर दिया जाय। जानता हूँ कि इससे कुछ फायदा नहीं, पर न मालूम क्यों ऐसा मालूम हो रहा है कि ऐसा करने पर इनकी आत्मा को अगर आत्मा है तो शान्ति मिलेगी। कम से कम मुझे तो शान्ति मिलेगी। आओ तुम मुझे मदद करो। सबको एक जगह कर दिया जाय।

इसी समय दूर में पेड़ की आड़ से चन्द्रोदय हो रहा था। उसकी रोशनी आकर राखों के ढेर पर पड़ी। परिमल तथा शकूर ने उस उठते हुए चाँद की तरफ देखा। इस राख के ढेर पर इन कंकालों पर अच्छी तरह चाँदनी छिटकी।

दो तरुण भूत के कंकालों से भविष्य की रचना कर रहे थे।

परिमल और शकूर ने मिलकर सब कंकालों को उठाकर पुरोहित जी के अधजले शरीर के साथ रख दिया। यहाँ तक तो परिमल की आँखों के सामने कार्य-क्रम स्पष्ट था, पर जब सब कंकाल इकट्ठे कर दिये गये, तब उसे आगे यह नहीं सूझा कि क्या हो।

वह और शकूर दोनों इस नये श्मशान पर खड़े होकर हतबुद्धि-से ताक रहे थे। परिमल ने सोचा न मालूम कितने घरों में ऐसा ही श्मशान

मचा हुआ था, पर इससे किसका फायदा था? क्या इससे मुसलमानों का फायदा था? नहीं; फिर भी यह सब हुआ और इनका वास्तविक परिणाम सामने रखा था।

शकूर कहना चाहता था कि अब चला जाय, पर अब वह ऐसा कैसे कहता? ऐसा कहना एक तरह से इस स्थान की पवित्रता को नष्ट करना था। वह चुप रहा। इस समय तक इधर की राख भी ठंढी हो चुकी थी। परिमल ने ही अन्त में कहा—पता नहीं लगता कि कौन मरे और कौन बचे? यहां पर तो इतने ही मरे ऐसा मालूम देता है।

शकूर ने इस पर कुछ नहीं कहा। थोड़ी देर बाद परिमल ने ही कहा—चलो, दुनिया में खड़े रहने के लिये कोई गुञ्जाइश नहीं है। जीवन तो एक विरामहीन संग्राम है। मैंने पहले ही यह तय किया था कि समाज की काली शक्तियों के विरुद्ध लड़ना है, पर अब तो इसी को यहाँ पर फिर दोहराना है।

चाँद की रोशनी में शकूर का चेहरा बड़ा भला मालूम हुआ।

शकूर ने कहा—मैं भी तुम्हारे साथ हूँ और हमेशा रहूँगा।

परिमल गद्‌गद् होकर बोला—हाँ, तुम्हारे बगैर मैं कुछ भी नहीं कर सकता। आओ मेरे दुख के साथी, उसने आगे बढ़कर शकूर को हृदय से लगा लिया।

श्मशान में जीवन की चिनगारी जल पड़ी।

इसके बाद परिमल फिर उन कंकालों से लिपट कर मिला, उसकी आँखें आँसुओं से भर रही थीं।

फिर दोनों चाँद को पीछे रखकर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर उस श्मशान से निकले। उनके शरीर पर राख लगी हुई थी, बदबू आ रही थी, पर वे दोनों इन बातों से बेखबर अपने स्वप्न में मस्त चले जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने गांव के अन्य उजड़े तथा जले हिस्सों को देखा, पर वे कहीं नहीं ठहरे। सीना ऊँचा किये हुए वे चलते ही गये। चाँद

उनको देख कर हँसा । यह व्यंग की हँसी थी कि आशीर्वाद ?

ठीक उसी समय शायद उन्हीं के इर्द-गिर्द लोग अभी कल के झगड़ों से पस्त पड़े थे, पर ये दोनों इस भयंकर अन्धकारमय वातावरण में दो चिनगारियों की तरह चले जा रहे थे ।

२४

रेनुका के दो दिन शान्ति से बीत गये, तीसरे दिन जिस मकान में वह रखी गई थी उसके इर्द-गिर्द कुछ अधिक चहल-पहल मालूम हुई । रेनुका तो आजकल छिपकली से भी घबड़ाती थी, उसने जो शोर-गुल सुना तो वह चौकन्नी हो गई । उसने बुढ़िया से पूछा—क्या बात है ?

बुढ़िया बोली—कोई जलसा होने वाला है ?

—कैसा जलसा ?

बुढ़िया ने कुछ हिचकिचाहट के बाद कहा—यही तुम्हारे बारे में ।

—मेरे बारे में ?—आश्चर्य तथा भय के साथ रेनुका ने पूछा ।

बुढ़िया बोली—हाँ, पर वह या तो कुछ जानती नहीं थी, या जानती भी थी तो बताना नहीं चाहती थी, बोली—मालूम नहीं है ।

थोड़ी देर में रेनुका को खुद ही मालूम हो गया कि क्या किस्सा है । रेनुका को तो पहले ही मालूम हो चुका था कि उसके कई दावेदार हो रहे हैं । इन्हीं दावेदारों के दावों का फैसला करने के लिये कुछ लोगों का जलसा बैठा था ।

यद्यपि रेनुका उस जलसे में बुलाई नहीं गई और न वह जाना ही चाहती थी, पर फिर भी जिस कमरे में वह रखी गई थी, वहाँ से उनकी सारी बातचीत सुनाई पड़ती थी ।

कुछ तो दावेदार थे। इनकी संख्या तीन के करीब थी, या चार हो। बाकी फैसला करने वाले थे। रेनुका कान लगाकर सुनने लगी तो उसे इन लोगों की बात पर बड़ा आश्चर्य तथा भय हुआ। ये लोग उसके सम्बन्ध

में ऐसे बातचीत कर रहे थे मानो वह कोई गोभी-आलू, बकरी या गाय हो।

एक कह रहा था—मैं इसे ले आया इसलिये मुझे यह मिलनी चाहिये। मैं अगर इसकी फिक्र में न रहता तो मुझको न मालूम कितने हजारों के माल मिल जाते। वहां तो लाखों की लूट हुई अगर हम इस औरत की फिक्र में न रहते तो हमें हजार-दो हजार का फायदा हो गया होता।

दूसरे ने टोकते हुए कहा—तुम वहां पर हजार-दो-हजार के फायदे के लिये गये थे या मजहब के लिये गये थे?—यह कह कर कुछ रुकते हुए दूसरे व्यक्ति ने कहा—तुम इस औरत को रखना चाहते हो सो तुम्हारे पास क्या है? जानते हो यह औरत कोई मामूली नहीं है?

दूसरे व्यक्ति की बातचीत से यही ज्ञात होता था कि वह कुछ रुपये वाला है। वह इसी कारण ऐसी बात कर रहा था। पहला व्यक्ति जिद के साथ बोला—आप अमीर हैं, रहें, पर पाकिस्तान में सब बराबर हैं।

दूसरा व्यक्ति बोला—हरगिज नहीं। जिस वक्त अरब में रसूलअल्लाह थे उस वक्त भी छोटे-बड़े-अमीर थे, कभी न बराबर सब रहे हैं न कभी सब बराबर रहेंगे।

इसी प्रकार तर्क-वितर्क चलने लगा। जो तीसरा दावेदार था उसका दावा इसलिये था कि वह समझता था कि उसने इधर के हमले का सङ्गठन किया, इसलिये उसका दावा था।

रेनुका ने अपने कमरे से इन दावेदारों की शक्ल देखी और उसे बड़ी घृणा हुई। इस बीसवीं सदी में इस तरह की बातें कोई कर सकता है? इसका उसे बहुत आश्चर्य था। एक तरह से खुले आम ये लोग ऐसी बेहूदी बहस कर रहे थे, पर इन्हें कोई रोकने वाला नहीं था। पुलिस न मालूम कहां चली गई थी? सबसे बड़े मजे की बात यह थी कि यही लोग एक नई दुनिया बनाने का स्वप्न देख रहे थे। ये ही लोग यह

समझते थे कि इनमें भी कोई सभ्यता है। यदि रेनुका को इनकी बातों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होता तो वह बैठके में बैठकर इनके विरुद्ध एक भाषण देकर चुप हो जाती पर यहाँ तो इन्हीं गुण्डों के हाथों में उसका भाग्य था। यही तो ट्रेजेडी थी।

वे लोग तो अपनी बहसें कर रहे थे और रेनुका बैठी-बैठी अपने भाग्य को कोस रही थी। इनके हाथों से निकलने का कोई भी तरीका खुला हुआ न था।

कुछ देर बहस के बाद ये लोग एक-दूसरे पर बहुत गरम पड़ने लगे। तब वही आदमी जिसने उस दिन एक दावेदार को कुत्ता कहा था चिल्लाकर बोला—तुम लोगों को शर्म नहीं आती, जाओ किसी को भी यह औरत नहीं दी जायगी।

रेनुका ने जो यह बात सुनी तो उसके मन में एकाएक आशा का टिमटिमाता-सा बुझता-सा प्रदीप जल उठा। उसने सोचा हे ईश्वर कहीं ऐसा हो जाय तो कितना अच्छा रहे। अगर ये लोग उसे छोड़ दें तो उसका नवजीवन हो जाय। वह ध्यान से उन आदमियों की बातें सुनने लगी।

पहला दावेदार बोला—हाँ, नहीं दी जायगी, तुम रख लो न, बड़े आये हो ठेकेदार। जो तुम चाहोगे वही होगा न।

एक दूसरे पंच ने कहा—हाँ तो अगर सब लोग लड़ते रहोगे तो यह तो होगा ही।

रनुका का हृदय फिर एक बार आशा से नृत्य कर उठा। तो दो-दो पंच उसके पक्ष में हैं। शायद और भी लोग हों। हे भगवान, हे ईश्वर, हमने अपनी जान में कभी कोई पाप नहीं किया, जितना मुझसे बन पड़ा मैंने दुखियों पर दया ही की, इनको सुबुद्धि दो और मुझे छुड़ा दो।

वह कान खड़ा कर उनकी बातें सुनने लगी कि किसी दावेदार ने भी अपना दावा वापस नहीं किया। सभी अपने दावों पर टिके रहे।

अन्त में पंच लोग परेशान हो गये। वे यह समझ ही नहीं पा रहे थे कि क्या करें। यद्यपि वे दावेदारों को धमका रहे थे कि किसी को यह औरत नहीं मिलेगी, पर वे जानते थे कि उन्हें ऐसा करने का हक नहीं है, फिर वे ऐसा करते तो उन्हें मानता कौन ? इसके अलावा इस औरत को किसी न किसी के सुपुर्द तो करना ही था पंचों ने यह तय किया कि दावेदार अपना दावा पेश कर चुके, अब वे थोड़ी देर के लिये हट जाँय। पंच आपस में सलाह करेंगे फिर कोई राय देंगे। इसके अलावा और चारा ही क्या था ?

जब सब दावेदार निकल गये तो पंचों ने बड़ी देर तक परिस्थिति पर आलोचना की। यदि वे किसी एक को यह औरत दे देते (इन लोगों के लिये रेनुका केवल औरत थी) तो उससे आपस में फूट होने की सम्भावना थी। इसलिये पंचों में बेचारे अधिकांश मूरख किसान थे यह तय किया कि यह औरत सबको दी जाय। यों तो उनका फैसला बहुत अजीब मालूम पड़ेगा पर जब हम हिन्दू-पुराण की तरफ दृष्टि डालेंगे तो किसी कारण से भी हो द्रौपदी के सम्बन्ध में भी ऐसा ही फैसला किया गया था, अवश्य उस फैसले में और इस फैसले में फिर भी जमीन-आसमान का फर्क था, पर फिर भी हमने यह दृष्टान्त इसलिये पेश कर दिया कि इनका फैसला बहुत अनहोनी न जँचे।

पंचों ने यही फैसला सुना दिया, पर इसमें इतना संशोधन कर दिया कि वह एक-एक हफ्ते सब दावेदारों के पास रहेगी। अन्त में जिसे वह मिलेगी, अगर वह चाहे तो उससे उसकी शादी कर दी जायगी।

रेनुका ने भी अपने स्थान से यह फैसला सुना और जिन पंचों से वह इतनी उम्मीद रखती थी, उनसे जब वह फैसला सुना तो उसे बहुत ही दुख हुआ। यदि वह कोई दर्शिका होती तो उसे यह फैसला हास्यजनक मालूम होता पर इस फैसले के साथ तो उसका जीवन बँधा हुआ था। वह इसे उस रूप में कभी नहीं ले सकती थी। फिर इस फैसले का अर्थ

वह पूरा न समझे, कुछ-कुछ समझती थी और इस समझने के कारण सचमुच उसके पैरों तले से जमीन खिसक गई।

पर उसे तो यह सब सहना ही था।

पंचों ने यह भी कहा कि कल सबेरे मुल्ला बुलाकर पहले इस औरत को मुसलमान बना दिया जायगा, फिर फैसले को काम में लाया जायगा। किसको यह पहले मिलेगी और किसको बाद को इसके सम्बन्ध में पंचों ने यह फैसला दिया कि जिसने उसे सबसे पहले देखा, उसे सबसे पहले मिलेगी, इसी देखने के क्रम से कम रहेगा।

फैसला देकर पंच और दावेदार चले गये और रेनुका अपने कैदखाने में अधमरी होकर पड़ी रही।

उसे यह सारा फैसला और सारी बातें कुछ अवास्तविक मालूम हो रही थीं। ये बातें इतनी असम्भव तथा अप्रत्याशित मालूम दे रही थीं कि उसका जी चाहता था कि उन पर विश्वास न करे। पर सामने ही श्यामा का उदाहरण था। उसकी सास को मार कर उसे ले आये, रास्ते में उस पर अत्याचार किया, अन्त में उसकी 'शादी' हो गई और वह न मालूम कहाँ भेज दी गई। ऐसी हालत में उसे अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था। जैसे फाँसी-घर में फाँसी की सजा प्राप्त व्यक्ति शान्त होकर फाँसी की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार वह भी सवेरा होने की प्रतीक्षा करने लगी।

रेनुका जीवन में पुरुष तथा स्त्रियों की समानता की कट्टर समर्थिका थी, पर उसने अपनी जो हालत सोची तो उसे यह ज्ञात हुआ कि नहीं स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर नहीं हो सकतीं। उसने सोचा कि उसकी हालत में यदि कोई पुरुष होता तो उसे अधिक से अधिक यही डर होता कि उसे मारते-मारते मार डाला जायगा, पर उसके सामने तो मरने से बढ़कर बहुत से अपमान थे। इसी प्रकार की दुखदायिनी बातें उसके मन में बराबर आती रहीं।

वह यह चाह रही थी कि यह समय कभी खतम न हो पर ऐसा थोड़े ही होता है ? नियमानुसार दिन खतम हुआ और रात भी शुरू हो गई।

२५

शकूर और परिमल छिपकर अपने को बचाते हुए बड़े जोरों से उद्धार-कार्य में लगे हुए थे। इन्होंने ऐसे सब उपादानों को इकठ्ठा कर लिया जो उनके साथ काम करने के लिये तैयार थे। इस सारे इलाके में इस समय कोई हिन्दू तो था ही नहीं, भूतपूर्व हिन्दू अलबत्ता थे। ऐसे भूतपूर्व हिन्दुओं से मिलना बहुत खतरनाक था, क्योंकि ये लोग इतने डरे हुए थे कि उनसे बातचीत करना खतरे से खाली नहीं था।

परिमल विशेषकर अपने दो भाइयों तथा रेनुका की तलाश करवा रहा था। इस मामले में शकूर के ही जरिये से सब काम हो रहा था। परिमल के भाइयों का तो कोई पता नहीं लगा, पर रेनुका का कुछ-कुछ पता चल रहा था। जिस समय पंच रेनुका के भाग्य का फैसला कर रहे थे, उसी समय शकूर का दल रेनुका की तलाश करता हुआ वहाँ तक पहुँच चुका था जहाँ पोखरे के किनारे बैठकर रेनुका ने फल खाये थे।

परिमल ने शकूर की सलाह के अनुसार मुसलमानी कपड़े पहिन लिये थे और वह बराबर अथक रूप से दौड़ रहा था। जब उसे पता लगा कि इस प्रकार रेनुका ने उस पोखरे के पास बैठकर फल खाया था, तो वह वहीं पहुँचा और स्वयं खोज में हिस्सा लेने लगा। शकूर के दल के मुसलमान पास के गाँवों में जाकर पता लगाने लगे कि इसके बाद वह किधर ले जाई गई, स्वयं शकूर भी अथक रूप से इसमें दौड़ रहा था। ऐसा मालूम हो रहा था कि जल्दी ही पता लग जायगा, क्योंकि अभी दो दिन हुए वह यहाँ पर थी। परिमल का मन आशा से उद्वेलित हो रहा था।

परिमल पता लगाकर उसी पेड़ के नीचे बैठा जहाँ उसे बताया गया था कि रेनुका बैठाई गई थी। उसने चारों तरफ देखा कि कोई कहीं नहीं है तब उसने वहाँ की थोड़ी-सी धूल उठा ली और उसको अपने सिर से लगाया। फिर उसकी आँखो में आँसू उमड़ आये। ये आँसू केवल रेनुका के लिये थे ऐसी बात नहीं। इस बीच में उसे अपने परिवार के सम्बन्ध में कैसे कौन मारा गया इसकी पूरी खबर मालूम हो चुकी थी। उसे दशरथ बाबू और रूपवती की खबर भी मालूम हो चुकी थी। इसीलिये ये आँसू किसके लिये थे, किसके लिये नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। फिर उसने इनके अलावा और सैकड़ों की भी कहानी सुनी थी एक से एक करुण तथा कष्टकर यदि, शकूर की दया न होती तो उसे इसमें सन्देह नहीं था कि वह भी इस बीते हुए जगत की बीती-कहानियों में होता।

बड़ी देर तक वह वहाँ बैठा रहा, उसे इस मिट्टी पर बैठते हुए अच्छा मालूम दे रहा था जहाँ कुछ दिन पहले रेनुका बैठी थी। उसे बरबस उस समय की बात याद आई जब रेनुका उपयाचिका होकर उसके घर आई थी और उसके फैसले को सुनकर रास्ते भर रोती-बिलखती हुई चली गई थी। उस समय परिमल को यह समझ ही में नहीं आ रहा था कि वह इस रोती हुई प्रेममयी से क्या कहे। उसे एक भी शब्द नहीं सूझा था, फिर भी उसने सोचा था कि बिदायी के समय कुछ कहेगा, पर मंगलसिंह आदि के आ जाने से उसकी यह तमन्ना दिल की दिल ही में रह गई। फिर तो वह चुपचाप लौट आया था। इसके बाद उसने सुना कि रेनुका की शादी अमुक तारीख को है जब यह सब हुआ। कितने थोड़े समय में इतनी बातें हुई।

शकूर ने आकर उसका ध्यान भंग किया। बोला—भाई बहुत कोशिश से पता लगा कि उन्हें बैलगाड़ी पर यहाँ से सात कोस एक गाँव है उसमें ले जाया गया है।

परिमल ने बेचैनी के साथ कहा—चलो, हम वहीं चले चलें।

शकूर ने कहा—आज हम लोग वहाँ नहीं जा सकते।

—क्यों?—निराश होते हुए करीब-करीब जवाब माँगने के लहजे में परिमल ने पूछा। बोला—आज हम अगर नहीं पहुँचे तो सम्भव है कि कल तक वह और कहीं भेजी जाय। यही तो हो रहा है। फिर इस बीच में न मालूम क्या क्या बीते?

शकूर ने कहा—जाना तो हम भी चाहते हैं पर आज हमको एक काम दिया गया है अगर हम उसे न कर पाये तो लीग वालों को मुझ पर शक हो जायगा।

—क्या काम है?

—काम कुछ भी नहीं है एक चिट्ठी पहुँचानी है और उसका जवाब लाकर देना है।

—कल हो जायगा।

—नहीं बिरादर, तुम नहीं समझ रहे हो आज ही काम होना चाहिये नहीं तो सारा गिरोह खतरे में पड़ जायगा। तुम जानते हो मुझ पर ये लोग पहले शक करते थे।

—हाँ, लेकिन सोचकर देखो।

—फिर उस गाँव में भी तो पता लेना है कि वह कहाँ रखी गई है, वहाँ से कहीं और तो नहीं भेज दी गई वगैरह वगैरह।

मजबूरन परिमल को मानना पड़ा।

शकूर पर जो काम था उसमें एक दिन के बजाय डेढ़ दिन लग गये। फिर जब ये उस गाँव में पहुँचे तो उन्हें खबर लगाने पर यह मालूम हुआ कि एक हिन्दू लड़की जो बैलगाड़ी से आई थी, कहीं एकाएक भेज दी गई। फिर पता लगाया तो मालूम हुआ कि अमुक गाँव में भेज दी गई है।

यह गाँव यहाँ से पास ही था। शकूर का दल उसी गाँव के पास पहुँचा और एक निर्जन स्थान देखकर वहीं पड़ाव डाले पड़ा रहा। कुछ लोग यह पता लगाने गये कि वह स्त्री किस घर में रखी गई है। अधिक-

तर लोग वहीं पर रहे। जो लोग पता लगाने के लिये भेजे गये थे वे जल्दी ही सब पता लेकर आये।

यह मालूम हुआ कि एक फकीर के घर में वह औरत है। बताने वाले यह ठीक-ठीक नहीं बता सके कि यह औरत यहीं रहेगी या बाद को फिर यहाँ से भेजी जायगी।

परिमल ने कहा—चलो फौरन हमला बोल दें, हमारे पास बन्दूकें भी तो हैं।

शकूर बोला—खैर, यह तो हम कर ही सकते हैं, पर ऐसा करने से फिर हम आगे कुछ नहीं कर सकेंगे। इसलिये चालाकी से काम लेना पड़ेगा।—कुछ रुककर शकूर ने कहा—जब यह औरत कहीं घर से निकले और गाँव में निकलना ही पड़ेगा, यहाँ कोई पाखाने नहीं होते, तब उसको ले आया जायगा।

—पर उस पर कोई पहरा भी तो रहता होगा?

—हाँ पहले-पहल पहरा जरूर होगा, पर पहरा भी औरतों का होगा। कोई ज्यादा मुश्किल नहीं है।

तदनुसार एक दो दिन तो उस स्त्री की गतिविधि देखने में लगा। फिर शकूर बोला—आज काम होगा। सब ठीक कर लिया जाय। काम ज्योंही हो गया कि हम वापस चलेंगे। फिर एक मिनट नहीं ठहरना है।

संध्या का समय ही इसके लिये चुना गया। बात यह है कि रात में भागना आसान था।

बड़ी आसानी से काम हासिल हुआ। परिमल बड़े अधैर्य के साथ प्रतीक्षा कर रहा था कि कब रेनुका आवे और कब मैं मिलूँ? उसे सबसे बड़ी जो बात कहनी थी वह अपने पिता जी के सम्बन्ध में कहनी थी। वह आज रेनुका को यह बताने वाला था कि वह उनको जैसा दकियानूसी समझती थी, वे वैसे नहीं थे। ठीक अपने शहीद होने के तीन-चार दिन

पहले पुरोहित जी को जब दशरथ बाबू का भेजा हुआ वह निमंत्रण-पत्र मिला था, जिसमें उन्हें सुधांशु के साथ अपनी पुत्री की शादी में बुलाया गया था, तब उन्होंने परिमल से कहा था—लोग समझते होंगे कि मैंने बीस बिसवा वाली बात छेड़कर शादी क्यों रोक दी ? मेरा मतलब यह थोड़े ही था। मेरा मतलब यह था कि या तो शादी माँ-बाप के कहने के अनुसार होनी चाहिये और या तो लड़के और लड़की में इतना प्रेम हो कि वे सभी बन्धनों को तोड़कर शादी कर सकें। जब प्रेम है तो प्रेम ही से शादी होनी चाहिए। मैंने तो परीक्षा के लिये एक छोटी-सी बाधा उपस्थित कर दी थी। कोई भी प्रेम उस बाधा को आसानी से तोड़ सकता था।

इस प्रकार परिमल रेनुका को यह बताने वाला था कि पिता जी इसमें बाधक नहीं थे।

परिमल इस प्रकार बैठा हुआ सोच रहा था कि क्या-क्या बातें होंगी, इतने में शकूर और उसके दो साथी एक औरत को ले आये। परिमल तड़ाक से खड़ा हो गया और उससे बात करने जा रहा था, पर शकूर ने घबड़ाहट के साथ कहा—इनके साथ जो औरत थी उसने हल्ला मचा दिया। गाँव वाले अभी निकल पड़ेंगे इसलिये कुछ दूर चलकर तभी बातचीत होगी। ऐसा कहने के साथ उसने परिमल के हाथों को पकड़ लिया और एक तरह से जबर्दस्ती उसे घसीट ले चला। शकूर ने अपने साथियों से इशारा किया कि वे उस स्त्री को ले चलें।

परिमल ने एक तरह से शकूर के हाथों में गिरफ्तार-सा होकर केवल रेनुका की तरफ दृष्टि डाली। उसे अँधेरे में ऐसा मालूम हुआ कि वह कुछ लँगड़ा कर चल रही है। उसने सोचा मारपीट के कारण ऐसा हुआ होगा।

इस समय तक सचमुच उस गाँव से चिल्लाने की आवाज आ रही थी। कई लालटेनें हिल रही थीं और इधर आती हुई मालूम होती थीं। परिमल शकूर और सारा दल जल्दी-जल्दी चला।

जब ये लोग काफी दूर आ गये और ऐसा मालूम पड़ा कि अब कोई खतरा नहीं है तब ये लोग दम लेने के लिये रुके। शकूर ने परिमल से इशारा किया और अपने गिरोह वालों से यह कहा—चलो जरा सुस्ता लें। लोग इसका मतलब समझ गये कि परिमल को बातचीत का मौका दिया जाय।

परिमल बड़ी उमंगों के साथ धड़कते हुए हृदय से उस ओर बढ़ा जहाँ घूँघट काढ़कर वह बैठी हुई थी। परिमल ने पुकारा—रेणु, रेणु—उसके स्वर में प्रेम अधिक था कि उद्वेग, यह कहना कठिन था, प्रेम का उद्वेग तो था ही।

उधर से कोई उत्तर नहीं आया, तब परिमल ने कहा—मैं परिमल हूँ, बोलती क्यों नहीं ? अब तुम्हारा उद्धार हो गया। ये मुसलमान भाई अपने ही आदमी हैं। इनसे कोई डर नहीं।

पर फिर भी उधर से कोई उत्तर नहीं आया। केवल कुछ अस्फुट सिसकियाँ सुनायी पड़ रही थीं।

परिमल ने व्याकुल होते हुए कहा—रेणु, रेणु अब रोती क्यों हो ? अब तो तुम्हारा उद्धार हो गया। अब तुम्हें कोई डर नहीं है। जो हुआ उसे भूल जाओ। अब सुनहला प्रभात आया।···

सिसकियाँ और प्रबल हुईं। तब परिमल आगे बढ़ा और घूंघट उतारने के लिये उद्यत हो गया !

तब उस घूँघटवाली ने जल्दी से कहा—पर मैं तो रेणु नहीं हूँ, मेरा नाम तो श्यामा था, इस समय कुलसुम है।

परिमल दो कदम पीछे हट गया और बोला—आप ? आप कौन हैं ?

तब श्यामा उर्फ कुलसुम ने अपनी सारी कहानी कह सुनायी।

परिमल ने आवाज देकर शकूर को बुलाया। उसे बड़ी निराशा हुई थी। एक दलिता का उद्धार हुआ था और यह शायद रेनुका से अधिक दलिता थी, पर परिमल को इस बात की जरा भी खुशी नहीं थी। उसे

तो श्यामा की बातों में बहुत कम दिलचस्पी आयी।

शकूर ने आकर जो सुना तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। पर उसने एक ऊपरी निराशा व्यक्त करने के अतिरिक्त इसमें कोई विशेष निराशा की बात नहीं देखी। उसने कहा—चलो कुछ तो फायदा हुआ, हमारी कोशिश बिल्कुल रायगाँ तो नहीं गई, अब आगे उनकी भी तलाश की जायगी।

परिमल को यह बात कुछ बहुत जँची नहीं। वह तो निराशा के सागर में डूब रहा था। उसे तो ऐसा मालूम दे रहा था कि अब रेनुका का पता नहीं लगेगा। शकूर इतना निराश नहीं था। उसने कहा—गलती कहाँ पर हुई पता नहीं, हमें तो ठीक-ठीक पता लगा था।

—ठीक-ठीक पता लगा था तो फिर गलती कैसे हुई?—परिमल ने कुछ खीझ के साथ पूछा।

इस पर खुद श्यामा ने रोशनी डाली। उसने बताया कि किस प्रकार एक दिन के लिये उससे और रेनुका से साबका रहा। फिर तो परिमल ने सारा ब्यौरा पूछ लिया। उसने यह भी मालूम कर लिया कि रेनुका किस प्रकार आत्महत्या की बात सोचा करती है। यह सब सुनकर परिमल को बड़ा दुःख हुआ और उसने शकूर से कहा—जल्दी से जल्दी वहाँ पहुँचना चाहिए।

शकूर ने कहा—यह तो खैर होगा ही।

अब उसके सामने यह प्रश्न था कि श्यामा का क्या किया जाय। इस समस्या को हल करके तभी आगे बढ़ना था। पूछी जाने पर श्यामा ने कहा—आप लोगों ने मेरा उद्धार क्यों किया? मेरा तो कहीं लौटने का स्थान ही नहीं है। पति अगर जीवित हों, तो वे नैष्ठिक पुरोहित ठहरे वे मुझे कब लेने लगे?—कहकर वह सिसकने लगी। उसने फिर से घूंघट भी चढ़ा लिया। शकूर और परिमल कुछ देर के लिये हतबुद्धि हो गये।

अन्त में परिमल बोला—आपको किसी आश्रम में कर दिया जायगा।

श्यामा बोली—आश्रम मेरा क्या करेगा ? मुझे तो यही जगह पसन्द थी जहाँ थी। बहुत कुछ खाने-पीने की झिझक निकल ही गई थी, बाकी निकल जाती। लोग मुझे थोड़े दिन में अपनी समझते, पर अब तो रोना ही रोना है। मैं तो इस मुसलमान के घर जाकर यह समझ चुकी थी कि मेरा नया जन्म हुआ और अबकी मुसलमान-रूप में जन्म हुआ।

परिमल और शकूर ने यह समझा कि यह निराशा की बातें हैं। परिमल ने कहा—अभी आप बहुत परेशानी में हैं, बाद को सोचियेगा।

वे लोग अपने स्थान के लिये चल दिये। साथ में श्यामा भी चली। यह तय हुआ कि श्यामा को राजधानी में भेज दिया जायगा।

यह भी तय हुआ कि कल सबेरे ही रेनुका की खोज की जायगी और फिर उसका भी उद्धार किया जायगा।

२९

इसके बाद छः सात महीने गुजर चुके थे। शकूर और परिमल की अथक चेष्टा के बावजूद रेनुका का कुछ पता नहीं लगा था। परिमल के भाइयों का पता लग गया था, वे भागकर किसी तरह राजधानी में एक रिश्तेदार के यहाँ पहुँचे थे। इस बीच में बहुत सी सेवा-समितियाँ आदि भी यहाँ आ गई थीं और बहुत सी स्त्रियों का उद्धार हो चुका था। जो सैकड़ों की तायदाद में लोग शोरवा पिला-पिलाकर मुसलमान बना लिये गये थे उनमें से प्रायः सब फिर से शुद्ध हो चुके थे।

काम जोरों से होने के कारण बहुत-कुछ हुआ था। पुरोहित जी का भी एक स्मारक बना था। इसमें कुछ मुसलमानों ने छिपकर चन्दा भी दिया था। परिमल अब खुल्लमखुल्ला रहता था। श्यामा के पति ने उसी को ग्रहण कर लिया था।

पर रेनुका का तो कोई पता नहीं मिला था, इसलिये परिमल को

ऐसा मालूम देता था कि कुछ भी काम नहीं हो सका। वह बहुत दुखी रहता था।

रेनुका अपने गाँव से तीस-पैंतीस मील के अन्दर ही थी। पंच के फैसले के बाद उस पर जो कुछ बीता था उसका वर्णन हम न करेंगे। इतना कहना यथेष्ट होगा कि पंचों के फैसले का आक्षरिक रूप से पालन हुआ था। कैसे जमींदार बाप के लाड़-प्यार से पाली हुई बेटी कोमलांगी रेणु यह सब अत्याचार सहकर भी जीवित रही, यह परम आश्चर्यजनक घटनाओं में से है।

पर यह एक तथ्य था कि वह जीवित थी। इस समय वह अशरफ नाम के एक बहुत मामूली व्यक्ति की निकाह की हुई स्त्री के रूप में थी। उसका नाम इस समय फातिमा रक्खा गया था। एक हद तक तो वह परिस्थितियों तथा अत्याचारों के विरुद्ध बहुत लड़ी पर महज जबर्दस्ती के सामने कोई प्रतिरोध नहीं टिक सकता, विशेषकर जब कि जबर्दस्ती करने वालों की संख्या बहुत ज्यादा हो और वे बिल्कुल निष्ठुर तथा हृदय-हीन हों, इसका कोई प्रमाण था तो रेनुका का जीवन।

रेनुका ने तो कलमा पढ़ने से भी इनकार किया था, जिसके लिये उस पर और अधिक ज्यादती हुई थी। पर एक हद तक लड़ने के बाद उसने अपना लंगर तोड़ दिया और बिलकुल बहने लगी। उसने अपने को समझाया कि उसे भूल जाना चाहिए कि वह कौन थी। इस प्रकार वह बिलकुल निष्क्रिय होकर अपमान तथा अत्याचार बर्दाश्त करने लगी। क्या करती ? अनाज चक्की के विरुद्ध कब तक लड़े ?

निकाह होने के बाद से उसे एक फायदा रहा। पहले उसे हर किसी की कामुकता का शिकार होना पड़ता था। पर उसके बाद से उस पर जो कुछ ज्यादती होती थी एक ही आदमी की तरफ से होती थी। पहले के मुकाबिले में उसका जीवन कुछ सहनीय हो गया था। सच तो यह है कि दो-तीन महीने तक उस पर जो पाशविक अत्याचार हुए थे उसके मुका-

बिले में उसका इस समय का जीवन बहुत ही अच्छा था। आखिर एक आदमी कितना अत्याचार करता। फिर उसे अपनी रोटी भी कमानी पड़ती थी।

कभी-कभी उसकी आँखों के सामने बड़ा गाँव वाला अपना जीवन आ जाता था, पर वह इस जीवन से उस जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं देखती थी। मानों ये दोनों अलग-अलग हों। कहाँ मोटर पर सैर-सपाटा करना, कहाँ अभाव किसे कहते हैं? इसे बिल्कुल न जानना और कहाँ इस मूर्ख के साथ सब तरह के अभाव में जीवन व्यतीत करना। न इस जीवन में कोई रस था, न अर्थ, ऐसे जीने में कोई तुक ही नहीं था। इससे तो मौत अच्छी थी।

तिस पर तुर्रा यह था कि वह संतान-सम्भवा थी। यह भी एक दुर्भाग्य था। दुर्भाग्य पर दुर्भाग्य।

रेनुका जिस गाँव में थी वह सम्पूर्ण रूप से मुसलमानी था। अब तो खैर इधर के सभी गाँव मुसलमानी थे, पर दंगे के पहले भी उसमें कोई हिन्दू नहीं रहता था। रेनुका को इसलिये कोई आशा नहीं थी और सच तो यह है कि अब उसने आशा करना भी छोड़ दिया था। जैसे वर्षों जेल में रहते-रहते, आजीवन सजा प्राप्त कैदी की ऐसी हालत हो जाती है कि वह बाहर की कल्पना करने में असमर्थ हो जाता है। कुछ वर्षों के बाद तो छूटने की एक अवास्तविक इच्छा के अलावा कोई इच्छा भी नहीं रह जाती, उसी प्रकार रेनुका की भी हालत हो गई थी। अब रेनुका का चेहरा भी बहुत बदल गया था। इधर की सारी घटनाओं ने उसके चेहरे पर अपना इतिहास लिख दिया था। झुर्रियों से लिखा कष्टों का इतिहास! कहाँ तो उसका चेहरा एक सादे कागज की तरह था और कहाँ उसके चेहरे पर अब रेखाओं का एक पूरा समूह था। उसका व्यक्तित्व तथा स्वभाव सब बदल चुके थे।

इसी प्रकार रेनुका एक शिशु की माँ भी हो गई। जिस दिन यह

शिशु पैदा हुआ, उस दिन वह जितना रोई, उतना वह जीवन में कभी नहीं रोई थी। अब तक उसे न हो ऊपर से पर भीतर से यह आशा बनी हुई थी कि कभी वह शायद फिर अपने पुराने जीवन में, जीवन में तो क्या अपनी पुरानी परिस्थितियों में लौटे, पर जब यह शिशु पैदा हुआ तो उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि अब उसके लिए प्रत्यावर्तन असंभव हो गया है। उसे ऐसा मालूम पड़ा कि यह नन्हा-सा शिशु मानों पत्थर का वह टुकड़ा है जिससे उसके पहले के जीवन के साथ उसका सम्बन्ध बिल्कुल समाप्त हो गया। अब तो कोई सांस भी नहीं रही। मानो यह शिशु उसके लिये जीवनान्त का सूचक था।

वह इस बात को कैसे अस्वीकार कर सकती थी कि यह शिशु चाहे जिस तरह भी आया हो, उसका है तथा उसके रक्त तथा मांस से पुष्ट हुआ है। उसने इस शिशु को उस प्यार से नहीं देखा जिस प्यार से माताएँ अपने शिशुओं को देखा करती हैं। पर वह तो शिशु था। वह क्या जानता था कि कैसी परिस्थितियों में उसका जन्म हुआ था? वह क्या समझता था कि वह अपनी माता के दुर्भाग्य का प्रतीक था? उसे जितना प्यार मिला, बाकी उसने चिल्लाकर-रोकर वसूल कर लिया। जब वह रोने लगता तब रेनुका नहीं, फातिमा विवश होकर उसको पुचकारती।

कभी कभी फतिमा उस शिशु को देखकर हँस भी पड़ती, पर जब भी वह ऐसे हँसती तब भी उसे फौरन इसके बाद ही मालूम होता कि हँसते-हँसते नसें टूट गई हैं। वह करुण नेत्रों से आकाश की ओर देखने लगती। यही उसका जीवन था।

एक दिन फातिमा ने देखा कि जमींदार के यहाँ से दो आदमी उसके पति को बुलाने आये हैं। उन दोनों आदमियों में से एक को देखा तो उसके चेहरे में और सुधांशु के चेहरे में जैसे समता मालूम हुई। वह चौंक पड़ी, जैसे पूर्व जन्म की कोई बात याद आ गई हो। पर वे लोग

जब जान गये कि अशरफ घर पर नहीं है तो वे चले गये। पर अगले दिन फिर अशरफ की तलाश में वह आदमी आया जिसे देखकर फातिमा चौंक पड़ी थी।

आज फातिमा बहुत पास ही खड़ी थी। आज फिर वह चौंक पड़ी। जरूर यह सुधांशु है और कोई हो नहीं सकता।

फातिमा अदबदाकर उसके पास पहुँची और पुकारा—सुधांशु, सुधांशु।

वह आदमी चौंक पड़ा। वह शायद कुछ कम देखता था, आँख फाड़फाड़ कर देखने लगा, फिर वह एक सूनी-दृष्टि से फातिमा की ओर देखने लगा।

अवश्य इस आदमी के मुँह पर कई भद्दे दाग थे, सिर पर न मालूम काहे की चोट थी जो भर जाने पर भी ज्ञात होती थी कि कभी चोट भयंकर थी। उसकी एक आँख शायद दृष्टि-शक्तिहीन थी। जो कुछ भी हो फातिमा उर्फ रेनुका को यह विश्वास हो गया कि यही सुधांशु है। उसके वर्तमान भद्दे चेहरे के अन्दर से उसने सुधांशु का भव्य चेहरा पहचान लिया। इसी से दशरथ बाबू ने उसकी शादी तय की थी। उन दिनों वह इससे कितनी घृणा करने लगी थी, पर आज उसका यह भद्दा रूप भी उसे कितना प्रिय मालूम पड़ा। कुम्भी पाक निवासी को मानो स्वर्ग की बयार का एक झोंका प्राप्त हो गया।

वह फिर पुकार उठी—सुधांशु, सुधांशु।

जिस व्यक्ति को उसने सुधांशु करके पुकारा, वह ऐसे चौंका जैसे उसने भूत देखा हो। बोला—सुधांशु कहां? मैं तो अब्दुल हूँ अब्दुल। —उसकी आँखों में आतंक था। वह चारों तरफ देखने लगा कि किसी ने सुन तो नहीं लिया। एक बार उसने फातिमा की ओर देखा, पर पता नहीं, उसकी आँखों ने काम दिया या नहीं, देखने के ढंग से तो यही

ज्ञात होता था कि उसे बहुत कम सुझाई देता है, फिर वह जल्दी से लौट गया।

फातिमा वहाँ पर स्तम्भित होकर खड़ी रही। सुधांशु की यह हालत? सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह इतना डरा हुआ था कि बात करने से घबड़ाता था। फातिमा को बड़ी घृणा हुई, पर जब उसने उसके इस समय के चेहरे के साथ उसके पहले के चेहरे की कल्पना में तुलना की तो उसकी यह घृणा दया में परिणत हो गई। वह अपने ही कष्टों को देख रही थी, अब उसने देखा कि औरों ने भी कष्ट उठाया है।

सचमुच यह सुधांशु ही था। जिस समय उसके घर पर हमला हुआ था वह भी अपने विवाह की तैयारी में व्यस्त था। पर उसने इतनी बुद्धिमानी की या कहा जाय कि कायरपन किया कि घर छोड़कर भागने का मौका मिला तो भाग गया। उसके घरवालों पर वे ही सब बातें बीतीं, जो खासपुरवा तथा अन्य ग्रामों में बीतीं। घर छोड़कर भागने को तो वह भाग गया पर वह धर्मान्धों के आक्रमण से बच न सका। दूसरे या तीसरे दिन वह पकड़ा गया पर मुसलमान होने पर राजी हुआ तो सस्ते में जान छूटी। फिर भी उसकी एक आँख गयी और चेहरे पर मार के दाग हमेशा के लिये बन गये। यदि उससे पहले पूछते कि मुसलमान बनेगा या नहीं और फिर मारते तो उस पर शायद ही मार पड़ती, पर उसे तो पहले मारा गया, फिर जब वह अधमरा हो गया तो पूछा गया। उसके बाद से वह अब्दुल हो गया और फिर उसने कभी किसी बात पर इन्कार नहीं किया। उसे जो चोट लगी थी उसके कारण उसे महीनों बेकार रहना पड़ा। यह एक आश्चर्य की बात थी कि फिर भी लोगों ने उसे जिन्दा रखा।

फातिमा ने जो सुधांशु को देखा तो उसके अन्दर फिर जीवन की लहरें हिलोरें लेने लगीं। उसे यह इच्छा हुई कि फिर वह एक बार क्यों न परित्राण की कोशिश करे। पर क्या कोशिश करे, कैसे कोशिश करे इसके सम्बन्ध में उसके विचार स्पष्ट नहीं थे। एक केवल अस्पष्ट आशा

की किरण थी जो उसे प्रलुब्ध कर रही थी। पर वह दिशा नहीं दिखाती थी।

पर जब उसने ध्यान से इस पर सोचा तो एक बाधा थी। यह शिशु, यह नन्हा-सा शिशु उसे जीवन के आह्वान से रोक रहा था। उसने उस शिशु को ध्यान से देखा, कितना निर्दोष तथा असहाय था? पर था वह बाधक।

बड़ी देर तक वह सोचती रही, पर वह किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकी। उसने शिशु को हृदय से चिपका लिया और रोने लगी।

अगले दिन फिर उसी समय अब्दुल उर्फ सुधांशु आया। रेनुका उर्फ फातिमा उसकी तरफ बढ़ी। आज अब्दुल उतना घबड़ा नहीं रहा था पर फिर भी उसने ऐसा दिखलाया कि काम से आया है। उसने पूछा—रोज आता हूँ, अशरफ नहीं मिलता, क्या वह कहीं परदेश गया है?

रेनुका ने उसके प्रश्न पर बिना ध्यान दिये कहा—यहाँ से बड़ा गाँव कितनी दूर है?

अब्दुल ने कहा—अशरफ घर पर कब आता है, मैं उसी वक्त आऊँ। खाँ साहब बिगड़ गये थे।

रेनुका समझ गई कि सुधांशु डरा हुआ है, बोली—बड़ा गाँव कितनी दूर है।

—तीस मील होगा—अब्दुल ने कहा—फिर कुछ सोचकर बोला—अशरफ कब घर पर रहता है?

रेनुका पास आती हुई बोली—क्या हम लोग भाग नहीं सकते?

इस प्रश्न को सुनकर अब्दुल जैसे घबड़ा गया। उसकी आँखों में से एक कानी होने के कारण उसमें तो यों कोई भावना प्रतिफलित नहीं होती थी, पर इस समय उस आँख में भी आतंक प्रतिफलित हुआ। उसका भद्दा चेहरा और भी भद्दा ज्ञात हुआ।

रेनुका और भी पास आ गई, बोली—चलो न भाग चलें।

अब्दुल कुछ हट गया। इतने में वह बच्चा रो पड़ा। अब्दुल ऐसा घबड़ाया कि जैसे रंगे-हाथों पकड़ा गया हो। उसने समझा कि किसी ने आड़ से उनकी बात सुन ली। भय से उसका चेहरा तन गया। उसके चेहरे पर का यह गड्ढा और गहरा हो गया, कानी आँख भयानक हो गई। बोला—कौन है ?

—कोई नहीं बच्चा है।

—बच्चा ?—उसे कुछ तसल्ली हुई, बोला—किसका बच्चा ?

—मेरा बच्चा ?

तुम्हारा बच्चा ?—अब्दुल के चेहरे पर न मालूम कौन-कौन सी भावनाएँ प्रतिफलित हो गईं। पर इन्हें जो कुछ भी कहा जाय ये घृणा के ही इर्द-गिर्द थीं। बोला—ओह—और वह चलने लगा। स्पष्ट था कि उसे इस खबर से बहुत धक्का लगा था।

कुछ रुककर रेनुका बोली—पर मैं भागते समय इस बच्चे को नहीं ले जाऊँगी।

सुधांशु कुछ रुका, ऐसे ताका कि इससे क्या आता-जाता है ?

फिर वह चला गया। सुधांशु यों तो अपनी परिस्थितियों के साथ बिल्कुल सन्धि कर चुका था और अब वह भागने की बात सोचता भी नहीं था, पर उसे जो रेनुका से यह सुझाव मिला तो मन ही मन वह इस योजना को परिपक्व करने लगा। उसे अपनी वर्तमान परिस्थितियों से कोई मोह नहीं था पर वह डरता था। रेनुका के यहाँ दो दिन आने से उसका भय बहुत-कुछ घट गया था। अब रहा यह कि रेनुका को ले जाना उचित था या नहीं ?

रेनुका के प्रति उसके मन में कभी कोई प्रेम नहीं था। वह तो केवल अपनी उच्चाकांक्षा की परितृप्ति के लिये रेनुका से शादी करने के लिये तैयार हुआ था। प्रेम के ख्याल से नहीं, पर और दृष्टि से अर्थात् भागने की योजना की सफलता की दृष्टि से ही वह यह सोच रहा था कि रेनुका

को ले चलना चाहिए या नहीं। उसने सोचकर देखा कि एक औरत के साथ रहने से कुछ सुविधा हो सकती है। फिर उसके मन में रेनुका के प्रति कुछ दया भी थी। केवल छत्तीस घण्टे और हो जाते तो रेनुका उसकी पत्नी हो जाती।

इधर कहने को तो रेनुका ने कह दिया कि वह बच्चे को छोड़कर चल देगी, पर यह इतनी आसान बात नहीं थी। जब वह बच्चे के पास पहुँची तो उसे ऐसा मालूम पड़ा कि उसने ऐसा कह कैसे दिया ? बच्चे पर उसका हक तो है ही और एक बच्चे के ले जाने से क्या बाधा हो सकती थी ? नहीं, वह उस बच्चे को भी साथ में ले जायगी।

इसके बाद कई दिनों तक अब्दुल उर्फ सुधांशु नहीं आया। रेनुका ने यह समझा कि किसी ने कुछ कह दिया या कोई खटका हो गया इसीलिये वह नहीं आया। पर यह बात नहीं थी। वह किसी काम से आता था, जब काम नहीं मिला तो वह आया भी नहीं।

धीरे-धीरे रेनुका ने भागने के विचार को त्याग दिया। वह अकेली भागने के लिये तैयार थी, पर यह सोचकर रह जाती थी कि एक तो रास्ता नहीं मालूम, दूसरा अकेली औरत होने के कारण किसी नयी विपत्ति में फँस न जाय। इसी प्रकार के विचारों के कारण वह भाग नहीं सकी।

पर एक दिन अब्दुल अप्रत्याशित रूप से आया, वह अकेला नहीं था, उसके साथ वही आदमी था जो पहले दिन आया था। अब्दुल को देखकर रेनुका एकाएक खुश हो गई थी, पर उसने उसके साथ जो आदमी देखा तो वह पास भी नहीं आई। दोनों ने वही पुराना प्रश्न किया—अशरफ घर पर है ?

रेनुका बोली—नहीं ?

दोनों इस पर चल दिये। अब्दुल का साथी आगे-आगे और वह पीछे-पीछे। जब वे आँगन से बाहर जाने लगे तो अब्दुल ने हाथ पीछे

करके एक कागज का टुकड़ा जो पहले ही से किसी ढेले में बाँधकर रखा हुआ था फेंक दिया।

यों तो रेनुका को इन लोगों में कोई दिलचस्पी नहीं मालूम हो रही थी पर जब उसने उस कागज के टुकड़े को लट्-से अपने पास गिरते देखा तो उसने जल्दी से उसे उठा लिया और किवाड़ बन्द कर उसे खोलकर पढ़ने लगी। लड़का रोने लगा पर उसने इसकी कोई परवाह न की।

सुधांशु का पत्र बहुत ही संक्षिप्त था। उसने यह लिखा था कि सब तैयार है, आज शाम को गाँव के बाहर किसी तरह अमुक जगह पर आना।

रेनुका यों तो महीनों से क्या जिस दिन से घर से अलग की गई थी उस दिन से चाहती थी कि किसी तरह भाग जाय पर आज जो एकाएक यह पत्र मिला तो वह बड़ी उधेड़बुन में पड़ गई। उसे न इस गांव से कोई प्रेम था और न अपने कथित पति से। पर इस अबोध शिशु को छोड़ जाना पड़ेगा, यह सोचकर उसे कुछ झिझक हुई। अभी बच्चा तीन-चार महीने का ही था, पर इस साल भर के जीवन में उसे यदि किसी वस्तु से मोह हुआ था तो इसी से हुआ था। आखिर इसने क्या कसूर किया था। पर इसका पिता? इस बात को सोचते ही उसे घृणा हो आती थी। उसे वह दिन अभी याद है जब अशरफ के साथ उसकी निकाह हुई थी। ज्यादतियों से कारण वह अधमरी हो रही थी। पर उन गुण्डों ने इसका कुछ ख्याल नहीं किया। उसे इस व्यक्ति के सुपुर्द कर दिया। अशरफ इस शादी के लिये उत्सुक नहीं था। बात यह है कि कोई भी नहीं चाहता है कि उसे एक ऐसी स्त्री मिले जो बहुतों के द्वारा घर्षिता हो चुकी हो, पर वह बहुत गरीब था, जमींदार ने हुकुम दिया फिर वह क्या करता? उसने निकाह कर लिया। वह एक तरह का किसान ही था। जब उसने निकाह कर लिया तो फिर उसने निकाह के हकों को जबर्दस्ती प्राप्त किया। किसान होने पर भी एक स्त्री पर अत्याचार करना उसे आता था।

तो उस बच्चे की जन्म-कथा यों थी। जब रेनुका उस बच्चे को देखती तो उसका हृदय पसीज जाता, पर जब वह उसके जन्म के इतिहास को सोचती तो उसे उसके प्रति कोई मोह नहीं रह जाता।

पर अब सुधांशु ने लिखा था, कुछ करना जरूरी था। उसने उस हालत की बात सोची कि यदि सफल हुई तो कैसा रहेगा ? इस बात को सोचते ही उसे अपना यह सारा जीवन, यह झोपड़ा, यह गृहस्थी, यह शिशु सब भूतकाल की चीजें ज्ञात हुईं।

वह उत्साह के साथ उठी और तैयारी करने लगी। उसने इस बात पर अभी अन्तिम फैसला नहीं किया कि शिशु को ले जाना है या नहीं। वह प्रबल उधेड़बुन में पड़ गई।

तैयारी ही क्या करनी थी ? उसे यहां की कोई चीज तो ले नहीं जाना था। यद्यपि उसका घर-द्वार लुट चुका था, पर फिर भी बैंक में रुपये तो होंगे ही। बाबू जी? पता नहीं। पर और रिश्तेदार तो होंगे ही। इसलिये तैयारी नहीं, बल्कि वह यह प्रतीक्षा करने लगी कि कब शाम हो और कब वह चल दे। आज ऐसा मालूम हो रहा था कि दिन बीत ही नहीं रहा है। उसे इस बात का भय था कि कहीं ऐसा न हो कि ऐन मौके पर कोई बाधा उपस्थित हो और वह रह जाय।

अशरफ यथा-समय खेतों को देखकर आ गया। अशरफ कभी-कभी देर तक खेतों में रहता था, पर आज वह दूसरे दिनों से भी सबेरे आया हुआ था। अशरफ के आने से परिस्थिति यह हो गयी कि बच्चे को ले जाने का कोई सवाल ही नहीं रहा। वह तो मैदान जाने के बहाने बाहर जा सकती थी, रोज जाती भी थी, पर बच्चे को कैसे ले जाती।

इसलिये बच्चा रह गया और वह निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँची। सुधांशु वहीं पर मिला, फिर वे दोनों जल्दी-जल्दी चल दिये।

रेनुका को अजीब मालूम हो रहा था। क्या यह सुख की भावना थी ? घर जाने की खुशी तो थी, पर घर में न मालूम क्या खबर मिले ?

उसे तो यह भी नहीं मालूम था कि उसके बाबू जी तथा माता जी जीवित हैं या नहीं। वह जानती थी कि रियाया दशरथ बाबू से कितनी नाराज थी, इसलिये उसे विश्वास था यदि वे पकड़े जायँगे तो जरूर मार डाले जायँगे। रही माता जी सो वह और कुछ नहीं तो इसी गम में मर गई होगी और परिमल ? न मालूम क्यों परिमल पर अधिक देर तक सोचने को जी नहीं चाहता था।

इन चेहरों के साथ-साथ उसके मन में एक नन्हा-सा, कोमल-सा गुदगुदा मुखड़ा दिखाई पड़ जाता था। वह भी असहाय है, पता नहीं उसका क्या हो ? उसके हृदय में एक टीस-सी उठने लगी।

सुधांशु जल्दी-जल्दी डग भरता हुआ जा रहा था। उसे इस समय सिवाय इसके कोई चिन्ता नहीं थी कि किसी तरह खतरे के बाहर चल-चला जाय। वह यह भी भूल-सा रहा था कि उसके साथ कोई है।

इस प्रकार दोनों चले जा रहे थे, चले जा रहे थे। काफी दूर चलने के बाद रेनुका कुछ ढीली पड़ने लगी। विरुद्ध विचारों के कारण उसका बुरा हाल हो रहा था। एक तरफ उसका सारा जीवन, अट्ठारह साल का जीवन उसे खींच रहा था और दूसरी तरफ केवल तीन महीने का यह शिशु था। जो उसे पीछे की तरफ खींच रहा था। सुधांशु ने उसके ढीलेपन को देखा, बोला—जल्दी चलो।

रेनुका भरसक जल्दी जा रही थी पर उसका शरीर भारी होता जा रहा था। थोड़ी दूर और जाकर एक पेड़ के नीचे निराश होकर बैठती हुई बोली—अब तो मुझसे चला नहीं जाता।

सुधांशु भी ठिठककर खड़ा हो गया पर वह चाहता था कि जल्दी चला जाय क्योंकि न मालूम क्या विपत्ति आये ? उसने कहा—अच्छा पाँच मिनट सुस्ता लो, फिर चलेंगे।

पर कराहती हुई रेनुका बोली—मुझसे तो अब बिलकुल चला न

जायगा। मुझे तो जोर का सिर दर्द हो रहा है, कुछ शायद बुखार भी चढ़ आया है।

मजबूरन सुधांशु को बैठना पड़ा। सुधांशु साथ में कुछ खाना ले आया था, वह उस खाने को निकाल कर खाने की तैयारी करने लगा। एक दफे उसने सभ्यता के नाते रेनुका से खाने के लिये पूछा। उसने मना कर दिया, पर पानी माँगने लगी। सुधांशु के पास एक बोतल में पानी था। उसने उसमें से पानी निकाल कर दोने में रेनुका को पिलाया।

रेनुका वहीं पर पेड़ से लगकर लेट गई। यह वही मौसम था जब वह भगोई गई थी, इतना ही फर्क था कि वह जाड़े का प्रारम्भ था और अब कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। वह सर्दी से ठिठुर रही थी, कोई कपड़ा तो था नहीं जो ओढ़ लेती। सुधांशु के पास भी कोई कपड़ा नहीं था। वह खुद ही एक बेढङ्गा-सा कोट पहिने हुए था। यह कोट उसे उसके मालिक से मिला था।

रेनुका इसी हालत में सो गई। थोड़ी देर बाद वह अजीब तरीके से ख़ुर्राटें भरने लगी।

एक घण्टा तक सुधांशु प्रतीक्षा करता रहा, फिर वह बेचैन होने लगा। इस समय आधा रास्ता तय हो चुका था। आधा और तय करना था। उसने हिसाब लगाकर देखा कि यदि इस समय चल दिया जाय तो सबेरे तक गाँव में पहुँच जायगा। उसने रेनुका को पुकारा पर उसने कोई आवाज नहीं दी। उसके ख़ुर्राटे ज्यों के त्यों चलने लगे। सुधांशु ने रेनुका के हाथ को छूकर देखा तो वह बुखार से जल रहा था। उसने समझ लिया कि कम से कम दो दिन तक तो रेनुका उठ नहीं सकेगी।

तब उसने सोचा कि क्या किया जाय! इससे तो अच्छा होता कि वह उसे साथ में न लाता पर अब? अब क्या हो?

यदि वह रेनुका के साथ खुद भी यहाँ बैठा रहता है तो सम्भव है कि दोनों पकड़े जायँ। यद्यपि अब वह परिस्थिति नहीं थी, पर फिर भी लोग

इतने सरकश तो रह ही गये थे कि किसी को आसानी से जाने न देते। सुधांशु को पुलिस चौकीदार पर भरोसा होता तो पास के गाँव में जाकर सारी बातें कह देता पर उसे यह भी भरोसा नहीं था। वह जिस गाँव में अब तक था, उसी में कितने हिन्दू पुरुष तथा स्त्रियाँ उसकी तथा रेनुका की तरह जिन्दा कब्र में पड़ी हुई थीं पर उन्हें कौन पूछता था। चौकीदार को सब मालूम था। पर वह कुछ नहीं करता था। इस बीच में उसे यह कड़ुवा तजरबा हुआ था कि पुलिस भी किसी काम की नहीं है, वह भी लीगी है।

रात अधिक हो चुकी थी। अब कुछ करना ही था। उसने फिर एक बार बोतल से पानी पिया। रेनुका को एक दफे पुकारा, उसने कोई जवाब नहीं दिया। तब उसने फिर उसका हाथ देखा वह जल रहा था। इसके बाद वह खड़ा हुआ, रास्ते की तरफ देखा, कुछ सोचा, फिर अपने गाँव की तरफ चलने लगा।

रेनुका वहीं पड़ी रह गई।

२७

जब सबेरे उस तरफ से राहगीर निकले तो उन्होंने देखा कि एक स्त्री बेहोश हालत में पड़ी हुई है। वह बेहोश भी थी और बुखार भी चढ़ा हुआ था, इसलिये कुछ राहगीरों ने उस पर दया कर उसे एक अस्पताल में पहुँचा दिया।

दंगे के बाद कई सोसाइटियों की तरफ से जो अस्पताल खुले थे उन्हीं में से एक अस्पताल में रेनुका पहुँचाई गई।

कई दिन में उसे ठीक से होश आया तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह कहाँ पड़ी हुई है। लोगों ने उसे बताया कि यह एक सामयिक अस्पताल है और राहगीर उसे ले आये थे। जब उसने यह सुना कि वह उसी पेड़ के नीचे पड़ी रह गई और सुधांशु उसे छोड़कर चला गया तो उसे जीवन

के प्रति घृणा ही हुई न कि अनुराग। इससे जीने की इच्छा घटी न कि बढ़ी। उसने सुधांशु को व्यक्तिगत रूप से नहीं कोसा पर उसके मन में सारी मनुष्य जाति के प्रति एक घृणा उत्पन्न हुई। उसने जिससे प्यार किया, उस परिमल ने बहाना बताकर उससे अपने को अलग कर लिया फिर यह सुधांशु इसका यह हाल रहा। बीमार हालत में रास्ते में छोड़-कर भाग गया और इन महीनों में उस पर जो गुजरा था वह तो मनुष्य जाति की बर्बरता प्रमाणित करता था न कि और कुछ। उसके साथ क्या नहीं हुआ?

ऐसी हालत में उसमें जीने की इच्छा नहीं जग पाई। उससे लोगों ने परिचय पूछा तो उसने मुँह बना लिया। लोग बहुत जोर देने लगे तो उसने उनके प्रश्नों के उत्तर में इतना ही उत्तर दिया कि वह हिन्दू है। पर अब यह हिन्दू शब्द भी उसके लिये कोई महत्व नहीं रखता था, क्योंकि अपने संस्कारों के अनुसार वह अपने को मुश्किल से हिन्दू सम-झती थी, मुसलमान तो खैर समझती ही नहीं थी। मुसलमान शब्द उसकी आँखों में दुनिया में जितना कुछ बर्बर असभ्य तथा निष्ठुर था उसी का द्योतक हो चुका था। इन दिनों उस पर जो-कुछ गुजर चुका उसका यही नतीजा था।

डाक्टरों ने बतलाया कि रेनुका में जीवन के लिये इच्छा इतनी कम हो गयी है कि उसने मृत्यु की शक्तियों से संग्राम करना ही छोड़ दिया है। फिर भी वे जहाँ तक दवायें उपलब्ध थीं वहाँ तक उसका उपचार करते गये।

सचमुच रेनुका में जीवनी-शक्ति बहुत ही क्षीण हो गई थी। वह इतने महीनों तक अपनी इच्छा के विरुद्ध जीती रही। अब वह आगे जीना नहीं चाहती थी। उसे यदि कोई मोह था तो कुछ उस बच्चे का था पर उसके सम्बन्ध में वह यह सोच चुकी थी कि उसके साथ उसका सम्बन्ध हमेशा के लिये टूट गया। बात यह है कि एक तो वह जिस प्रकार दुनिया

में आया था वह उसे बहुत अप्रिय ज्ञात होता था, दूसरी बात यह थी कि वह अब किसी भी हालत में अशरफ के पास या अशरफ के गाँव में लौटने के लिये तैयार नहीं थी।

उसे एक कौतूहल था, सो यह था कि दशरथ बाबू, रूपवती, परिमल आदि का क्या हुआ? घटनाचक्र से एक दिन उसे इन बातों के सम्बन्ध में भी अस्पताल में पड़े-पड़े मालूम हो गया।

जिस गाँव में यह सामयिक अस्पताल बना हुआ था, वह बड़े गाँव से १० मील पर था यहाँ पर एक कर्मचारी था जिसका ससुराल बड़ागाँव में था। वह एक दिन संध्या समय दवा पीकर चुपचाप लेटी थी कि यह कर्मचारी किसी से उस दंगे की बात करने लगा। यों तो रेनुका करीब-करीब अपने चारों तरफ की परिस्थितियों से उदासीन रहती थी पर जब उसने उस दंगे के सम्बन्ध में बात-चीत सुनी तो उसने कान खड़े कर लिये।

वह कर्मचारी विशेषकर बड़े गाँव की घटनाओं का वर्णन कर रहा था। उसने एक-एक करके वहाँ की सब कहानी सुना डाली। यह आदमी किसी का नाम नहीं ले रहा था। पर वह इतना सजीव वर्णन कर रहा था कि बड़े गाँव की सारी परिस्थितियों से परिचित होने के कारण वह समझ रही थी कि किसका वर्णन हो रहा है। उसने दशरथ बाबू का उल्लेख जमींदार साहब, जमींदार साहब करके किया। वह क्या जानता था कि दशरथ बाबू की लड़की पास ही पड़ी उसकी बातों को सुन रही है? वह सारी बातें कुछ नमक-मिर्च के साथ कह गया। सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि वह दशरथ बाबू का उल्लेख एक धर्मात्मा के रूप में कर रहा था। साम्प्रदायिक भावनाएँ बढ़ने के कारण हिन्दुओं ने मालूम होता है कि दशरथ बाबू को एक शहीद के रूप में चित्रित किया था। एक-एक करके जब रेनुका को अपने घर तथा गाँव की हालत मालूम पड़ी तब उसे इतना दुख हुआ कि जितना कभी नहीं हुआ था। अब तक उसके मन में यह एक सुप्त आशा थी कि कदाचित कोई आकस्मिक

घटना हो गई हो और दशरथ बाबू बच गये हों पर अब सम्पूर्ण रूप से उस आशा का निराकरण हो गया।

जिस समय उसने रूपवती पर किये गये अत्याचारों को सुना, तो वह अपने को रोक न सकी। दुष्टों ने उस चिर-रोगिणी को भी नहीं छोड़ा। वह फूट-फूटकर रोने लगी। एकाएक उसको रोते देखकर जो कर्मचारी गप्पें मार रहा था, वह दौड़ पड़ा। असल में वह एक कम्पाउण्डर था और वह किसी के एवजी पर उस दिन नाइट ड्यूटी दे रहा था।

वह रेनुका के पास दौड़कर आया और उसकी नाड़ी देखने लगा कि क्या मामला है। उसने रोगिणी से पूछा—क्यों रोती हो? क्या बात है? घबड़ाओ मत, बहुत जल्दी अच्छी हो जाओगी।

रटे हुए गत की तरह वह इन बातों को कह गया। रेनुका बिल्कुल उसका उत्तर देना नहीं चाहती थी, पर जब उसने आवाज से पहचान लिया कि वही व्यक्ति है जो अभी बड़े गाँव की बातें सुना रहा था तो उसने सिसकना बन्द कर पूछा—आप कौन हैं?

—मैं आज ड्यूटी पर हूँ। मुझे लोग डाक्टर कहते हैं।

—क्या आप बड़े गाँव में रहे हैं?

उस आदमी ने कहा—नहीं, पर मेरा ससुराल वहीं पर है।

अब रेनुका समझ गई कि कैसे वह वहाँ की घटनाओं को जानता है।

रेनुका ने पूछा—अच्छा, आप यह बता सकते हैं कि उस दंगे में खासपुरवा में क्या हुआ?

अब वह आदमी समझा कि कोई चिकित्सा की जानकारी नहीं, बल्कि और कारण से वह यह सब पूछ रही है। बोला—मैं सब जानता हूँ।

फिर वहीं पर एक स्टूल पर बैठकर उसने खासपुरवा का भी सारा हाल सुना दिया। सब बातें सुनाकर बोला—पहले तो यह समझा जाता था कि पुरोहित जी का बड़ा लड़का परिमल दंगे में मारा गया था, पर बाद को पता लगा कि नहीं वह जीवित है। अब तो परिमल बाबू हिन्दू-

मुसलमान-मिलन के लिये दिन-रात दौड़ा करते हैं।

उसने रेनुका को यह भी बताया कि परिमल ने बहुत-सी भगाई हुई स्त्रियों का उद्धार किया है।

वह कर्मचारी इन बातों को बताकर चला गया क्योंकि उसकी ड्यूटी खतम हो रही थी।

इन बातों को सुनने के बाद रेनुका ने अपने को अत्यन्त अजीब परिस्थिति में पाया। उसे यह मालूम हुआ कि घर तो सम्पूर्ण रूप से खतम है। परिमल पर उसे क्या भरोसा है? जब वह उस समय उसका नहीं हुआ, जब वह एक अनाघ्रात कली की तरह थी, तो अब वह उसका क्या होगा, जब कि वह एक कोढ़ के घाव की तरह हो चुकी थी। दशरथ बाबू और रूपवती से यह उम्मीद थी कि वह जिस हालत में भी होगी वे उसको न छोड़ेंगे।

परिमल? वह उसी जाति का है न जिस जाति का सुधांशु है। एक क्षण के लिये उसे ऐसा मालूम हुआ कि सुधांशु के साथ उसकी शादी नहीं हुई, यह अच्छा ही हुआ। सुधांशु की कायरता की याद आते ही उसे बहुत तकलीफ हो रही थी। यद्यपि उसको इस बीच में अशरफ और अशरफ से भी बुरे लोगों की शैय्या-संगिनी होना पड़ा था, फिर भी उसे इस बात से सुख हो रहा था कि वह सुधांशु की सहधर्मिणी होने से बच गई। यह एक अजीब तृप्ति थी।

उस रात को उसकी तबियत और भी खराब हो गई और सबेरे जो कम्पाउण्डर टेम्परेचर लेने को आया, बोला—तीन दिन से सबेरे बुखार नहीं रहता था, पर आज फिर १०१° है। उसने रोगिणी के चार्ट में जल्दी से १०१° बुखार दिखलाया और फिर आगे बढ़ गया।

रेनुका ने कम्पाउण्डर का मन्तव्य सुना, पर उसे इसमें कोई दिलचस्पी नहीं हुई।

उसका बुखार बढ़ता ही गया और वह बुखार में बकने भी लगी।

२८

मीर बन्देअली की यह कोशिश थी कि दशरथ बाबू के मर जाने के बाद वह उनकी सारी जमींदारी को हड़प ले। कानूनी तरीके से तो ऐसा हो नहीं सकता था, पर मीर बन्देअली का आशय अभी केवल इतना ही था कि वह किसानों से लगान वसूल करे और फिर लीग के मंत्रिमंडल से मिलकर दशरथ बाबू की जमींदारी पर कानूनी हक प्राप्त करे। इस संबंध में कैसे मंत्रिमंडल क्या करेगा यह उसे पता नहीं था, फिर भी इन दिनों इतनी बातें उसकी इच्छा के मुताबिक हुई थीं कि वह समझता था कि जब वह चाहेगा तो कुछ न कुछ हो ही जायगा।

उसने तुरन्त इस बात की कोशिश की कि लगान वसूल होने लगे, फिर देखा जायगा।

तदनुसार उसने इस तरफ ध्यान दिया। दंगे के तुरन्त बाद तो दशरथ बाबू की ही क्यों इधर की सारी हिन्दू रियाया मुसलमान हो चुकी थी, याने जो लोग तलवार के घाट उतार दिये गये थे, उनके अलावा सभी हिन्दू मुसलमान हो चुके थे। अवश्य बाद को जब बाहर से बहुत-सी सेवा-समितियाँ वगैरह आईं तो इन लोगों में से अधिकांश फिर से हिन्दू हो गये थे।

मीर बन्देअली ने सबसे पहले यह कोशिश की कि इन हिन्दुओं से लगान वसूल करे, पर इन हिन्दुओं के पास तो कानी-कौड़ी भी नहीं थी, अधिकांश भूखों मर रहे थे। ऐसी हालत में उनसे लगान वसूल नहीं हुआ।

तब मीर बन्देअली ने मुसलमानों से लगान वसूल करने की कोशिश की। इसके लिये उसने दशरथ बाबू के भूतपूर्व कारिन्दा शमीजान खाँ को नियुक्त किया, पर इससे भी उन्हें कुछ सफलता नहीं मिली। कोई कुछ कह देता कोई कुछ। कोई तो यह कहता कि हमारे जमींदार तो

मर गये, उनका कोई वारिस भी नहीं रहा, इसलिये हम तो छुट्टी पा गये। जो इनसे जरा भद्र थे वे शमीजान से बोले—आज तो हम मियाँ तुम्हारे कहने से मीर साहब को लगान दे दें और कल फिर कोई दशरथ बाबू का वारिस खड़ा हो जाय तो हम फिर उसको लगान दें, ऐसे तो हम मर जायँगे। इसलिये पहले मालूम हो जाय कि कौन जमींदार है तब हम लगान देंगे।

बहुत से मुसलमान गरीबी का बहाना कर गये। इस तरह मीर बन्दे-अली को इसमें सफलता नहीं मिली। उन्हें तो अपनी जमींदारी में भी लगान वसूल करने में बहुत दिक्कत हो रही थी। उनके अनुसार लोग अब बहुत सरकश हो गये थे। इन बातों से मीर साहब को बहुत परेशानी थी और वे झल्लाहट में राजधानी पहुँचे कि वहाँ कुछ उपाय किया जाय।

उन्हीं की तरह अन्य बहुत से मुसलमान जमींदार राजधानी पहुँचे थे। सबका वही एक रोना था, हिन्दू तो कुचल दिये गये, पर मुसलमान गरीब लोग सरकश हो गये। लीग के नेताओं ने देखा कि उनके पीछे जो बड़ा बल था, वह जमींदार तब क्या उनसे अलग होना चाहते हैं इस-लिये प्रधान मंत्री ने कुछ इशारे दे दिये।

मीर बन्देअली गाँव लौटे तो उन्होंने अपनी रियाया पर अत्याचार शुरू कर दिये। दंगा के समय तो हिंन्दू जमींदारों के विरुद्ध मुसलमान रियाया इसलिये भड़की थी कि वह साम्प्रदायिक भावना के कारण अपने को दलबन्द तथा संगठित पा रही थी, पर इस समय नक्शा बदला हुआ था। यद्यपि पाकिस्तान था, अर्थात् मुसलमान ही जमींदार और मुसलमान ही किसान थे, फिर भी उनको कुछ अमन नहीं। अब एका होता तो कैसे होता?

मीर बन्देअली करीब-करीब उसी प्रकार से मुसलमान रियाया पर जुल्म करने लगा, जैसे पहले होता था। किसान हाहाकार करने लगे। ऐसे ही समय शकूर तथा परिमल के दल ने फिर से किसान सभा का

नारा दिया। पहले ही बताया जा चुका है कि शकूर या परिमल अस्पष्ट आदर्श को लेकर चल रहे थे, पर उन्हें काम करने के दौरान में यह पता लगा कि वे केवल अस्पष्ट आदर्श को लेकर काम नहीं कर सकते। लोग हाँ-हाँ कर देते थे, पर कुछ ठोस काम नहीं हो पाता था। इसलिये अपने तजरबों से केवल साम्प्रदायिकता के विरुद्ध प्रचार करते हुए किसान सभा के सङ्गठन में मजबूर हुए थे।

परिमल ने अपने भाइयों को राजधानी में एक रिश्तेदार के यहाँ भेज दिया था और अब वह दिन-रात किसानों में घूमता था। सच कहा जाय तो अब उसका कोई स्थायी निवास-स्थान नहीं था।

मीर बन्देअली और शमीजान एक गाँव में अपने दलबल के साथ पहुँचे हुए थे। वहाँ पर जब किसान लगान देने पर आनाकानी करने लगे तो शमीजान ने मीर साहब का इशारा पाकर उन्हें बँधवाकर पिटवाया।

पिटने वाले तो अधिकांश चुपचाप पिटे, पर दो-एक ऐसे निकले जिन्होंने इसके विरुद्ध प्रतिवाद किया। ऐसों में हमारे पूर्व परिचित रहमत का एक लड़का भी था। उसने तो चिल्ला-चिल्ला कर पूरा लेक्चर ही दे डाला—बोला अगर हमें वही सब करना था तो क्या फायदा हुआ, हमारे पास तो कुछ भी नहीं है। हम कुछ नहीं देंगे—कहकर उसने दूसरों से भी अपील की कि वे डर न जायँ।

जब शमीजान ने देखा कि यह तथा इसके कुछ साथी सरकशी पर आमादा हैं, तो उन लोगों ने चुनकर एक आठ-दस आदमियों को खूब पिटवाया। कई आदमी तो इतने घायल हुए कि जमींदार की टोली के चले जाने के बाद इन लोगों को अस्पताल भेजना पड़ा।

ये लोग उसी अस्पताल में पहुँचे जहाँ रेनुका पड़ी हुई थी।

शकूर तथा परिमल को इन मार-पीटों का पता लगा और वे भी खोज लगाते हुए इसी अस्पताल में पहुँचे। इन लोगों ने इस बात पर जोर दिया कि इनकी चोटें ठीक-ठीक लिखी जायँ। यद्यपि यह अस्पताल दंगे

के समय खुला था, फिर भी परिस्थिति शान्त हो जाने के बाद भी यह अस्पताल रह गया था। पहले इसमें केवल हिन्दुओं का ही इलाज होता था, पर अब थोड़े दिन से ऊपर से सोसाइटी का कुछ हुकुम आया था जिससे मामूली अस्पतालों की तरह सब जाति तथा धर्म के लोग इसमें लिये जाते थे।

जब तक यह अस्पताल केवल स्वयंसेवकों अर्थात् मेडिकल कालेज आदि के स्वयंसेवकों के द्वारा चलता था, तब तक इसमें आदर्श की भावना प्रबल थी, पर जब से वे लोग चले गये और पेशेदार कम्पाउण्डर तथा डाक्टर आ गये, तब से यहाँ और बातें भी मामूली अस्पतालों की तरह चलने लगी थीं।

जब वे चोट खाए हुए मुसलमान बैलगाड़ी में लदकर वहाँ आये, तो उसके बहुत पहले ही घोड़े पर जमींदार का आदमी आकर डाक्टरों से यह कार्रवाई कर गया था कि इन किसानों की चोट ठीक-ठीक न लिखी जाय तथा मामूली मरहम-पट्टी करने के बाद सबको वापस कर दिया जाय।

ऐसा ही हो रहा था। इतने में परिमल शकूर इत्यादि झण्डा लेकर पहुँच गये। इन लोगों ने इस बात पर जोर दिया कि चोट ठीक-ठीक लिखी जाय और जिनकी हालत ठीक नहीं है, उनको भरती कर लिया जाय।

एक डाक्टर जो इस अस्पताल के इनचार्ज थे, परिमल की बातों को सुनकर झल्लाते हुए बोले—हम लोग जो उचित समझेंगे, करेंगे। आप कौन होते हैं सलाह देने वाले ? हम अपना कर्त्तव्य खूब समझते हैं।

इस पर परिमल ने कहा—हम लोग किसान सभा के हैं। हम आपसे कोई रियायत नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि आप जैसी चोट है, उसे ठीक वैसी ही लिखें।

डाक्टर इस पर गरम हो गया। बोला—क्या आप जमींदार के खिलाफ मुकदमा चलायेंगे ? चोट अगर लिख भी दी गई तो उसे साबित कौन करेगा ?

—आप इसकी फिक्र न करें, आप अपना काम कीजिए, हम अपना काम करेंगे।

डाक्टर जल्दी नहीं माना, पर जब उसने देखा कि अगर वह चोटों को नहीं लिखेगा तो ये लोग चोट खाये हुए लोगों को बैलगाड़ी में ले जाकर सदर में रिपोर्ट लिखाएँगे, तो वह डरा और उसने रिपोर्ट ठीक-ठीक लिखी।

परिमल तथा शकूर ने कुछ आदमियों को भरती भी करा दिया। परिमल पर यह काम सौंपा गया कि वह तब तक इसी गाँव में रहे और अस्पताल में भर्ती-शुदा लोगों की देख-रेख करे जिससे कि जमींदार के आदमी आकर इनकी गवाही बदलने की कोशिश न करें। शकूर उस गाँव में चला गया जहाँ ये वारदातें हुई थीं।

२६

आज कई दिनों के बाद रेनुका की हालत कुछ अच्छी मालूम हो रही थी। जहाँ तक बिलकुल अच्छा होने का सम्बन्ध है, वहाँ तक उसको आशा तो उसके मन में थी ही नहीं। छोटे डाक्टर ने बहुत पूछा कि तुम अपना परिचय बतलाओ तो तुम्हारे किसी घर वाले को बुलावें, पर जब जब डाक्टर ने इस प्रकार का प्रयास किया, तब-तब रेनुका ने यह कहकर मना कर दिया कि उसका कोई नहीं है। पहले जब वह अस्पताल में आई थी तब उसने ऐसा जिद के वश कहा था, पर इस बीच में कम्पाउण्डर की बातचीत से उसे पता लग चुका था कि उसका सचमुच कोई नहीं रह गया।

यद्यपि डाक्टर को उसने कई बार मना कर दिया था पर फिर भी वह उससे बार-बार इसी प्रश्न को पूछा करता था। यह कहना गलत होगा कि ऐसा पूछने में डाक्टर का उद्देश्य केवल एक जवानी सहानुभूति दिखाना मात्र था, बल्कि ऐसा करने में उसका उद्देश्य एक हद तक सच-

मुच मानवीय था। डाक्टर यह समझता था कि यदि इस रोगिणी को किसी प्रकार अपने जीवन में दिलचस्पी पैदा हो जाय तो शायद यह जी जाय।

डाक्टर ने एक दिन पूछा—आप जब अधिक बीमार थीं तो बाप और माँ के अतिरिक्त दो नाम बहुत साफ तरीके से लिया करती थीं, एक परिमल और दूसरा कोई मुसलमानी नाम था।

रेनुका समझ गई कि यह मुसलमानी नाम उसके बच्चे का था। डाक्टर कहता गया—हमारे यहाँ कई दिन से एक परिमल बाबू आते-जाते हैं, कहीं यही तो आपके परिमल बाबू नहीं हैं ?

रेनुका के चेहरे पर एकाएक रक्त प्रबलता के साथ आ गया। फिर उसका चेहरा पीला पड़ गया। बोली—कौन परिमल ?

—यहाँ मर्दों के वार्ड में कुछ मुसलमान किसान पड़े हुए हैं, उन्हीं की देख-रेख के लिये एक परिमल बाबू आया करते हैं। अभी बिलकुल नौजवान हैं।

रेनुका को विश्वास हो गया कि यह वही परिमल है, पर वह बोली —मैं किसी परिमल को नहीं जानती। प्रलाप में न मालूम क्या-क्या बक गई, पता नहीं।

उसने मुँह फेर लिया और फिर आँख मूंदकर पड़ गई।

डाक्टर थोड़ी देर तक खड़ा रहकर दूसरी तरफ चला गया। वह स्वभाव से बड़ा मिलनसार व्यक्ति था और अभी नया होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति से वैसे ही बर्ताव करता था जैसे एक डाक्टर को करना चाहिए। वह अभी बड़े डाक्टर की तरह तजर्बेकार नहीं हुआ था।

इसके बाद से रेनुका के रोग में एक और लक्षण यह भी जुड़ गया कि वह प्रत्येक व्यक्ति के पैर की आहट को सुनकर यही समझती थी कि परिमल आ रहा है और वह चौंक पड़ती थी। इस प्रकार उसे कभी-कभी जो नींद आया करती थी वह भी आना खतम हो गयी। फिर जब कभी

झपकी आती तो उसमें अजीब-अजीब स्वप्न दिखाई देते । इन स्वप्नों में परिमल बहुधा दिखाई देता । कई बार उसने उन मुसलमान किसानों को स्वप्न में देखा जो मर्दाना वार्ड में पड़े हुए थे । मजे की बात यह है कि उसने कभी उनको आँख से देखा नहीं था। स्वप्न केवल देखी हुई चीजों को ही नये रूप में दिखाने में समर्थ नहीं होता बल्कि वह कभी-कभी बिलकुल कभी नहीं देखी हुई चीजों को भी जीवन का रूप दे देता है।

उसने एक बार यह स्वप्न देखा कि कुछ मुसलमान किसान कराह रहे हैं, पड़े हैं, उनको न मालूम काहे से चोट लगी है । वहाँ पर परिमल पहुँच चुका है, उनकी देख-रेख कर रहा है, उनसे मीठी बातें कर रहा है, उन्हें पानी पिला रहा है । इस बात को देखकर रेनुका उसके सामने गयी और बोली—परिमल तुम यह क्या कर रहे हो ? तुम भूल गये, तुम्हारे पिता जी को, तुम्हारी माँ तथा बहिनों को किसने मारा ।—इसके बाद परिमल को समझाने के लिये रेनुका अपनी पूरी कहानी कह गई । परिमल का चेहरा पीड़ित हो गया पर उसने उन घायलों की ओर देखा, हँसा फिर बोला—जरा इनको देखो तो, इन्होंने तुम्हें सताया है ?

रेनुका ने ध्यान से उनको देखा, फिर बोली—नहीं, इन लोगों ने तो नहीं सताया है, ये लोग तो खुद ही सताये हुये हैं ।

इस पर परिमल बोला—हाँ तो यही इनका असली रूप है, उस समय ये अपने को भूल गये थे । देखो...

इस प्रकार के कई स्वप्न उसने देखे । जितने भी स्वप्न देखे, उनमें यदि परिमल होता था तो यह एक अजीब आदर्शवादी रूप में होता था। किसी जमाने में इसी परिमल को उसने प्यार किया था ।...

कई बार रेनुका के मन में यह इच्छा उठी कि परिमल को बुलवाये पर उसने सोचा जिसने मुझे इस तरह ठुकरा दिया था, उसे क्या बुलाना। और उसने अपने ऊपर जबर्दस्ती करके भी उसे नहीं बुलाया ।

यही न बुलाना, अर्थात् यह जानना कि परिमल पास ही है पर उसे

न बुलाना उसके लिये काल हो गया। नींद गई, भूख गई, अच्छी होने की आशा भी गई। अब तो वह ऐसी हालत में रहने लगी जिसे जीवन और मृत्यु के बीच की हालत कहा जा सकता है।

उसे बुखार हर वक्त रहने लगा। प्रलाप भी बकने लगी। फिर प्रलापों में वह उन्हीं नामों को दोहराती थी। परिमल और वह मुसलमानी नाम।

छोटे डाक्टर की छुट्टी थी। वह ड्यूटी पर आते ही समझ गया था कि अब इस रोगिणी का जीना मुश्किल है, इस कारण बड़े डाक्टर की तरह निर्विकार होकर बैठे रहने की जगह उसने यही उचित समझा कि अन्तिम मोर्चे तक मृत्यु से लोहा लिया जाय। तदनुसार वह जुट गया। इन्जेक्शन को तैयार करते-करते उसको एकाएक एक बात याद आ गयी।

उसने झट से सिरिंज कम्पाउण्डर के हाथ में दिया और बाहर की तरफ चला और जब थोड़ी देर के बाद लौटा तो उसके साथ परिमल था।

परिमल ने देखते ही रेनुका को पहचान लिया। यद्यपि वह अब अपने पहले की शक्ल की प्रेतिनी मात्र थी फिर भी वह उसे पहचान गया।

रेनुका बेहोश नहीं थी पर शायद ठीक-ठीक होश में भी नहीं थी। डाक्टर ने इशारे से समझा दिया था कि रोगिणी की हालत नाजुक है। परिमल ने पुकारा—रेणु, रेणु !

रेनुका पर इसका कोई असर नहीं हुआ। फिर परिमल ने पुकारा—रेणु, रेणु—और उसने उसके कंधे को धीरे से एक धक्का दिया।

रेनुका पहले तो ऐसे ताकी कि मानो प्रलाप-जगत् की ही कोई बात देख रही हो, पर फिर जो परिमल ने पुकारा तो उसकी तरफ देखती हुई बोली—कौन ?

—मैं परिमल हूँ—परिमल ने व्याकुलता से कहा।

—हाँ—रेंनुका बोली। एक क्षण के लिये उसके चेहरे पर जैसे जीवन की लाली दौड़ गई।

डाक्टर ने अपना काम किया। थोड़ी देर में रेंनुका को होश आ

गया। वह परिमल को अच्छी तरह पहचान गई।

डाक्टर ने परिमल को अलग ले जाकर कहा—अभी जी सकती है, आपके आने से बहुत परिवर्तन हो गया।

फिर तो परिमल के अनुरोध से रेणु को साधारण स्त्री वार्ड से हटाकर एक अलग कमरे में कर दिया गया और वहाँ पर परिमल बराबर सजग रहकर उसकी सेवा करने लगा।

रेनुका बात भी करने लगी। पर वह बहुत कमजोर थी। उसका चेहरा देखते ही पता लगता था कि अब भी उसका एक पैर मृत्यु-लोक में है।

परिमल अब बदला हुआ आदमी था—परिमल ने ऐसा रेनुका से कहा—जब रेनुका ने इस पर कहा—तुम तो हमें वही मालूम देते हो।

परिमल अनुतप्त होकर बोला—नहीं, मैंने उस दिन संध्या समय बहुत गलती की थी।

रेनुका की दृष्टि बहुत दूर भूतकाल में चली गयी। समय की दृष्टि से बहुत दूर नहीं, घटनाओं की दृष्टि से बहुत दूर। वह हँसी, बोली—पर परिमल क्या तुम समझते हो कि इतना कह देना ही यथेष्ट है। मैंने इस बीच में जितनी तकलीफें उठाईं वे सब कहीं अधिक सहनीय हो जातीं यदि मुझे इन दुखों, कष्टों, निर्यातनों को सहन करते समय यह सान्त्वना होती कि मुझे तुम्हारा प्रेम प्राप्त है। यों तो जैसा घटनाचक्र था, उससे तुमसे मेरी शादी न हो पाती। जिस कारण से मेरी वह शादी रुक गई, उसी कारण से वह भी रुक जाती, फिर भी सारा नक्शा और हो जाता। तुम कहते हो कि तुमने गलती की है, मैं तो यह समझती हूँ कि मेरी गलती थी कि मैंने तुमको प्यार किया था। तुम्हारे ऐसे पुरुष प्यार के लिये नहीं होते, तुम्हारे ऐसों की तो सार्वजनिक रूप से पूजा होनी चाहिए पर एक स्त्री के निभृत हृदय की एकान्त पूजा के योग्य तुम नहीं हो।...

रेनुका यह कहकर सिसकने लगी। परिमल ने उसे शान्त करने की

बहुत चेष्टा की पर वह शान्त नहीं हुई, उसे हिचकी-सी बँध गई।

परिमल ने कहा—मैंने भी पहले यही तय किया था कि सबकी तरह मैं भी तुम्हारे साथ एक सुनहरी गृहस्थी की स्थापना करूँगा, पर बाद को मैंने देखा कि देश की समस्या विकट हो रही है। वह भयंकर घटना हुई। पिता जी के हाथ से सत्यनारायण शिला छीन ली गई। फिर तो एक तूफाने-बदतमीजी का ताँता लग गया। अब भी हम सोचते हैं कि हमने जिन काली शक्तियों के विरुद्ध लोहा लिया उनसे लड़ना सम्भव है।···

रेनुका की दृष्टि प्रशान्त हो गई थी, पर हिचकी बढ़ती जा रही थी। साँस में भी कष्ट हो रहा था। पर वह परिमल की ओर प्रशान्त दृष्टि से देख रही थी। ढलते हुए सूर्य की रोशनी में परिमल का पवित्र चेहरा एक दिव्य-ज्योति से विमंडित होकर दिखलाई पड़ रहा था। वह उसकी बातें सुनती जाती थी पर उस पर जो कुछ बीता था उसने जैसे-जैसे पाशविक चेहरे देखे थे उससे परिमल की बातों पर विश्वास करना उसके लिये असंभव था, वह सुनती जाती थी। उसके मन के दरवाजे पर सन्देह एकत्र हो रहे थे, पर उसने जबर्दस्ती इन सन्देहों को रोक रखा।

परिमल कह रहा था—सब काली शक्तियाँ आज एक साथ मिलकर षड़यंत्र रच रही हैं कि कहीं मानवता का रथ आगे निकल न जाय, पर हमें विश्वास है कि हम जरूर सफल होंगे। हमने प्रगति की सारी शक्तियों को इकट्ठा किया है और हम अवश्य उससे लोहा लेंगे।

रेनुका अब जल्दी-जल्दी साँस ले रही थी। उसे सांस लेने में कष्ट हो रहा था। उसने अपने ऊपर जो जबर्दस्ती की थी, वह टिक न सकी। सन्देह ने उसके चेहरे को एक महान प्रश्न चिन्ह की तरह बना दिया। रेनुका की प्रशान्त दृष्टि सन्देहों के इस आक्रमण के सामने तिलमिला गई।

परिमल जब कह रहा था कि मेरे पास प्रगति की शक्तियाँ हैं उस समय शकूर आकर उसके बगल में खड़ा हो गया। रेनुका ने शकूर को

देखा और पहचाना कि यह मुसलमान नौजवान है, पर मुसलमानों के साथ उसने इन महीनों में जिन-जिन बातों को एकत्र करके देखा था वे इसके चेहरे पर नहीं थीं। रेनुका की शकूर का चेहरा भी उज्ज्वल, नव-जीवन के कम्पन से चंचल मालूम हुआ।

परिमल अपने आदर्श की बात, अपनी स्वल्प सफलता की बात, कहता जाता था। उसने अपने जोश में यह ख्याल नहीं किया कि रेनुका अब उसकी बातों को सुनने तथा समझने में असमर्थ है।

एकाएक शकूर ने अजीब स्वर में उससे कहा—किससे बात कर रहे हो, वह तो चल बसी।…

—ऐं—करके परिमल ने रेनुका की ओर देखा और यंत्रचालितवत् रेनुका से लिपट गया।

देर तक वह लिपटा रहा। फिर उठा—रेनुका की दृष्टि पथरा गयी थी। पर वह दृष्टि सन्देह से पूर्ण थी। वह दृष्टि ऐसी थी मानो वह कह रही थी जो कुछ कह रहे हो सब ठीक है, पर कहाँ तक व्यावहारिक है। एक मूर्तिमान सन्देह की तरह रेनुका का शव उसके सब स्वप्नों तथा आदर्शों को व्यंग करता हुआ सामने पड़ा था। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसका सिर भन्ना रहा है और वह गिर पड़ेगा। उसने लपककर शकूर को पकड़ लिया और रोने लगा।

श्री मन्मथनाथ गुप्त की कुछ पुस्तकें

	दर्शन और विज्ञान		**मूल्य**
१.	ऐतिहासिक भौतिकवाद	इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद	६)
२.	सेक्स से सुख और जीवन	किताब महल	१॥)
३.	अपराध विज्ञान	,, ,,	३)
४.	यौन विज्ञान	सरस्वती प्रेस, बनारस	५)
	आलोचना		
५.	प्रेमचन्द (७६७ पृष्ठ)	किताब महल, इलाहाबाद	७॥)
६.	शरतचन्द्र	,, ,,	२॥)
७.	बँगला के आधुनिक कवि	,, ,,	१॥)
	उपन्यास		
८.	गृहयुद्ध	,, ,,	३)
९.	ज्ञिच	,, ,,	१।)
१०.	सुधार	,, ,,	१।॥)
११.	जययात्रा	,, ,,	१।)
१२.	रक्षक-भक्षक	आलोक प्रकाशन, बीकानेर	३)
१३.	दुश्चरित्र	प्रगति प्रकाशन, दिल्ली	३)
१४.	अन्धेर नगरी	,, ,,	३॥)
१५.	बलि का बकरा	,, ,,	१।)

राजनीति और इतिहास

१६. अगस्त क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति केसरवानी प्रेस प्रयाग २॥)

१७. भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का रोमाञ्चकारी इतिहास
(दो भाग) छात्रहितकारी कार्यालय, प्रयाग ८)

१८. भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास—शिवलाल
अग्रवाल, हास्पिटल रोड आगरा ७॥)

कहानी-संग्रह

१६. रक्त के बीज चेतना प्रकाशन—हैदराबाद २॥)

२०. दूर की कौड़ी ,, ,, ,, २॥)

जीवनी और आत्मकथा

२१. चन्द्रशेखर आज़ाद

२२. भगत सिंह किताब महल, इलाहाबाद ॥)

२३. रामप्रसाद बिस्मिल ,, ,, ,, ॥)

२४. क्रान्तिकारी की आत्मकथा माया प्रेस ,, ४)

अन्य अनेक पुस्तकें प्रेस में